जनवरी-मार्च, 2017 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक | संपादक
डा. मिथिलेश चंद्र पांडेय | कमला कान्त

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

महत्वपूर्ण निर्णय

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 11 – पूर्व-न्याय – जिस विवाद्यक को एक बार चुनौती दी जा चुकी है और जिसको निर्णीत किया जा चुका है, को मात्र इस आधार पर कि याची पहली बार में कुछ आधारों का अवलंब नहीं ले सका था और जिनको अब वह पश्चात्वर्ती रिट याचिका के माध्यम से उठा रहा है, पुनः उठाए जाने और पुनः विवादित करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

हितेन्द्र बोरकर बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य** 32

संसद् के अधिनियम

सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (32) क्रमशः

पृष्ठ संख्या 1 – 152 (2017) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान भवन

डा. मिथिलेश चंद्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2017 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................ द्वारा मुद्रित ।

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जनवरी-मार्च, 2017

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
एस्टीम प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड **बनाम** इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड और एक अन्य	24
कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड और एक अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य	1
क्षेत्रीय प्रबंधक, राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लि., जोधपुर **बनाम** देवेन्द्र कुमार पुत्र गहरी लाल सुहालका और अन्य	64
डिंपल (श्रीमती) **बनाम** सुभाष	72
पारस नाथ गिरी **बनाम** दुर्गा गिरी	36
मस्तू देवी और अन्य **बनाम** चेत राम और अन्य	117
मुल्ला **बनाम** किस्सो और अन्य	132
राहुल हाइट्स लि. और अन्य **बनाम** पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य	17
वी. ज्वालामुखी **बनाम** जिला मजिस्ट्रेट और अन्य	56
हितेन्द्र बोरकर **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य	32

संसद् के अधिनियम

सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 — 32

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 (1952 का 19)

– धारा 11, 14ख, 15(2) और 17(6) [सपठित वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13 और बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 की धारा 34] – अभिदायों के संदाय को अन्य ऋणों पर प्राथमिकता – जहां कोई नियोजक दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया जाता है या कंपनी है तो उसके परिसमापन का आदेश पारित कर दिया जाता है, तो उनके स्वामित्व वाले स्थापनों के संबंध में किसी ऐसी रकम जो कर्मचारी भविष्य निधि या बीमा निधि को देय अभिदाय के रूप में वसूल किए जा सकने वाले नुकसान, अन्तरित किए जाने के लिए अपेक्षित संचयों या देय किन्हीं प्रभारों के बाबत नियोजक से वसूल किए जाने योग्य है और दायित्व न्यायनिर्णयन या परिसमापन के आदेश के पूर्व प्रोद्भूत हुआ है, तो यह समझा जाएगा कि वह रकम, अपेक्षित संचयों या देय प्रभारों को दिवालिए की संपत्ति या दिवालिया कंपनी की आस्तियों के वितरण में अन्य सभी ऋणों पर पूर्विकता देकर चुकाया जाएगा ।

कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड और एक अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 1

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26)

– धारा 11(6) – मध्यस्थ की नियुक्ति – जहां पक्षकारों द्वारा किसी करार के अन्तर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के अधीन कोई पक्षकार अपेक्षित रूप से कार्य करने में विफल रहता है, वहां अन्य पक्षकार मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा पदाभिहित किसी अन्य व्यक्ति या

पृष्ठ संख्या

संस्था से मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध कर सकता है ।

एस्टीम प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड और एक अन्य** 24

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)

– धारा 22क [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 300क और 162, समवर्ती सूची की प्रविष्टि 6] – वे दस्तावेज जिनका रजिस्ट्रीकरण लोक नीति के विरुद्ध है – उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रकाश में राज्य सरकार ने पोंजी योजनाओं में निवेशकों के हितों को संरक्षित करने के लिए आदेश/ज्ञापन जारी करके अनेक कंपनियों के दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण पर रोक लगा दी जिसके परिणामस्वरूप संपत्तियों के स्वामित्व का अंतरण बाधित हो गया – इस शक्ति का प्रयोग रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अंतर्गत नहीं किया गया बल्कि गरीब निवेशकों को वंचित करने के लिए आशयित संपत्ति संव्यवहारों को रोकने के लिए किया गया – समवर्ती सूची राज्य विधान-मंडल को संपत्ति अंतरण, विलेखों और दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण के संबंध में विधियां अधिनियमित करने के लिए सशक्त करती है – उक्त प्रविष्टि को दृष्टि में रखते हुए राज्य को कार्यकारी अनुदेश जारी करने का अधिकार है ।

राहुल हाइट्स लि. और अन्य बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य** 17

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54)

– धारा 13 और 14 [सपठित संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 65क] – मांग का नोटिस जारी

पृष्ठ संख्या

किए जाने के परिणाम – मांग का नोटिस जारी किए जाने के पश्चात् उधार लेने वाले द्वारा प्रतिभूत लेनदार की सहमति के बिना बंधक संपत्ति के बाबत पट्टा विलेख का निष्पादन विधिमान्य नहीं है – न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि याची विधिमान्य पट्टा विलेखों के आधार पर बंधक संपत्ति के कब्जे में प्रविष्ट हुए थे ।

वी. ज्वालामुखी बनाम **जिला मजिस्ट्रेट और अन्य** 56

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 11 – पूर्व-न्याय – जिस विवाद्यक को एक बार चुनौती दी जा चुकी है और जिसको निर्णीत किया जा चुका है, को मात्र इस आधार पर कि याची पहली बार में कुछ आधारों का अवलंब नहीं ले सका था और जिनको अब वह पश्चात्वर्ती रिट याचिका के माध्यम से उठा रहा है, पुनः उठाए जाने और पुनः विवादित करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

हितेन्द्र बोरकर बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य** 32

– धारा 96 और आदेश 43(1) [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2(ज), 63 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68] – विल – प्रोबेट – विल का संदिग्ध होना – संदिग्ध परिस्थितियों का निवारण नहीं होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि कोई विल संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी हुई है और प्रतिपादक द्वारा उसका समुचित तौर पर निवारण नहीं किया जाता है तो ऐसा विल संदिग्ध माना जाएगा और उसका निष्पादन तथा प्रोबेट रद्द किया जाना सर्वथा समुचित और विधिमान्य होगा ।

पारस नाथ गिरी बनाम **दुर्गा गिरी** 36

– धारा 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65] – द्वितीय अपील – प्रश्नगत स्थावर सम्पत्ति में प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करना – प्रतिकूल कब्जे के लिए विधि में विहित अवयवों को पूरा नहीं करना – अर्थात् उस सम्पत्ति में निरन्तर, निर्बाध, खुला, शान्तिपूर्ण और अनन्य तौर से कम से कम 12 वर्ष तक कब्जा बनाए रखना – अभिलेखों में मात्र सह-अंशधारी अभिलिखित होना – यदि कोई व्यक्ति किसी स्थावर सम्पत्ति पर प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करता है तो उसे यह साबित करना होगा कि वह उस सम्पत्ति पर निरन्तर, निर्बाध, खुला, शान्तिपूर्ण और अनन्य तौर से कम से कम 12 वर्षों से उस सम्पत्ति पर कब्जा बनाए हुए हैं अन्यथा प्रतिकूल कब्जे का दावा अमान्य होगा ।

मस्तू देवी और अन्य बनाम **चेत राम और अन्य** 117

– धारा 100 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 163] – वसीयत – प्रतिपादक द्वारा यह साबित नहीं किया जाना कि वसीयतकर्ता ने व्ययन करने की स्वस्थचित्त दशा में, विल की अन्तर्वस्तुओं को समझते हुए विल निष्पादित किया है – दो अनुप्रमाणक साक्षियों द्वारा भी विल के निष्पादन को साबित नहीं कराया जाना – विल की असलियत और सत्यता के बारे में संदेह उद्भूत होना – संदेहों का निवारण नहीं करना – यदि अभिलेख पर यह साबित नहीं किया जाता है कि वसीयतकर्ता ने विल को व्ययन करने की स्वस्थचित्त दशा में रहते हुए, उसकी अन्तर्वस्तुओं को और उसके परिणाम को समझते हुए तथा दो अनुप्रमाणक साक्षियों की उपस्थिति में निष्पादित की है तो ऐसे विल को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई होना कहा जा सकता है और जब तक ऐसे उद्भूत संदेहों का निवारण प्रतिपादक द्वारा

पृष्ठ संख्या

नहीं कर दिया जाता है तब तक ऐसे विल को असली और विधिमान्य होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है ।

मुल्ला बनाम **किस्सो और अन्य** 132

– धारा 115 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8] – पुनरीक्षण आवेदन – राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड द्वारा करार अनुरूप शराब की बिक्री न किया जाना – करार/संविदा की शर्तों का उल्लंघन किया जाना – पक्षकारों के बीच विवाद्यकों को मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना – पक्षकारों के बीच संविदा/करार में उल्लिखित मध्यस्थ खण्ड मात्र एक शर्त होना – ऐसी स्थिति में यदि बकाया वसूली आदि से संबंधित विवाद्यक उद्भूत होता है तो पीड़ित पक्षकार मामले को मध्यस्थ को निर्दिष्ट कराने को बाध्य नहीं होगा और वह विधि में विहित तरीके से बकाए की वसूली कर सकता है ।

क्षेत्रीय प्रबंधक, राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लि., जोधपुर बनाम **देवेन्द्र कुमार पुत्र गहरी लाल सुहालका और अन्य** 64

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 323, 498क, 406 और 109] – हिन्दू पक्षकारों के बीच विवाह – पक्षकारों के बीच विवाद – पक्षकारों का पृथक् रहना – पक्षकारों के संबंध में सुधार्य योग्य न होना – विवाह-विच्छेद की डिक्री फाइल करना – मानसिक क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर विवाह के पक्षकारों के बीच आपसी संबंध सुधार्य योग्य नहीं रह जाते हैं और विवाह का एक पक्षकार दूसरे के विरुद्ध अभित्यजन और मानसिक क्रूरता साबित कर देता है तो इन परिस्थितियों में मंजूर विवाह-विच्छेद की डिक्री युक्तियुक्त और मान्य होगी ।

डिंपल (श्रीमती) बनाम **सुभाष** 72

कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड और एक अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

तारीख 16 अक्तूबर, 2015

न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 (1952 का 19) – धारा 11, 14ख, 15(2) और 17(6) [सपठित वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13 और बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋणों की वसूली अधिनियम, 1993 की धारा 34] – अभिदायों के संदाय को अन्य ऋणों पर प्राथमिकता – जहां कोई नियोजक दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया जाता है या कंपनी है तो उसके परिसमापन का आदेश पारित कर दिया जाता है, तो उनके स्वामित्व वाले स्थापनों के संबंध में किसी ऐसी रकम जो कर्मचारी भविष्य निधि या बीमा निधि को देय अभिदाय के रूप में वसूल किए जा सकने वाले नुकसान, अन्तरित किए जाने के लिए अपेक्षित संचयों या देय किन्हीं प्रभारों के बाबत नियोजक से वसूल किए जाने योग्य है और दायित्व न्यायनिर्णयन या परिसमापन के आदेश के पूर्व प्रोद्भूत हुआ है, तो यह समझा जाएगा कि वह रकम, अपेक्षित संचयों या देय प्रभारों को दिवालिए की संपत्ति या दिवालिया कंपनी की आस्तियों के वितरण में अन्य सभी ऋणों पर पूर्विकता देकर चुकाया जाएगा ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड ने पांचवें प्रत्यर्थी मैसर्स वाई. ए. फाइडेलिटी इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड नामक कंपनी को उधार सुविधा मंजूर की थी और इस सुविधा के अन्तर्गत ऋण संवितरित किया था । उधार लेने वाली कंपनी ने संदाय में व्यतिक्रम कारित किया जिसके परिणामस्वरूप भारतीय रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार ऋण को गैर निष्पादित परिसंपत्ति (एनपीए) के रूप में वर्गीकृत कर

दिया गया है और बैंक ने 2002 के वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम की धारा 13 के निबंधनों के अनुसार कार्यवाही आरंभ की और अचल बंधक संपत्ति, आडमान स्टॉक और संयंत्र और मशीनरी को बेचने के द्वारा 50 लाख की वसूली कर ली । तत्पश्चात् तृतीय प्रत्यर्थी कर्मचारी भविष्य निधि संगठन ने उधार लेने वाली कंपनी की इकाई को 1952 के कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम के अधीन भविष्य निधि के बाबत देयों के वसूली के लिए कुर्क कर लिया । तत्पश्चात्, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के वसूली अधिकारी ने कोटक महिन्द्रा बैंक द्वारा भविष्य निधि जमा करने में विफल रहने पर आक्षेपित आदेश द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी, जो बैंक के क्षेत्रीय वसूली प्रबंधक है, का दो-तिहाई वेतन कुर्क कर लिया । आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर बैंक ने रिट अधिकारिता में इस न्यायालय की शरण ली । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले के तथ्यों पर विधि को लागू करते हुए अभिलेख पर लाई गई सामग्री से यह स्पष्ट है कि वसूली अधिकारी, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, कानपुर द्वारा आई एन जी वैश्य बैंक लिमिटेड के क्षेत्रीय प्रमुख को संबोधित तारीख 14 अक्तूबर, 2011 का पत्र जिसके द्वारा 12,35,176/- रुपए की मांग की गई और जो उधार लेने वाले मैसर्स वाई. ए. फाइडेलिटी इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड द्वारा देय थे । इस पत्र द्वारा कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 8ख सपठित 1961 के आयकर अधिनियम की द्वितीय अनुसूची के नियम 26(1)(i) के अधीन तारीख 21 सितम्बर, 2005 को जारी पूर्ववर्ती निषेध सूचना को निर्दिष्ट किया गया । जिसके द्वारा यह अभिकथित किया गया था कि उस तारीख के पश्चात्वर्ती स्थापन के चल/अचल आस्तियों के किसी भी विक्रय को निषेध आदेश का अननुपालन प्रतीत किया जाएगा । इसी प्रकार के नोटिस तारीख 23 नवम्बर, 2009 और 25 मार्च, 2010 को भी पूर्ववर्ती सूचना के अननुपालन के कारण भेजे गए थे । आई एन जी वैश्य बैंक लिमिटेड ने तारीख 21 जुलाई, 2013 के पत्र द्वारा वसूली अधिकारी को सूचित किया कि उन्होंने उधार लेने वाली कंपनी की आस्तियों को, जिनको बैंक द्वारा प्रदान की गई उधार सुविधा के बाबत बंधक कर दिया गया था, 2009 में 2002 के सरफेसी अधिनियम के अधीन नीलाम कर दिया है । उन्होंने आगे अभिकथन किया कि उत्तर प्रदेश वित्त निगम द्वारा उधार लेने वाली कंपनी से संबंधित मुख्य कारखाने, जिसमें भूमि, भवन, संयंत्र,

मशीनरी समाविष्ट है के विक्रय से विक्रय आगम प्राप्त किए जाने की संभाव्यता है जो वर्तमान में उत्तर प्रदेश वित्त निगम के भौतिक कब्जे में है और जिसका प्रथम भार है और आई एन जी वैश्य बैंक का द्वितीय भार है । कर्मचारी भविष्य निधि देयों को उत्तर प्रदेश वित्त निगम द्वारा किए जाने वाले विक्रय से प्राप्त विक्रय आगमों से वसूली किया जाना चाहिए । इस पृष्ठभूमि में याची की ओर से यह दलील दी गई कि उन्होंने तारीख 30 जून, 2013 तक 3,62,84,073/- रुपए की रकम में से पचास लाख रुपए की रकम वसूल कर ली है और पांचवें प्रत्यर्थी से अधिशेष रकम वसूल किया जाना बाकी है इसलिए कर्मचारी भविष्य निधि देयों की मांग पूर्णतः गलत और असमर्थनीय है और द्वितीय याची के वेतन को कुर्क नहीं किया जा सकता था । मैं मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और ऊपर अभिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए कानपुर स्थित कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के वसूली अधिकारी द्वारा जारी तारीख 15 जुलाई, 2015 के आक्षेपित आदेश/पत्र में कोई अवैधता या बल नहीं पाता हूं । यदि याची कर्मचारी भविष्य निधि देयों को प्रत्यर्थी के पास आज से आठ सप्ताह के भीतर जमा कर देता है, तो द्वितीय याची की वेतन का कुर्की आदेश वापस ले लिया जाएगा । (पैरा 28, 29, 30, 31 और 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 727 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 11 : **कर्मचारी भविष्य निधि आयुक्त** बनाम **एस्के फार्मास्यूटिकल्स लि. के शासकीय परिसमापक** ;	26,27
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 123 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 868 : **महाराष्ट्र राज्य को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड** बनाम **सहायक भविष्य निधि आयुक्त** ;	22
[2009]	(2009) 4 एस. सी. सी. 94 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2436 : **सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया** बनाम **केरल राज्य** ;	16
[2006]	ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 865 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **श्रेयास पेपर्स प्रा. लि.** ;	25

[1995] (1995) 2 एस. सी. सी. 19 =
1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 214 :
स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर बनाम
नेशनल आयरन एंड स्टील रोलिंग कारपोरेशन ; 24

[1974] (1974) 2 एस. सी. सी. 799 :
दत्तात्रेय शंकर मोटे बनाम **अनंत चिंतामण दातार ।** 24

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2015 की रिट याचिका सं. 45585.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों/अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री मनीष त्रिवेदी (अपर महासालिसिटर), अमित नेगी, डी. के. मिश्रा और एस. के. श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी की ओर से सचिन्द्र उपाध्याय

आदेश

यह याचिका पक्षों के विद्वान् काउंसेलों के अनुरोध पर ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही पांचवें प्रत्यर्थी को कोई नोटिस जारी किए बिना और किसी खंडन शपथपत्र फाइल किए जाने की अपेक्षा किए बिना निर्णीत की जा रही है ।

2. आई एन जी वैश्य बैंक लिमिटेड, जो बाद में कोटक महिन्द्रा बैंक लिमिटेड में समामेलित हो गई थी, ने पांचवें प्रत्यर्थी मैसर्स वाई. ए. फाइडेलिटी इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड (उधार लेने वाली कंपनी) को उधार सुविधा (ऋण) मंजूर और संवितरित किया था । उधार लेने वाली कंपनी ने संदाय में व्यतिक्रम कारित किया जिसके परिणामस्वरूप ऋण को भारतीय रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार तारीख 4 फरवरी, 2006 को गैर निष्पादित परिसंपत्ति (एनपीए) के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया । बैंक ने 2002 के वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम (संक्षेप में "सरफेसी अधिनियम") की धारा 13 के निबंधनों के अनुसार कार्यवाही आरंभ की और अचल बंधक संपत्ति, आडमान स्टॉक और संयंत्र और मशीनरी को तारीख 30 मार्च, 2009 और 22 मई, 2009 को अलग-अलग बेचने के द्वारा पचास लाख रुपए की वसूली कर ली ।

3. तृतीय प्रत्यर्थी जो कानपुर स्थित कर्मचारी भविष्य निधि संगठन का

वसूली अधिकारी है, ने उधार लेने वाली कंपनी की इकाई को 1952 के कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम (ईपीएफ अधिनियम) के अधीन कर्मचारी भविष्य निधि के बाबत देयों के वसूली के लिए कुर्क कर लिया था । तत्पश्चात्, वसूली अधिकारी ने कोटक महिन्द्रा बैंक द्वारा भविष्य निधि जमा करने में विफल रहने पर तारीख 15 जुलाई, 2015 को आक्षेपित आदेश द्वारा उनके क्षेत्रीय वसूली प्रबंधक, जो द्वितीय प्रत्यर्थी है का दो-तिहाई वेतन कुर्क कर लिया । याचियों ने रिट अधिकारिता में इस आदेश को चुनौती दी है ।

4. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री मनीष त्रिवेदी ने निवेदन किया कि वेतन कुर्क करने की भविष्य निधि आयुक्त की कार्यवाही पूर्णतया अवैध और मनमानीपूर्ण है, बैंक का उधार लेने वाली कंपनी की प्रतिभूति पर प्रथम भार है, इसलिए बैंक ने वर्ष 2009 में प्रतिभूति के विक्रय द्वारा अवशेष देयों की वसूली कर ली है जिसका दावा प्रत्यर्थी द्वारा ईपीएफ अधिनियम की धारा 11 के अधीन नहीं किया जा सकता । प्रत्यर्थी उधार लेने वाली कंपनी की अन्य आस्तियों का विक्रय करने के द्वारा कर्मचारियों के देयों की वसूली कर सकते थे ।

5. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री अमित नेगी ने निवेदन किया कि ईपीएफ अधिनियम की धारा 11 के अधीन किसी नियोजक द्वारा संदेय देय अन्य ऋणों पर प्राथमिकता रखेंगे और वे सरफेसी अधिनियम की धारा 13 के उपबंधों के अधीन नहीं है ।

6. परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार किया गया ।

7. प्रश्न जो विचाराणार्थ उत्पन्न होता है, यह है कि क्या ईपीएफ अधिनियम की धारा 11 के अधीन किसी नियोजक द्वारा संदेय देयों को प्रदान की गई प्राथमिकता सरफेसी अधिनियम की धारा 13 के अधीन है ।

8. 1973 के ईपीएफ अधिनियम को अधिनियम सं. 40, 1976 के अधिनियम सं. 19 और 1988 के अधिनियम सं. 33 द्वारा संशोधित किया गया था । 1973 के अधिनियम सं. 40 द्वारा धारा 11 को धारा 11(1) के रूप में पुनर्संख्यांकित किया गया था और एक नई उपधारा 11(2) को जोड़ा गया था और यह घोषणा की गई थी कि कर्मचारी के अंशदान के संबंध में नियोजक द्वारा देय कोई भी रकम उसके स्थापन की आस्तियों पर प्रथम चार्ज प्रतीत की जाएगी और सभी ऋणों के विरुद्ध प्राथमिकता के आधार पर उसका संदाय किया जाएगा । धारा 11(2) की परिधि को 1988

के अधिनियम सं. 13 द्वारा नियोजक के अंशदान को सम्मिलित किए जाने के द्वारा विस्तारित कर दिया गया था ।

9. वह पृष्ठभूमि जिसमें 1988 का संशोधन अधिनियम सं. 33 पारित किया गया, कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध (संशोधन) विधेयक, 1988 के साथ संलग्न उद्देश्यों और कारणों के कथन से स्पष्ट है ।

10. धारा 11, जैसीकि 1988 के संशोधन के पश्चात् विद्यमान है, इस प्रकार है :–

> "**11. अभिदायों के संदाय को अन्य ऋणों पर पूर्विकता** – जहां कोई नियोजक दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है, या यदि वह कंपनी है तो उसके परिसमापन के लिए आदेश दिया जाता है, वहां किसी ऐसी रकम के बारे में जो –
>
> (क) यथास्थिति, निधि या बीमा निधि को देय किसी अभिदाय की बाबत धारा 14ख के अधीन वसूल की जा सकने वाली नुकसानी की बाबत धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन अन्तरित किए जाने के लिए अपेक्षित संचयों की बाबत या इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के या स्कीम या बीमा स्कीम के किसी उपबंध के अधीन उसके द्वारा देय किन्हीं प्रभारों की बाबत उस स्थापन के संबंध में, जिसे कोई स्कीम या बीमा स्कीम लागू है, नियोजक द्वारा शोध्य है ; या
>
> (ख) भविष्य निधि या कोई बीमा के नियमों के अधीन भविष्य निधि या कोई बीमा निधि को कोई अभिदाय जहां तक वह छूट प्राप्त कर्मचारियों से संबंधित है, धारा 17 की उपधारा (6) के अधीन कुटुंब पेंशन निधि को उसके द्वारा संदेय कोई अभिदाय धारा 14ख के अधीन वसूल की जा सकने वाली नुकसानी की बाबत या इस अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन या धारा 17 के अधीन विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी के अधीन समुचित सरकार को उसके द्वारा देय किन्हीं प्रभारों के बारे में छूट प्राप्त स्थापन के संबंध में नियोजक द्वारा शोध्य है ।"

11. कर्मचारी भविष्य निधि के अधिनियम की धारा 11 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह धारा नियोजक द्वारा कर्मचारियों को देय रकम को उसके अन्य ऋणों के ऊपर कानूनी रूप से प्राथमिकता प्रदान करती है । धारा 11(1) ऐसे नियोजक से संबंधित है जिसको दिवालिया न्यायनिर्णीत

कर दिया गया है या कंपनी होने की दशा में ऐसी कंपनी से संबंधित है जिसके विरुद्ध परिसमापन का आदेश पारित किया जा चुका है । यह धारा अधिकथित करती है कि किसी ऐसी रकम के बारे में जो यथास्थिति निधि या बीमा निधि को देय किसी अभिदाय की बाबत धारा 14ख के अधीन वसूल की जा सकने वाली नुकसानी की बाबत, धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन अन्तरित किए जाने के लिए अपेक्षित संचयों की बाबत या इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के या स्कीम या बीमा स्कीम के किसी उपबंध के अधीन उसके द्वारा देय किन्हीं प्रभारों की बाबत उस स्थापन के संबंध में जिसे कोई स्कीम या बीमा स्कीम लागू है, नियोजक द्वारा शोध्य है, यथास्थिति दिवालिए की संपत्ति के या उस कंपनी की आस्तियों के जिसका परिसमापन हो रहा है, वितरण में अन्य सभी ऋणों पर प्राथमिकता देकर चुकाई जाएगी ।

12. धारा 11(2) में एक सर्वोपरि खंड समाविष्ट है और अधिकथित करता है कि यदि कोई रकम चाहे वह कर्मचारी के अभिदाय या नियोजक के अभिदाय के बारे में हो, नियोजक द्वारा शोध्य है तो इस प्रकार शोध्य रकम स्थापन की आस्तियों पर प्रथम भार समझी जाएगी और तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी अन्य सभी ऋणों प्राथमिकता देकर चुकाई जाएगी । इस पर भिन्न दृष्टिकोण से विचार करते हुए धारा 11 की उपधारा (2) न केवल यह घोषणा करती है कि कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अधीन संदेय अंशदान के बाबत नियोजक से देय रकम स्थापन की आस्तियों पर प्रथम भार प्रतीत की जाएगी किन्तु साथ ही यह धारा यह भी अधिकथित करती है कि किसी अन्य विधि में किसी अन्य बात के समाविष्ट होने पर भी इस प्रकार के देय अन्य सभी ऋणों के मुकाबले प्राथमिकता के आधार पर संदेय होंगे ।

13. कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम एक सामाजिक कल्याणकारी विधान है जो समाज के कमजोर वर्ग, जिन्होंने देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है अर्थात् कारखानों और अन्य स्थापनों में नियोजित कर्मकारों, के हितों को संरक्षित किए जाने के लिए आशयित है । इसलिए उनके लाभ के लिए बनाए गए किसी विधान का उदार और उद्देश्यपरक निर्वचन संविधान के अनुच्छेदों 38 और 43 में समाविष्ट राज्य की नीति निदेशक तत्वों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए ।

14. जो बात महत्वपूर्ण है, यह है कि कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11 अन्य ऋणों के मुकाबले इस अधिनियम के अधीन किए गए

अंशदानों के संदाय को प्राथमिकता प्रदान करती है । कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (1) प्राथमिकता के प्रश्न पर विचार करती है जहां नियोजक को दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया जाता है या नियोजक के कंपनी होने की दशा में उसको परिसमापन के आदेश के अधीन कर दिया जाता है ।

15. कर्मचारी भविष्य निधि के अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (2) के भी दो पहलू हैं । प्रथम यह कि यह धारा घोषणा करती है कि कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अधीन अंशदान के बाबत नियोजक द्वारा देय रकम को स्थापन की आस्तियों पर प्रथम भार प्रतीत किया जाएगा । द्वितीय यह कि यह धारा यह घोषणा भी करती है कि ऐसे ऋण का संदाय किसी तत्समय प्रवृत्त विधि में किसी बात के होते हुए भी अन्य समस्त ऋणों के मुकाबले में प्राथमिकता के आधार पर किया जाएगा । यह दोनों उपबंध संसद् के आशय को स्पष्ट करते हैं जिसके द्वारा विधान में समाविष्ट समाजिक लाभ को सुनिश्चित किया गया है । अधिनियम में कुछ अन्य उपबंध भी समाविष्ट हैं जो भविष्य निधि के अन्तर्गत संदेय रकमों को सिविल न्यायालय के डिक्री के अन्तर्गत कुर्की से उन्मुक्ति प्रदान करते हैं ।

16. **सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय से इस प्रश्न पर विचार करने की अपेक्षा की गई थी कि क्या राज्य विधान-मंडलों द्वारा अधिनियमित कराधान कानूनों द्वारा सृजित प्रथम भार प्रतिभूत लेनदारों को देय ऋणों पर अभिभावी होंगे और उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप से दिया गया था :–

> "112. प्रतिभूतिकरण अधिनियम की धारा 13(1) के अधीन प्रतिभूत हित को प्रवर्तित करने और साथ ही संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 69 या 69क को प्रवर्तित करने के किसी प्रतिभूत लेनदार के अधिकार को सीमित प्राथमिकता प्रदान की गई है । इस उपधारा के निबंधनों के अनुसार प्रतिभूत लेनदार प्रतिभूत हित को न्यायालय या अधिकरण के मध्यक्षेप के बिना प्रवर्तित कर सकता है और यदि उधार लेने वाले ने प्रतिभूत आस्तियों का बंधक सृजित कर दिया है, तो बंधकग्राहीता या उसकी ओर से कार्य करने वाला कोई अन्य व्यक्ति बंधक संपत्ति को बेच नहीं सकता या उस बंधक संपत्ति या उसके किसी भाग की आय पर रिसीवर की नियुक्ति ऐसे तरीके से नहीं कर

---

[1] (2009) 4 एस. सी. सी. 94 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2436.

सकता जो प्रतिभूत लेनदार के प्रतिभूत हित के अधिकार को विफल कर सके ।

113. प्रतिभूत लेनदार, जिनमें बैंक या वित्तीय संस्था सम्मिलित होती है, द्वारा जिन कठिनाइयों का सामना किए जाने की संभाव्यता होती है, का निराकरण किए जाने के बाबत प्रयास करते हुए संसद् ने धारा 13 में सर्वोपरि खंड सम्मिलित किया है और प्रतिभूत लेनदार और साथ ही अन्य बंधकदारों के अधिकारों को प्राथमिकता प्रदान की है जो संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 69 या 69क के अधीन अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं । तथापि, यह प्राथमिकता अन्य उपबंधों के संबंध में विस्तारित नहीं की गई है जैसेकि बाम्बे अधिनियम की धारा 38ग और केरल अधिनियम की धारा 28ख जिसके द्वारा व्यवहारी या किसी अन्य व्यक्ति, जो बिक्री कर इत्यादि के देयों का संदाय करने का दायी है, की संपत्ति के संबंध में राज्य के पक्ष में प्रथम भार सृजित किया गया है । धारा 13 की उपधारा (7) जो उपधारा (4) के अधीन विनिर्दिष्ट उपायों में से किसी उपाय द्वारा प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्राप्त राशि के उपयोग पर विचार करती है, मात्र प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्राप्त राशि के वितरण को विनियमित करती है । यह उपबंध प्रतिभूत लेनदार के पक्ष में प्रथम भार सृजित नहीं करता है ।

114. विधान-मंडल ने धारा 13 की उपधारा (9) के विभिन्न उपबंधों को अधिनियमित करने के द्वारा यह सुनिश्चित किया कि 1956 के कंपनी अधिनियम की धारा 529क के अधीन परिसमापन का सामना करने वाली किसी कंपनी के कर्मकारों को प्रतिभूत लेनदारों जैसेकि बैंकों के दावे के मुकाबले प्राथमिकता दी जानी चाहिए । यही कारण है कि धारा 13(9) के असंख्यांकित परंतुकों में से प्रथम पांच परंतुक अधिकथित करते हैं कि परिसमापन का सामना करने वाली कंपनी के मामले में प्रतिभूत आस्तियों के विक्रय से वसूल रकम 1956 के कंपनी अधिनियम की धारा 529क के उपबंधों के अनुसार समवितरित की जाएगी । यह और अन्य उपबंध प्रथम बार परिसमापन का सामना करने वाली कंपनी के कर्मकारों के पक्ष में प्रथम भार सृजित नहीं करते किन्तु मात्र उनके दावे की विद्यमान प्राथमिकता को कंपनी अधिनियम के अधीन मान्यता प्रदान करते हैं । यह उल्लेख करना रुचिकर होगा कि धारा 13 की उपधारा (9) के परंतुक ऐसी कंपनियों पर विचार नहीं करते जो उधार लेने वाले की

कोटि के अन्तर्गत आती हैं, किन्तु ऐसी कंपनियों पर विचार करते हैं, जो परिसमापन का सामना नहीं कर रहीं या उनका समापन नहीं किया जा रहा ।

115. यह सत्य है कि ऊपरनिर्दिष्ट उपबंध मात्र विधान-मंडल द्वारा अन्तर्वलित समवितरण तंत्र के भाग हैं और परिसमापन का सामना करने वाली किसी कंपनी, जिसकी आस्तियां प्रतिभूतिकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन हैं और जिनका निस्तारण प्रतिभूत लेनदारों द्वारा इस अधिनियम की धारा 13 के अनुसार किया जा रहा है, के कर्मकारों के अधिकारों को संरक्षित और संपोषित किए जाने के लिए आशयित हैं ।"

17. यह उपबंध और अन्य उपबंध प्रथम बार परिसमापन का सामना करने वाली किसी कंपनी के कर्मकारों के पक्ष में प्रथम भार सृजित नहीं करते किन्तु मात्र कंपनी के अधिनियम के अधीन उनके दावे की विद्यमान प्राथमिकता को मान्यता प्रदान करते हैं । यह उल्लेख किया जाना रुचिकर होगा कि धारा 13 की उपधारा (9) के उपबंध ऐसी कंपनियों पर विचार नहीं करते जो उधार लेने वाले की कोटि के अन्तर्गत आती है किन्तु जो परिसमापन का सामना नहीं कर रहीं या जिनका समापन नहीं किया जा रहा ।

18. ऋण वसूली अधिकरण अधिनियम (डीआरटी अधिनियम) और सरफेसी अधिनियम को अधिनियमित करते हुए संसद् ने उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के प्रति जागरूक थी जिसमें कर्मचारी भविष्य निधि देयों की प्राथमिकता को मान्यता प्रदान की गई हैं । यदि संसद् का आशय बैंकों, वित्तीय संस्थानों या अन्य प्रतिभूत लेनदारों के पक्ष में उधार लेने वालों की संपत्तियों पर प्रथम भार सृजित करना होता, तो वह ऐसा उपबंध सम्मिलित करती जैसे कंपनी अधिनियम की धारा 529क या कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11(2) और इस बात को सुनिश्चित करती कि न्यायिक उद्घोषणाओं की लंबी शृंखलाओं के बावजूद बैंकों, वित्तीय संस्थानों और अन्य प्रतिभूत लेनदारों के देयों को बिक्री कर इत्यादि के देयों की वसूली के मामलों में कर्मचारी भविष्य निधि के कानूनी प्रथम भार के ऊपर प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए । तथापि, मामले का तथ्य यह है कि इनमें से किसी भी अधिनियमिति में प्रतिभूत लेनदारों को न्यायालय या अधिकरण के मध्यक्षेप के बिना प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा

लिए जाने और उनका निस्तारण किए जाने की असाधारण शक्ति प्रदान किए जाने के बावजूद ऐसा कोई उपबंध सम्मिलित नहीं किया गया है । इस लोप का कारण यह प्रतीत होता है कि नई कानूनी व्यवस्था प्रतिभूत आस्तियों का अन्तरण निजी कंपनियों को किया जाना परिकल्पित करती है ।

19. यदि ऋण वसूली अधिनियम और सरफेसी अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उस पृष्ठभूमि और संदर्भ को ध्यान में रखते हुए किया जाए जिसमें ये विधान अधिनियमित किए गए थे और उन अधिनियमितियों द्वारा जिस उद्देश्य को अभिप्राप्त किए जाने की ईप्सा की गई थी, यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दोनों विधान बैंकों, वित्तीय संस्थानों और प्रतिभूत लेनदारों के देयों की शीघ्र वसूली के लिए एक नए संवितरण तंत्र को सृजित करने के लिए और किसी व्यथित व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के न्यायनिर्णयन और बैंकों, वित्तीय संस्थानों और अन्य प्रतिभूत लेनदारों द्वारा अंगीकृत प्रक्रिया के लिए आशयित हैं किन्तु उनमें समाविष्ट उपबंधों को बैंकों इत्यादि के पक्ष में प्रथम भार सृजित करने के प्रयोजनार्थ नहीं पढ़ा जा सकता ।

20. निर्विवाद रूप से, इन दोनों अधिनियमितियों में कर्मकार प्रतिकर अधिनियम या कर्मचारी भविष्य अधिनियम के समान उपबंध समाविष्ट नहीं है । इस प्रभाव के किसी विनिर्दिष्ट उपबंध की अनुपस्थिति में यह संभव नहीं है कि एक तरफ तो ऋण वसूली अधिनियम और सरफेसी अधिनियम के उपबंधों के मध्य किसी टकराव या असंगतता या परस्पर व्यापन को पढ़ा जाए और दूसरी तरफ कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11(2) को पढ़ा जाए और ऋण वसूली अधिनियम की धारा 34(1) और कर्मचारी भविष्य अधिनियम की धारा 35 में समाविष्ट सर्वोपरि खंडों का अवलंब यह घोषणा किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं लिया जा सकता कि किसी अन्य विधान के अन्तर्गत सृजित प्रथम भार लागू नहीं होगा या बैंकों, वित्तीय संस्थानों और अन्य प्रतिभूत लेनदारों द्वारा उनके देयों की वसूली या प्रतिभूत हित के प्रवर्तन के लिए, जैसा भी मामला हो, आरंभ की गई कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगा ।

21. न्यायालय ऋण वसूली अधिनियम की धारा 34(1) और कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 35 और साथ ही सरफेसी अधिनियम और इसी प्रकार के अन्य विधानों में समाविष्ट सर्वोपरि खंडों को प्रभावी केवल

तब कर सकता था यदि दोनों अधिनियमितियों में बैंकों, वित्तीय संस्थानों और अन्य प्रतिभूत लेनदारों के पक्ष में प्रथम भार सृजित करने के प्रयोजनार्थ कोई विनिर्दिष्ट उपबंध उपलब्ध था किन्तु चूंकि संसद् ने दोनों अधिनियमितियों में से किसी में भी इस प्रकार का कोई उपबंध नहीं बनाया है, कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम द्वारा व्यवहारी या किसी अन्य व्यक्ति, जो संदाय का दायी है, की संपत्ति पर सृजित प्रथम भार को विविक्षा या अनुमान द्वारा इस तथ्य के होते हुए भी कि बैंक इत्यादि प्रतिभूत लेनदारों के कोटि में आते हैं, नष्ट नहीं किया जा सकता ।

22. **महाराष्ट्र राज्य को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड** बनाम **सहायक भविष्य निधि आयुक्त**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर विचार किया कि कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11 के अधीन नियोजक द्वारा संदेय देय बैंक को देय ऋणों के ऊपर प्राथमिकता रखेंगे । अपीलार्थी बैंक ने कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अन्तर्गत पारित आदेश की वैद्यता को इस आधार पर चुनौती दी कि एक प्रतिभूत लेनदार होने के नाते उसको देय रकम कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अन्तर्गत नियोजक द्वारा संदेय देयों को सम्मिलित करते हुए अन्य देयों के विरुद्ध प्राथमिकता के आधार पर देय रकम थी ।

23. उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11(2) में समाविष्ट सर्वोपरि खंड को ध्यान में रखते हुए नियोजक द्वारा देय किसी रकम को स्थापन की आस्तियों पर प्रथम भार प्रतीत किया जाएगा और बैंक, जो प्रतिभूत लेनदार की कोटि के अन्तर्गत आते हैं, को देय ऋणों को सम्मिलित करते हुए अन्य समस्त ऋणों के ऊपर प्राथमिकता के आधार पर संदेय होगा ।

24. **स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एंड जयपुर** बनाम **नेशनल आयरन एंड स्टील रोलिंग कारपोरेशन**[2] वाले मामले में स्टेट बैंक ने उधार लेने वाले को रोकड़ उधार सुविधा प्रदान की थी जिसने अपने कारखाने परिसर पर विलेख द्वारा बंधक सृजित किया था । बैंक ने अपने देयों की वसूली के लिए वाद फाइल किया और उस प्रक्रम पर राजस्थान के वाणिज्यिक कर अधिकारी ने स्वयं को इस आधार पर वाद का पक्ष बनाया कि उसके विभाग का 1954 के राजस्थान बिक्री कर अधिनियम की धारा

---

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 123 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 868.

[2] (1995) 2 एस. सी. सी. 19 = 1995 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 214.

11(ककककक) के अधीन देय बिक्री कर के वसूली के लिए पहले से दावा लंबित है । इस उपबंध का यह प्रभाव था कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में समाविष्ट किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी कर, शास्ति या ब्याज की कोई रकम और किसी व्यवहारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संदेय कोई अन्य राशि संपत्ति पर प्रथम भार होगी । उच्चतम न्यायालय ने धारा 11(ककककक) के उपबंधों और 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 110 पर उसके प्रभाव पर विचार किया । न्यायालय ने उल्लेख किया कि बंधक और भार के मध्य अंतर होता है, पहले इस विषय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा **दत्तात्रेय शंकर मोटे** बनाम **अनंत चिंतामण दातार**[1] वाले मामले में विचार किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वाक्यांश "संपत्ति का अंतरण" संपत्ति में संपूर्ण हित के अंतरण को निर्दिष्ट करता है और चूंकि कानून ने प्रथम भार सृजित किया है, यह संपत्ति में बंधक द्वारा केवल किसी एक हित के अंतरण को आच्छादित नहीं करता, बल्कि यह संपत्ति पर बंधक को सम्मिलित करते हुए अन्य सभी भारों के ऊपर कानूनी भार को प्राथमिकता प्रदान करता है चूंकि भार व्यवहारी की संपूर्ण संपत्ति पर उसमें बंधकग्राहीता के हित को सम्मिलित करते हुए क्रियान्वित होता है ।

25. **कर्नाटक राज्य** बनाम **श्रेयास पेपर्स प्रा. लि.**[2] वाले मामले में जो विवाद्यक विचारणार्थ उत्पन्न हुआ, यह था कि क्या किसी समुत्थान की आस्तियों का किसी क्रेता द्वारा क्रय, जिसको 1951 के राज्य वित्त निगम अधिनियम की धारा 29 के अधीन राज्य वित्त निगम द्वारा बेचा गया, 1967 के कर्नाटक बिक्री कर अधिनियम के अधीन समुत्थान, जिसकी आस्तियों को अंतरित कर दिया गया था, के बिक्री कर के बकाए की वसूली के लिए कर योग्य होगी । उच्चतम न्यायालय ने उल्लेख किया कि वास्तव में अंतरिती को बिक्री कर के बकाए की वास्तविक या परिलक्षित रूप से कोई सूचना नहीं थी । इसलिए राज्य बिक्री कर अधिनियम में एक उपबंध समाविष्ट था जिसके द्वारा अंतरिती को अंतरणकर्ता के दायित्व के अधीन कर दिया गया । द्वितीयतः राज्य विधि में कोई ऐसा उपबंध समाविष्ट नहीं था जिसके द्वारा अंतरिती को भार सृजित किए जाने के नोटिस की अपेक्षा से छूट प्रदान कर दी गई हो । इसके विपरीत यह उल्लेख किया जाता है कि 1952 के कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11(2) विनिर्दिष्ट

[1] (1974) 2 एस. सी. सी. 799.
[2] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 865.

रूप से (i) किसी ऐसी रकम के संबंध में प्रथम भार सृजित करती है जो नियोजक द्वारा उसके या कर्मचारी के अंशदान के कारण देय हो ; (ii) उपबंधित करती है कि यह रकम अन्य सभी ऋणों के मुकाबले प्राथमिकता के आधार पर संदेय होगी ; और (iii) परिकल्पित करती है कि ऐसा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में समाविष्ट किसी अन्य बात के होते हुए भी होगा । इसलिए सर्वोपरि खंड 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम को सम्मिलित करते हुए विधि के अन्य सभी उपबंधों पर आवश्यक रूप से अध्यारोही प्रभाव रखेगा ।

26. उच्चतम न्यायालय ने **कर्मचारी भविष्य निधि आयुक्त** बनाम **एस्के फार्मास्यूटिकल्स लि. के शासकीय परिसमापक**[1] वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया कि "क्या कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11 के अधीन किसी नियोजक द्वारा संदेय देयों को दी गई प्राथमिकता 1956 के कंपनी अधिनियम की धारा 529क के अधीन है प्रदान की जा सकती है ।" न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि इस बात को भी ध्यान में रखा जाना महत्वपूर्ण है कि धारा 529(1), 529(3) और 529क के परंतुक और धारा 530(1) के संशोधनों को अंतःस्थापित किए जाने के पूर्व भी, किसी भविष्य निधि, पेंशन निधि, उपदान निधि या कर्मचारियों के कल्याण के स्थापित किसी अन्य निधि से किसी कर्मचारी को देय समस्त राशियां परिसमापन कार्यवाहियों [धारा 530(1)(च)] में समस्त अन्य ऋणों के मुकाबले प्राथमिकता के आधार पर संदेय थीं । यहां तक कि कर्मकारों और कर्मचारियों को संदेय मजदूरी, वेतन और अन्य देय अन्य सभी ऋणों के मुकाबले प्राथमिकता के आधार पर संदेय थे । संसद् ने इन संशोधनों द्वारा जो किया, यह है कि शब्दों "कर्मकारों के देयों को परिभाषित किया है और उनको प्रतिभूत लेनदारों को देय ऋणों के समतुल्य इस सीमा तक कर दिया है कि यह ऋण धारा 529(1) के परंतुक के खंड (ग) के समान हो जाए । तथापि, इन संशोधनों का, यद्यपि वे पश्चात्वर्ती समय बिन्दु के हैं, निर्वचन ऐसी रीति में नहीं किया जा सकता जिसका परिणाम कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 11 की उपधारा (2), जो घोषणा करती है कि किसी नियोजक से देय रकम स्थापन की आस्तियों पर प्रथम भार होगी और अन्य सभी ऋणों के मुकाबले प्राथमिकता के आधार पर संदेय होगी, की आज्ञा को परिवर्तित कर सके । धारा 11(2) में प्रयुक्त शब्दों "अन्य सभी ऋणों" में आवश्यक रूप से वे सभी ऋण सम्मिलित होंगे जो

---

[1] (2011) 10 एस. सी. सी. 727 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 11.

प्रतिभूत लेनदारों, जैसेकि बैंकों, वित्तीय संस्थानों इत्यादि को देय हो । कर्मकारों के देयों की क्रम व्यवस्था प्रतिभूत लेनदारों को देय ऋणों के समान होने के कारण ये अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि संसद् का आशय प्रतिभूत लेनदारों के पक्ष में प्रथम भार सृजित करना और उन ऋणों को प्राथमिकता प्रदान करना जो प्रतिभूत लेनदारों को देय हों, कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम के अन्तर्गत नियोजकों से देय रकम के मुकाबले प्राथमिकता के आधार पर देय हों ।

27. उच्चतम न्यायालय ने **कर्मचारी भविष्य निधि आयुक्त** (उपरोक्त) वाले मामले में इस विषय पर प्राधिकारपूर्ण निर्णयों पर ऊपर निर्दिष्ट निर्णयों को सम्मिलित करते हुए विचार किया और स्पष्टतया अभिनिर्धारित किया कि प्रतिभूत लेनदार को देय ऋण प्रथम भार सृजित नहीं कर सकते या कर्मचारियों के कानूनी देयों के मुकाबले प्रतिभूत लेनदार के पक्ष में ऋण को प्राथमिकता प्रदान नहीं कर सकते ।

28. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विधि को लागू करते हुए अभिलेख पर लाई गई सामग्री से यह स्पष्ट है कि वसूली अधिकारी, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, कानपुर द्वारा आई एन जी वैश्य बैंक लिमिटेड के क्षेत्रीय प्रमुख को संबोधित तारीख 14 अक्तूबर, 2011 का पत्र जिसके द्वारा 12,35,176/- रुपए की मांग की गई और जो उधार लेने वाले मैसर्स वाई. ए. फाइडेलिटी इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड द्वारा देय थे । इस पत्र द्वारा कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम की धारा 8ख सपठित 1961 के आयकर अधिनियम की द्वितीय अनुसूची के नियम 26(1)(i) के अधीन तारीख 21 सितम्बर, 2005 को जारी पूर्ववर्ती निषेध सूचना को निर्दिष्ट किया गया । जिसके द्वारा यह अभिकथित किया गया था कि उस तारीख के पश्चात्वर्ती स्थापन के चल/अचल आस्तियों के किसी भी विक्रय को निषेध आदेश का अननुपालन प्रतीत किया जाएगा । इसी प्रकार के नोटिस तारीख 23 नवम्बर, 2009 और 25 मार्च, 2010 को भी पूर्ववर्ती सूचना के अननुपालन के कारण भेजे गए थे ।

29. आई एन जी वैश्य बैंक लिमिटेड ने तारीख 21 जुलाई, 2013 के पत्र द्वारा वसूली अधिकारी को सूचित किया कि उन्होंने उधार लेने वाली कंपनी की आस्तियों को, जिनको बैंक द्वारा प्रदान की गई उधार सुविधा के बाबत बंधक कर दिया गया था, 2009 में 2002 के सरफेसी अधिनियम के अधीन नीलाम कर दिया है । उन्होंने आगे अभिकथन किया

कि उत्तर प्रदेश वित्त निगम द्वारा उधार लेने वाली कंपनी से संबंधित मुख्य कारखाने, जिसमें भूमि, भवन, संयंत्र, मशीनरी समाविष्ट है के विक्रय से विक्रय आगम प्राप्त किए जाने की संभाव्यता है जो वर्तमान में उत्तर प्रदेश वित्त निगम के भौतिक कब्जे में है और जिसका प्रथम भार है और आई एन जी वैश्य बैंक का द्वितीय भार है । कर्मचारी भविष्य निधि देयों को उत्तर प्रदेश वित्त निगम द्वारा किए जाने वाले विक्रय से प्राप्त विक्रय आगमों से वसूली किया जाना चाहिए ।

30. इस पृष्ठभूमि में याची की ओर से यह दलील दी गई कि उन्होंने तारीख 30 जून, 2013 तक 3,62,84,073/- रुपए की रकम में से पचास लाख रुपए की रकम वसूल कर ली है और पांचवें प्रत्यर्थी से अधिशेष रकम वसूल किया जाना बाकी है इसलिए कर्मचारी भविष्य निधि देयों की मांग पूर्णतः गलत और असमर्थनीय है और द्वितीय याची के वेतन को कुर्क नहीं किया जा सकता था ।

31. मैं मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए और ऊपर अभिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए कानपुर स्थित कर्मचारी भविष्य निधि संगठन के वसूली अधिकारी द्वारा जारी तारीख 15 जुलाई, 2015 के आक्षेपित आदेश/पत्र में कोई अवैधता या बल नहीं पाता हूं ।

32. यदि याची कर्मचारी भविष्य निधि देयों को प्रत्यर्थी के पास आज से आठ सप्ताह के भीतर जमा कर देता है, तो द्वितीय याची के वेतन का कुर्की आदेश वापस ले लिया जाएगा ।

33. तद्नुसार रिट याचिका निस्तारित की जाती है ।

लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

शु.

राहुल हाइट्स लि. और अन्य

बनाम

पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य

तारीख 4 दिसम्बर, 2015

न्यायमूर्ति नादिरा पठेरिया

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 22क [सपठित संविधान, 1950 का अनुच्छेद 300क और 162, समवर्ती सूची की प्रविष्टि 6] – वे दस्तावेज जिनका रजिस्ट्रीकरण लोक नीति के विरुद्ध है – उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के प्रकाश में राज्य सरकार ने पोंजी योजनाओं में निवेशकों के हितों को संरक्षित करने के लिए आदेश/ज्ञापन जारी करके अनेक कंपनियों के दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण पर रोक लगा दी जिसके परिणामस्वरूप संपत्तियों के स्वामित्व का अंतरण बाधित हो गया – इस शक्ति का प्रयोग रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अंतर्गत नहीं किया गया बल्कि गरीब निवेशकों को वंचित करने के लिए आशयित संपत्ति संव्यवहारों को रोकने के लिए किया गया – समवर्ती सूची राज्य विधान-मंडल को संपत्ति अंतरण, विलेखों और दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण के संबंध में विधियां अधिनियमित करने के लिए सशक्त करती है – उक्त प्रविष्टि को दृष्टि में रखते हुए राज्य को कार्यकारी अनुदेश जारी करने का अधिकार है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा सारदा समूह की कंपनियों के विरुद्ध कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ तारीख 6 मई, 2013 और कार्यालय ज्ञापन तारीख 10 मई, 2013 जारी किए गए जिनके द्वारा सारदा समूह के कब्जे वाली संपत्तियों के अंतरण पर रोक लगा दी गई । परिणामस्वरूप स्वामित्व का अंतरण बाधित हो गया । याची के अनुसार यह संविधान के अनुच्छेद 300क के अधीन संपत्तियों के स्वामी के रूप में याचियों को प्रत्याभूत अधिकारों का अतिलंघन था । याचियों के अनुसार उक्त आदेश/ज्ञापन विधि की दृष्टि में कोई बल नहीं रखते और अधिक से अधिक कार्यकारी अनुदेश हैं जो याचियों को बिना किसी विधिक अनुक्रम के उनको प्रत्याभूत अधिकारों से वंचित करते हैं । अतः याचियों ने उक्त आदेश और ज्ञापन को रद्द किए जाने की ईप्सा करते हुए वर्तमान

याचिका फाइल की । रिट याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचारोपरांत तारीख 6 मई, 2013 का आदेश कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 2013 की रिट याचिका सं. 12197 (डब्ल्यू.) में तारीख 25 मई, 2013 को पारित आदेश के प्रकाश में जारी किया गया था । उक्त आदेश मात्र सारदा समूह के कंपनियों तक सीमित था । इसके पश्चात् तारीख 10 मई, 2013 को 73 कंपनियों, जिनके विरुद्ध शिकायतें प्राप्त की गई थीं, पर निर्बंधन अधिरोपित किए जाने की ईप्सा की गई थी । 73 कंपनियों की सूची कंपनी मामलों के मंत्रालय से वित्त विभाग द्वारा प्राप्त की गई थीं और उसके आधार पर तारीख 10 मई, 2013 का ज्ञापन जारी किया गया था । उक्त ज्ञापन कार्यकारी अनुदेश की प्रकृति में है जिसको जारी करने का अधिकार प्राधिकारियों का था । संविधान का अनुच्छेद 162 कार्यपालिका को उन मामलों, जिनके संबंध में विधान-मंडल को विधियां बनाने की शक्तियां प्राप्त हैं, शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार प्रदान करता है । वह विषय जिसके संबंध में राज्य विधान-मंडल विधि बनाने के लिए सशक्त है, संविधान की अनुसूची 7 की सूची 2 में सूचीबद्ध हैं । उक्त सूची के अतिरिक्त राज्य विधान-मंडल, सूची के अन्य विषयों पर भी विधियां बनाने के लिए सक्षम है जो सूची-3 में समाविष्ट हैं अर्थात् समवर्ती सूची और है जब राज्य विधान केन्द्र और राज्य दोनों द्वारा किसी ऐसे विषय के संबंध में जो समवर्ती सूची में समाविष्ट हैं, पारित किया जाता है तब यह होता है कि राज्य विधान-मंडल को केन्द्रीय विधान के समक्ष झुकना चाहिए । मेरे समक्ष उपस्थित मामले में ऐसा कोई केन्द्रीय विधान नहीं है और इसलिए राज्य विधान-मंडल के झुकने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । समवर्ती सूची (सूची 3) राज्य विधान-मंडल को संपत्ति अंतरण, कृषि भूमि के अलावा, विलेखों और दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण (प्रविष्टि 6) के संबंध में विधियां अधिनियमित करने के लिए सशक्त करती है । उक्त प्रविष्टि को दृष्टि में रखते हुए राज्य-प्रत्यर्थी तारीख 6 मई, 2013 और 10 मई, 2013 के कार्यकारी अनुदेशों को जारी करने का अधिकारी था । कार्यकारी अनुदेशों को जारी करने के कारण, जो राज्य द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र से प्रकट होते हैं, उन गरीब निवेशकों के हितों को संरक्षित करना है जिन्होंने पोंजी योजनाओं में अंतर्वलित कंपनियों में राशियां निवेशित कीं थीं । याची का नाम भी लोकसभा में तारीख 14 मार्च, 2013 को प्रस्तुत की गई सूची में प्रकट होता है । (पैरा 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2005] (2005) 12 एस. सी. सी. 77 =
ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3401 :
राजस्थान राज्य बनाम **बंसत नहाटा** ; 1

[2001] ए. आई. आर. 2001 राजस्थान 127 :
बंसत नहाटा बनाम **राजस्थान राज्य** । 1

आरंभिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका सं. 14612 (डब्ल्यू.).

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री किशोर दत्ता, रत्नानको बनर्जी, श्रीजीब चक्रबर्ती, जॉयदीप विश्वास, कुलदीप मलिक और सौम्या दीपदास

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री बी. पी. बनर्जी, अशोक कुमार बनर्जी, सुमन सेन गुप्ता और सतनाम पांजा

आदेश

याची ने इस आवेदन द्वारा तारीख 6 मई, 2013 के आदेश और तारीख 10 मई, 2013 के ज्ञापन को रद्द किए जाने की ईप्सा की है और साथ ही रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारियों को रजिस्ट्रीकरण के लिए याची द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों को स्वीकार किए जाने के प्रयोजनार्थ निदेशित किए जाने की भी ईप्सा की है । याची के अनुसार सारदा समूह की कंपनियों में कार्यवाहियों के आधार पर ऊपरवर्णित आदेश/ज्ञापन द्वारा अनेक कंपनियों के दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण रोक दिया गया है, तद्द्वारा स्वामित्व का अंतरण बाधित हो गया है । यह संविधान के अनुच्छेद 300क के अधीन संपत्तियों के स्वामी के रूप में याचियों की संपत्तियों के संव्यवहार के बाबत उनको प्रत्याभूत अधिकारों का अतिलंघन है । याचियों को उक्त दोनों आदेशों को दृष्टि में रखते हुए संपत्तियों के संव्यवहार से वंचित कर दिया गया है जो उन संपत्तियों के संबंध में अन्यथा रूप से संव्यवहार करने

के हकदार हैं । उक्त आदेश/ज्ञापन विधि की दृष्टि में कोई बल नहीं रखते और अधिक से अधिक कार्यकारी अनुदेश हैं जो याचियों को बिना किसी विधिक अनुक्रम के उनको प्रत्याभूत अधिकारों से वंचित करते हैं । 1976 में राजस्थान विधान-मंडल ने इसी प्रकार का एक विधान पारित किया था । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 22 को राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा **बंसत नहाटा** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में लोक नीति के विरुद्ध होने के कारण अभिखंडित कर दिया गया था और राजस्थान उच्च न्यायालय के उक्त विनिश्चय को उच्चतम न्यायालय द्वारा भी **राजस्थान राज्य** बनाम **बंसत नहाटा**[2] वाले मामले में मान्य ठहराया गया था । उपरोक्त विधान के सिद्धांतों के आधार पर संप्रकाशित विनिश्चय लोक नीति के विरुद्ध थे चूंकि उनको दृष्टि में रखते हुए प्राधिकारियों को विवाद्यकों के संबंध में अनन्य शक्तियां प्रदान की गई थीं जिनका दुरुपयोग संभव था और इसलिए उनको संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी होने के आधार पर अभिखंडित कर दिया गया था । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम संपत्ति अंतरण को नियंत्रित नहीं करता । तारीख 10 मई, 2013 का ज्ञापन विधि की दृष्टि में विधान नहीं है । राज्य ने स्वयं शक्तियों को हड़प लिया है और रजिस्ट्रीकरण से इनकार कर दिया है । तारीख 10 मई, 2013 का उक्त ज्ञापन राज्य की विधायी सक्षमता के विपरीत है । चूंकि तारीख 10 मई, 2013 के आदेश राज्य द्वारा प्रयोग की जाने वाली किसी विधायी सक्षमता के बिना है, उक्त दस्तावेज को अधिक से अधिक विभागीय परिपत्र या कार्यकारी अनुदेश प्रतीत किया जा सकता है और यह दस्तावेज विधि की दृष्टि में दूषित है चूंकि कार्यकारी शक्तियां और विधायी प्राधिकार संविधान के अनुच्छेद 162 के अनुसार समविस्तीर्ण हैं । 1908 रजिस्ट्रीकरण के अधिनियम की प्रस्तावना दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण के लिए सशक्त करती है और किसी भी प्रकार से दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण को प्रतिषिद्ध नहीं करती । चूंकि विधान-मंडल रजिस्ट्रीकरण को रोकने के लिए सक्षम नहीं है, अतः रजिस्ट्रीकरण को कार्यकारी अनुदेश जारी किए जाने के द्वारा भी रोका नहीं जा सकता । अनुसूची 7 की सूची 2 में राज्य सूची समाविष्ट है और सूची 3 में समवर्ती सूची समाविष्ट है । इसलिए प्राधिकार की कमी के कारण राज्य द्वारा जारी तारीख 10 मई, 2013 का ज्ञापन राज्य के अधिकारियों को मात्र अनुदेश है और यह कोई कार्यकारी आदेश नहीं है ।

---

[1] ए. आई. आर. 2001 राजस्थान 127.

[2] (2005) 12 एस. सी. सी. 77 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 3401.

2. 1981 में पश्चिमी बंगाल राज्य में धारा 22 प्रस्तावित की गई थी जो वर्तमान में क्रियान्वयन नहीं है । राज्य द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र में यह स्वीकार किया गया है । चूंकि कार्यकारी अनुदेश के द्वारा निदेश दिया जाना अनुज्ञेय नहीं है, इसलिए तारीख 10 मई, 2013 का ज्ञापन विधान-मंडल के विधायी सक्षमता के परे होने के कारण अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है ।

3. उक्त आवेदन का विरोध करते हुए राज्य-प्रत्यर्थी के काउंसेल ने निवेदन किया कि 2013 की रिट याचिका सं. 12197 (डब्ल्यू.) में पारित आदेश के आधार पर और पोंजी योजनाओं में निवेशकों के हितों को संरक्षित किए जाने के लिए ऐसा किया गया है कि तारीख 6 मई, 2013 और 10 मई, 2013 के आदेश जारी किए गए थे । पोंजी योजनाओं में अंतर्वलित कंपनियों की सूची तारीख 14 मार्च, 2013 को लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत की गई थी । राहूल हाइट्स लिमिटेड का नाम उक्त सूची में क्रम सं. 52 पर सम्मिलित किया गया था । याचियों द्वारा राज्यसभा के समक्ष प्रस्तुत सूची सुविस्तृत नहीं है और किसी भी प्रकार से याची के नाम को अपवर्जित नहीं करती । संसद् के समक्ष प्रस्तुत की गई सूचनाओं के आधार पर ही राज्य ने पोंजी योजनाओं में अंतर्वलित कंपनियों के संपत्तियों के रजिस्ट्रीकरण को रोका जाना उचित समझा था । यह सत्य है कि इस शक्ति का प्रयोग रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अंतर्गत नहीं किया गया है बल्कि इसका प्रयोग दुरुपयोग को रोकने और गरीब निवेशकों को वंचित करने के लिए आशयित संपत्ति संव्यवहारों को रोकने के लिए किया गया है ।

4. तारीख 6 मई, 2013 का ज्ञापन 2013 की रिट याचिका सं. 12197 (डब्ल्यू.) में पारित आदेश के आधार पर जारी किया गया था और पश्चिमी बंगाल सरकार और उसके वित्त विभाग के अनुमोदन के साथ रजिस्ट्रीकरण महानिदेशक और स्टांप राजस्व आयुक्त को ऊपरवर्णित कंपनियों द्वारा संपत्तियों का अंतरण रजिस्ट्रीकृत करने से प्रतिषिद्ध कर दिया गया था । केन्द्रीय सरकार की पहल पर तारीख 10 मई, 2013 का ज्ञापन जारी किया गया है । इसलिए इस आवेदन में कोई गुणागुण नहीं है । जो भी आदेश पारित किया गया है, निवेशको के हितों की रक्षा के लिए पारित किया गया है ।

5. मध्यक्षेपी निवेशक के काउंसेल ने निवेदन किया कि कंपनी के

विरुद्ध निवेशकों द्वारा अनेक शिकायतें फाइल की गई हैं । प्रथम शिकायत तारीख 16 जुलाई, 2014 को फाइल की गई थी जब एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । कंपनी और उसके निदेशकों के विरुद्ध समन भी जारी किए गए थे और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 102 के अधीन याची और उसके निदेशकों के खातों को भी स्थिर कर दिया गया था । याची सं. 1 के निदेशकों ने जारी किए गए समनों का कोई उत्तर नहीं दिया है और न ही वे सुसंगत फोरम के समक्ष उपस्थित हुए हैं ।

6. याची सं. 1 और उसके निदेशकों ने इस न्यायालय से आदेशों की ईप्सा करने के द्वारा असम में फोरम द्वारा जारी आदेशों और समनों को अनदेखा किए जाने की ईप्सा की है । इसलिए पारित किया गया कोई भी आदेश फाइल की गई शिकायतों और आरंभ किए गए अन्वेषण को विफल कर देगा और इसलिए कोई आदेश पारित न किया जाए ।

7. भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड के काउंसेल ने निवेदन किया कि शिकायतों के आधार पर अन्वेषण आरंभ किए गए हैं और वे काफी अग्रिम प्रक्रम पर पहुंच चुके हैं और 45 दिनों के भीतर रिपोर्ट फाइल कर दी जाएगी । इसलिए कोई आदेश पारित न किया जाए ।

8. इसके उत्तर में याची के काउंसेल ने निवेदन किया कि उनके द्वारा उठाए गए बिन्दुओं का उत्तर राज्य-प्रत्यर्थी को सम्मिलित करते हुए किसी भी पक्ष द्वारा नहीं दिया गया है । उक्त अनुदेश को जारी करने का प्राधिकार राज्य को नहीं है चूंकि फाइल की गई प्रतिरक्षा से ऐसा प्रतीत होता है कि इसको केन्द्रीय सरकार की पहल पर जारी किया गया था और अनुदेशों का अनुसरण आंखें मूंद कर किया गया था, इसलिए जिन आदेशों की ईप्सा की गई है, पारित किए जाएं ।

9. पक्षों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचारोपरांत तारीख 6 मई, 2013 का आदेश कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 2013 की रिट याचिका सं. 12197 (डब्ल्यू.) में तारीख 25 मई, 2013 को पारित आदेश के प्रकाश में जारी किया गया था । उक्त आदेश मात्र सारदा समूह के कंपनियों तक सीमित था । इसके पश्चात् तारीख 10 मई, 2013 को 73 कंपनियों, जिनके विरुद्ध शिकायतें प्राप्त की गई थीं, पर निर्बंधन अधिरोपित किए जाने की ईप्सा की गई थी । 73 कंपनियों की सूची कंपनी मामलों के मंत्रालय से वित्त विभाग द्वारा प्राप्त की गई थी और उसके आधार पर तारीख 10 मई, 2013 का ज्ञापन जारी किया गया था । उक्त ज्ञापन

कार्यकारी अनुदेश की प्रकृति में है जिसको जारी करने का अधिकार प्राधिकारियों का था । संविधान का अनुच्छेद 162 कार्यपालिका को उन मामलों, जिनके संबंध में विधान-मंडल को विधियां बनाने की शक्तियां प्राप्त हैं, शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार प्रदान करता है । वह विषय जिसके संबंध में राज्य विधान-मंडल, के अन्य विधि बनाने के लिए सशक्त है, संविधान की अनुसूची 7 की सूची 2 में सूचीबद्ध हैं । उक्त सूची के अतिरिक्त राज्य विधान-मंडल, सूची के अन्य विषयों पर भी विधियां बनाने के लिए सक्षम है जो सूची-3 में समाविष्ट हैं अर्थात् समवर्ती सूची और है जब राज्य विधान केन्द्र और राज्य दोनों द्वारा किसी ऐसे विषय के संबंध में जो समवर्ती सूची में समाविष्ट हैं, पारित किया जाता है तब यह होता है कि राज्य विधान-मंडल को केन्द्रीय विधान के समक्ष झुकना चाहिए । मेरे समक्ष उपस्थित मामले में ऐसा कोई केन्द्रीय विधान नहीं है और इसलिए राज्य विधान-मंडल के झुकने का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । समवर्ती सूची (सूची 3) राज्य विधान-मंडल को संपत्ति अंतरण, कृषि भूमि के अलावा, विलेखों और दस्तावेजों के रजिस्ट्रीकरण (प्रविष्टि 6) के संबंध में विधियां अधिनियमित करने के लिए सशक्त करती है । उक्त प्रविष्टि को दृष्टि में रखते हुए राज्य-प्रत्यर्थी तारीख 6 मई, 2013 और 10 मई, 2013 के कार्यकारी अनुदेशों को जारी करने का अधिकारी था ।

10. कार्यकारी अनुदेशों को जारी करने के कारण, जो राज्य द्वारा फाइल किए गए शपथपत्र से प्रकट होते हैं, उन गरीब निवेशकों के हितों को संरक्षित करना है जिन्होंने पोंजी योजनाओं में अंतर्वलित कंपनियों में राशियां निवेशित की थीं । याची का नाम भी लोकसभा में तारीख 14 मार्च, 2013 को प्रस्तुत की गई सूची में प्रकट होता है ।

11. चूंकि तारीख 6 मई, 2013 और 10 मई, 2013 के पत्र जारी किए जाने में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती, यह आवेदन गुणागुण रहित पाया जाता है और खारिज किया जाता है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

शु.

एस्टीम प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड और एक अन्य

तारीख 9 सितम्बर, 2015

न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 11(6) – मध्यस्थ की नियुक्ति – जहां पक्षकारों द्वारा किसी करार के अन्तर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति की प्रक्रिया के अधीन कोई पक्षकार अपेक्षित रूप से कार्य करने में विफल रहता है, वहां अन्य पक्षकार मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा पदाभिहित किसी अन्य व्यक्ति या संस्था से मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अनुरोध कर सकता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि इंडियन ऑयल कारपोरेशन ने पाइप लाइन/संरचना संबंधी कार्य से संबंधित संविदा के अन्तर्गत कार्य करने के लिए स्वीकार्यता पत्र जारी किया था । संविदा के अन्तर्गत ठेकेदार द्वारा ठेके की लागत के संबंध में रकम की मांग की गई और इंडियन ऑयल कारपोरेशन द्वारा रकम का संदाय न किए जाने के लिए संविदा के अंतर्गत विवाद उत्पन्न हो गया । ठेकेदार ने विवाद के निस्तारण के लिए संविदा के अंतर्गत मध्यस्थ कार्यवाही की मांग की किन्तु इंडियन ऑयल कारपोरेशन ने माध्यस्थम् के माध्यम से विवाद के निपटारे में कोई रुचि नहीं दर्शित की । अतः ठेकेदार द्वारा 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए आवेदन प्रस्तुत किया गया । आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथापि, संविदा के अन्तर्गत देयों, जैसाकि दावा किया गया है, का संदाय नहीं किया गया और तद्नुसार व्यथित ठेकेदार ने संविदा की सामान्य शर्तों (संक्षेप में "जीसीसी") के खंड 9 का अवलंब लिया और तारीख 11 जून, 2014 को उनके दावे को मध्यस्थ द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए निर्दिष्ट किए जाने हेतु नोटिस जारी कर दिया । संदाय करने से भी इनकार कर दिया । ठेकेदार ने माध्यस्थम् की मांग के बाबत स्वामी के उपरोक्त आक्षेप के कारण माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन न्यायालय द्वारा मध्यस्थ के नामांकन के लिए आवेदन किया । मध्यस्थ की

नियुक्ति के लिए इन कार्यवाहियों में मुख्य न्यायमूर्ति या उनके प्रतिनिधि को इस बाबत संतुष्ट होना चाहिए कि आवेदन सक्षम उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त पक्षों के मध्य एक बाध्यकारी माध्यस्थम् करार की विद्यमानता भी निश्चायक आदेश के लिए पूर्व शर्त है । किन्तु इन संक्षिप्त कार्यवाहियों में दावे को गुणागुण पर निर्णीत किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं होती । चूंकि वर्तमान मामले में, ठेकेदार द्वारा किया गया अंतिम दावा स्वामी द्वारा पत्र तारीख 2 फरवरी, 2015 द्वारा आंशिक रूप से ही स्वीकार किया गया है, यह स्पष्ट है कि एक संविदात्मक विवाद उद्भूत हो गया है । चूंकि पक्ष सहमत प्रक्रिया के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति करने में विफल रहे हैं, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि यह उचित मामला है जिसमें न्यायालय द्वारा मध्यस्थ नामांकित किया जाए । मध्यस्थता के लिए सहमत स्थान नई दिल्ली है और इसलिए मैं उच्चतम न्यायालय के दिल्ली आधारित पूर्व न्यायाधीश के लिए पक्षों के झुकाव को ध्यान में रखते हुए माननीय न्यायमूर्ति डा. अरिजीत पसायत को इस विवाद में मध्यस्थ के रूप में नामांकित करता हूं । तद्नुसार रजिस्ट्री को निदेशित किया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति विद्वान् मध्यस्थ को भेजी जाए जो तत्पश्चात् विधि अनुसार मामले में अग्रसर होंगे । (पैरा 6, 8 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	ए. आई. आर. 2015 गुवाहाटी 57 = 2015 (3) आर. बी. एल. आर. 395 : **बोंगईगांव रिफाइनरी और पेट्रोकेमिकल्स लिमिटेड** बनाम **जी. आर. इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड** ;	14
[2011]	(2011) 3 एस. सी. सी. 507 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 987 : **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **एस. पी. एस. इंजीनियरिंग लिमिटेड** ;	9,16
[2010]	(2010) 5 एस. सी. सी. 306 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1793 : **इंडो विंड एनर्जी लिमिटेड** बनाम **वेश्केयर (इंडिया लिमिटेड)** ;	9,16

[2009] (2009) 1 एस. सी. सी. 267 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 170 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **बोघड़ा पॉलीफैब प्राइवेट लिमिटेड** । 9, 16

प्रकीर्ण (सिविल) अधिकारिता : 2014 की माध्यस्थम् आवेदन सं. 14.

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11(6) के अंतर्गत आवेदन ।

आवेदक की ओर से — सर्वश्री जी. एल. सहेवाला (वरिष्ठ अधिवक्ता), मोहम्मद असलम, डी. सेनापति, (सुश्री) आर. जैन और ए. चेतिया

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री के. एन. चौधरी (वरिष्ठ अधिवक्ता), एम. महंता, (सुश्री) आर. डेका, (सुश्री) आर. ककाती और पी. पी. मेधी

आदेश

आवेदक की ओर से उपस्थिति विद्वान् काउंसेल श्री डी. सेनापति को सुना । प्रत्यर्थियों का प्रतिनिधित्व विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. एन. चौधरी ने किया ।

2. यह आवेदन 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् "माध्यस्थम् अधिनियम" कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 11(6) के अधीन याची/ठेकेदार और इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड, बोंगईगांव रिफाइनरी (जिसको इसमें इसके पश्चात् "स्वामी" कहकर निर्दिष्ट किया गया है) के मध्य संविदा से उद्भूत विवाद के लिए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए फाइल किया गया है । संविदा पाइप लाइन/संरचना संबंधी कार्य से संबंधित है और स्वामी ने इसके लिए तारीख 21 अप्रैल, 2010 को स्वीकार्यतः का पत्र दे दिया था । संविदा के मूल्य का आंकलन 4,68,00,265.05 रुपए (चार करोड़ अड़सठ लाख दो सौ पैंसठ रुपए और पांच पैसे) किया गया था किन्तु स्वीकृत रूप से पत्र में ही यह स्पष्ट कर दिया गया था कि अंतिम संविदा मूल्य भारसाधक इंजीनियर द्वारा निष्पादित और परिमित कार्य की वास्तविक मात्रा के आधार पर फेरफार के अन्तर्गत होगा । कार्य की समाप्ति की आरंभिक अवधि

स्वामी के तारीख 23 मार्च, 2011 के पत्र द्वारा तारीख 30 अप्रैल, 2011 तक बढ़ा दी गई थी ।

3. चूंकि कार्य की मात्रा मूल अनुमान के परे जा चुकी थी, ठेकेदार ने तारीख 8 जून, 2011 के पत्र द्वारा भारसाधक इंजीनियर अर्थात् मै. इंजीनियरर्स इंडिया लिमिटेड से अनुमानित मात्रा के परे अतिरिक्त कार्य के अनुमोदन के लिए अनुरोध किया चूंकि संदाय प्राप्त करने के लिए अनुमोदन आवश्यक होता है । ठेकेदार के पत्र के उत्तर में भारसाधक इंजीनियर ने पुनरीक्षित अनुमान प्रस्तुत करने के लिए ठेकेदार को निर्देशित किया चूंकि इस सूचना को सक्षम प्राधिकारी के विनिश्चय के लिए पूर्व शर्त माना गया था ।

4. कार्य तारीख 15 जून, 2011 को समाप्त हुआ और ठेकेदार ने पाइप लाइन की माप कर ली और तत्पश्चात् उन्होंने तारीख 22 जून, 2011 को कार्य की अनुमानित लागत भारसाधक इंजीनियर को अनुमोदन के लिए सक्षम प्राधिकारियों को भेजे जाने हेतु अग्रेसित कर दी । ठेकेदार के पत्र के साथ संलग्न पुनरीक्षित अनुमानित लागत से दर्शित होता है कि कार्य की मात्रा को अत्यधिक बढ़ा दिया गया था और ठेकेदार द्वारा अंतिम मूल्य 8,19,51,225.72 रुपए (आठ करोड़ उन्नीस लाख इक्यावन हजार दो सौ पच्चीस रुपए और बहत्तर पैसे मात्र) दर्शित किया गया था ।

5. ठेकेदार से अंतिम अनुमानित लागत प्राप्त होने के पश्चात् स्वामी ने तारीख 22 मार्च, 2012 को एक उच्चतर छूट पर विचार विमर्श के लिए संयुक्त बैठक बुलाई क्योंकि कार्य की बढ़ी हुई परिधि और तद्नुसार बैठक के कार्यवृत्त में ठेकेदार द्वारा प्रस्तावित कतिपय अतिरिक्त छूट को अभिलिखित किया गया था । तत्पश्चात् ठेकेदार द्वारा 2,84,98,511/- रुपए (दो करोड़ चौरासी लाख अठानवे हजार पांच सौ ग्यारह रुपए मात्र) का अंतिम अधिशेष बिल प्रस्तुत कर दिया गया । अतः ठेकेदार द्वारा कार्य की अतिरिक्त मात्रा के साथ दावाकृत कुल रकम 8,18,43,467/- रुपए (आठ करोड़ अठारह लाख तैंतालीस हजार चार सौ सड़सठ रुपए मात्र) थी ।

6. तथापि, संविदा के अन्तर्गत देयों, जैसाकि दावा किया गया है, का संदाय नहीं किया गया और तद्नुसार व्यथित ठेकेदार ने संविदा की सामान्य शर्तों (संक्षेप में "जीसीसी") के खंड 9 का अवलंब लिया और तारीख 11 जून, 2014 को उनके दावे को मध्यस्थ द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए निर्दिष्ट किए जाने हेतु नोटिस जारी कर दिया ।

7. स्वामी ने मांग को अस्वीकृत कर दिया और उन्होंने अपने तारीख

5 जुलाई, 2014 के उत्तर में यह पक्षकथन किया कि ठेकेदार ने संविदा के निबंधनों के अनुसार अतिरिक्त संदाय के लिए कोई दावा नहीं किया था और इसलिए उनका दावा पोषणीय नहीं है । ठेकेदार के दावे को अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर किया गया दावा भी बताया गया और स्वामी ने संविदा के अंतर्गत जमा की गई प्रतिभूति जमा का पुनर्संदाय अंतिम बिल के संदाय के बिना करने से भी इनकार कर दिया ।

8. ठेकेदार ने माध्यस्थम् की मांग के बाबत स्वामी के उपरोक्त आक्षेप के कारण माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन न्यायालय द्वारा मध्यस्थ के नामांकन के लिए आवेदन किया । मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए इन कार्यवाहियों में मुख्य न्यायमूर्ति या उनके प्रतिनिधि को इस बाबत संतुष्ट होना चाहिए कि आवेदन सक्षम उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त पक्षों के मध्य एक बाध्यकारी माध्यस्थम् करार की विद्यमानता भी निश्चायक आदेश के लिए पूर्व शर्त है । किन्तु इन संक्षिप्त कार्यवाहियों में दावे को गुणागुण पर निर्णीत किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं होती ।

9. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **बोघड़ा पॉलीफैब प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने आरंभिक विवाद्यकों, जो माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11 के अधीन कार्यवाहियों में न्यायालय के विचारणार्थ उद्भूत हो सकते हैं, की पहचान की और उनको पृथक् किया । इन विवाद्यकों को इस प्रकार कोटिबद्ध किया गया :– (i) क्या मुख्य न्यायमूर्ति या उनका प्रतिनिधि निर्णीत करने के लिए बाध्य है ; (ii) उन विवाद्यकों को जिनको निर्णीत किया जा सकता है ; और (iii) अन्य विवाद्यकों को जिनको मध्यस्थ द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए । इस निर्णय के अनुसार न्यायाधीश को धारा 11 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए यह निर्णय नहीं करना चाहिए कि क्या दावा माध्यस्थम् खंड के अन्तर्गत आता है (उदाहरणार्थ एक ऐसा मामला जो विभागीय प्राधिकारी द्वारा अंतिम विनिश्चय के लिए आरक्षित कर लिया गया है और जिसको माध्यस्थम् से अपवर्जित और विवर्जित कर दिया गया है) । इसके अतिरिक्त, उच्चतम न्यायालय के अनुसार माध्यस्थम् में अन्तर्वलित दावे के गुणागुण माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा निर्णीत किए जाने के लिए छोड़ दिए जाने चाहिए । इस विधिक प्रतिपादना बाद में **इंडो विंड एनर्जी लिमिटेड**

[1] (2009) 1 एस. सी. सी. 267 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 170.

बनाम **वेश्केयर (इंडिया लिमिटेड)**[1] और **इंडियन ऑयल कारपोरेशन लिमिटेड** बनाम **एस. पी. एस. इंजीनियरिंग लिमिटेड**[2] वाले मामलों में भी दोहराया गया ।

10. अब मैं माध्यस्थम् खंड का उल्लेख करता हूं जो पक्षों को शासित करता है और जिसको तुरंत निर्देश के लिए उद्धृत किया गया है :–

"9.0.0.0 माध्यस्थम्

9.0.1.0 इस करार के खंड 6.6.3.0 के उपबंधों के अनुसार ठेकेदार के अंतिम बिल, उसके सूचित दावे से उत्पन्न कोई विवाद और ठेकेदार के विरुद्ध स्वामी के किसी दावे से उद्भूत कोई विवाद खंड 6.7.1.0, 6.7.2.0 और 9.0.2.0 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, यदि ठेकेदार ने खंड 9.1.1.0 में निर्दिष्ट आनुकल्पिक विवाद समाधान तंत्र के विकल्प को नहीं चुना है, खंड 9.0.1.1 के उपबंधों के अनुसार चयनित एकल मध्यस्थ के माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किया जाएगा । विनिर्दिष्ट रूप से यह सहमति व्यक्त की जाती है कि स्वामी ठेकेदार के विरुद्ध अपने दावे को प्रतिदावे के रूप में फाइल कर सकता है यदि ठेकेदार का कोई अधिसूचित दावा माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया गया है । तथापि, ठेकेदार को किसी दावे की मुजराई प्रतिरक्षा या प्रतिदावा फाइल करने का अधिकार नहीं होगा जो खंड 6.6.3.0 के उपबंधों के अनुसार ठेकेदार के अंतिम बिल में सम्मिलित अधिसूचित दावा नहीं है ।"

11. जैसाकि उपरोक्त खंड में देखा जा सकता है, ठेकेदार के अधिसूचित दावे से उद्भूत कोई विवाद खंड 9.0.4.0 के अधीन माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है, माध्यस्थम् का स्थान नई दिल्ली में होना अनुध्यात है, साथ ही मध्यस्थ को यह स्वतंत्रता होगी कि वह पक्षों के सहमति के साथ किसी अन्य स्थान पर विवाद का फैसला कर सके ।

12. वर्तमान मामले में, ठेकेदार ने तारीख 22 जून, 2011 को अर्थात् तारीख 15 जून, 2011 को कार्य समाप्त होने के 10 दिनों के भीतर संविदा के अंतर्गत देयों के अनुमानित लागत अधिसूचित कर दी थी । तत्पश्चात्, तारीख 22 मार्च, 2012 को स्वामी और ठेकेदार द्वारा छूट के बाबत विचार

[1] (2010) 5 एस. सी. सी. 306 = ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1793.
[2] (2011) 3 एस. सी. सी. 507 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 987.

विमर्श किया गया था और ठेकेदार द्वारा अंततः अंतिम बिल तारीख 4 फरवरी, 2014 को प्रस्तुत कर दिया गया था । किन्तु जब तक कि तारीख 24 जुलाई, 2014 को यह आवेदन फाइल नहीं कर दी गई, स्वामी द्वारा ठेकेदार द्वारा प्रस्तुत किए गए अंतिम बिल का कोई उत्तर नहीं दिया गया ।

13. तथापि, ठेकेदार द्वारा तारीख 22 मई, 2015 को फाइल किए गए खंडन शपथपत्र में स्वामी के तारीख 2 फरवरी, 2015 का पत्र संलग्न है जो दर्शित करता है कि अतिरिक्त मदों के लिए कुछ अतिरिक्त रकम के संदाय का अनुमोदन प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था । इस पत्र द्वारा 7,66,07,732.33 रुपए (सात करोड़ छियासठ लाख सात हजार सात सौ बत्तीस रुपए और तैंतीस पैसे) का पुनरीक्षित संविदा मूल्य स्वीकार किया गया था । अतः 52,35,734.67 रुपए (बावन लाख पैंतीस हजार सात सौ चौंतीस रुपए और सड़सठ पैसे) के अन्तर का दावा किया गया और जिस रकम को संदाय किए जाने का प्रस्ताव किया गया है, स्पष्टतः दर्शित है चूंकि ठेकेदार का अनुमान 8,18,43,467/- रुपए का था । इसके अतिरिक्त संविदा के लिए प्रतिभूति जमा अभी भी स्वामी द्वारा प्रतिधारित है और इससे भी जीसीसी के खंड 2.1.0.0 के अधीन मध्यस्थ द्वारा निपटाए जाने योग्य विवाद उत्पन्न होता है ।

14. स्वामी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. एन. चौधरी ने निवेदन किया कि इन्हीं कार्यवाहियों में न्यायालय को निर्णीत करना चाहिए कि क्या ठेकेदार द्वारा अतिरिक्त कार्य के लिए किए गए दावे के आधार पर माध्यस्थम् खंड के संदर्भ में माध्यस्थम् विवाद उद्भूत होता है । विद्वान् काउंसेल ने **बोंगईगांव रिफाइनरी और पेट्रोकेमिकल्स लिमिटेड** बनाम **जी. आर. इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड**[1] वाले मामले का अवलंब यह दलील देते हुए लिया कि न्यायालय द्वारा मध्यस्थ नियुक्त किए जाने के पूर्व विनिर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या विवाद माध्यस्थम् खंड के निबंधनों के अंतर्गत आता है । उद्धृत निर्णय माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में, जिसमें माध्यस्थम् पंचाट को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी, पारित किया गया था और उस संदर्भ में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब माध्यस्थम् पंचाट किसी ऐसे विवाद पर विचार करता है जो माध्यस्थम् की परिधि के अंतर्गत नहीं आता तो यह एक अधिकारिता संबंधी त्रुटि है जिसका निराकरण माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में किया जा सकता है । इसलिए मेरे

[1] ए. आई. आर. 2015 गुवाहाटी 57 = 2015 (3) आर. बी. एल. आर. 395.

विचार में यह विनिश्चय स्वामी की दलीलों का समर्थन नहीं करता ।

15. उच्चतम न्यायालय ने पहले ही अभिनिर्धारित किया है कि न्यायाधीश को माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 11 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए स्वयं को मुकदमेबाजी में संलिप्त पक्षों के मध्य माध्यस्थम् करार की विद्यमानता के बारे में संतुष्ट करना होगा । तथापि, इस बाबत आगे परीक्षण किए जाने की कोई गुंजाइश नहीं है कि क्या कोई दावा माध्यस्थम् खंड के अंतर्गत आता है और इसका निर्णय मध्यस्थ द्वारा किए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए । जब **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** (उपरोक्त), **इंडो विंड एनर्जी लिमिटेड** (उपरोक्त) और **एस. पी. एस. इंजीनियरिंग लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों को इस मामले में लागू किया जाता है, तो इस निष्कर्ष से बच निकलने की कोई गुंजाइश शेष नहीं रह जाती कि स्वामी द्वारा उठाए गए बिन्दु पर नियुक्त मध्यस्थ द्वारा विचार किया जाना चाहिए अन्यथा इस न्यायालय को अपनी अनुज्ञेय अधिकारिता के परे जाकर कार्य करना होगा ।

16. चूंकि वर्तमान मामले में, ठेकेदार द्वारा किया गया अंतिम दावा स्वामी द्वारा पत्र तारीख 2 फरवरी, 2015 द्वारा आंशिक रूप से ही स्वीकार किया गया है, यह स्पष्ट है कि एक संविदात्मक विवाद उद्भूत हो गया है । चूंकि पक्ष सहमत प्रक्रिया के अनुसार मध्यस्थ की नियुक्ति करने में विफल रहे हैं, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि यह उचित मामला है जिसमें न्यायालय द्वारा मध्यस्थ नामांकित किया जाए । मध्यस्थता के लिए सहमत स्थान नई दिल्ली है और इसलिए मैं उच्चतम न्यायालय के दिल्ली आधारित पूर्व न्यायाधीश के लिए पक्षों के झुकाव को ध्यान में रखते हुए माननीय न्यायमूर्ति डा. अरिजीत पसायत को इस विवाद में मध्यस्थ के रूप में नामांकित करता हूं । तद्नुसार रजिस्ट्री को निदेशित किया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति विद्वान् मध्यस्थ को भेजी जाए जो तत्पश्चात् विधि अनुसार मामले में अग्रसर होंगे ।

17. उपरोक्त आदेश के साथ मैं इस माध्यस्थम् आवेदन को मंजूर करता हूं ।

आवेदन मंजूर किया गया ।

शु.

हितेन्द्र बोरकर

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य

तारीख 28 जुलाई, 2015

न्यायमूर्ति पी. साम कोशी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 11 – पूर्व-न्याय – जिस विवाद्यक को एक बार चुनौती दी जा चुकी है और जिसको निर्णीत किया जा चुका है, को मात्र इस आधार पर कि याची पहली बार में कुछ आधारों का अवलंब नहीं ले सका था और जिनको अब वह पश्चात्वर्ती रिट याचिका के माध्यम से उठा रहा है, पुनः उठाए जाने और पुनः विवादित करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

संक्षेप में वाद के तथ्य ये हैं कि याची ने पूर्ववर्ती अवसर पर उद्भूत वाद कारण के बाबत रिट याचिका फाइल की थी जिनको न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया था कि गुणागुण से रहित है । तत्पश्चात् याची ने उसी वाद कारण के आधार पर पुनः एक अन्य रिट याचिका फाइल की और रिट याचिका में मामूली फेरफार कर दिया । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधि की यह सुस्थापित स्थिति है कि किसी मुकदमेबाज को यह अधिकार नहीं है कि वह एक ही वाद कारण के बाबत मात्र आधारों में परिवर्तन करने के द्वारा बारम्बार न्यायालय की शरण ले । सभी संभव आधारों को पहली बार में ही न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए या उनको चुनौती दी जानी चाहिए । मुकदमेबाज ने ऐसा नहीं किया अतः हम उसको एक ही वाद कारण के आधार पर बारम्बार, प्रत्येक बार आधारों में परिवर्तन करने के द्वारा, मामला प्रस्तुत करने की अनुज्ञा नहीं देंगे । जिस विवाद्यक को एक बार चुनौती दी जा चुकी है और जिसको निर्णीत किया जा चुका है, को मात्र इस आधार पर कि याची पहली बार में कुछ आधारों का अवलंब नहीं ले सका था और जिनको अब वह पश्चात्वर्ती रिट याचिका के माध्यम से उठा रहा है, पुनः उठाए जाने और पुनः विवादित करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । यदि इस प्रकार की प्रणाली और सिद्धांतों को अनुज्ञा प्रदान की जाती है तो मुकदमेबाजी का कभी अंत नहीं होगा और पूर्व में पारित निर्णय कभी भी बाध्यकारी प्रभाव नहीं रख

सकेंगे और प्रमिततः इसी कारणवश पूर्व न्याय के सिद्धांत को अंगीकृत किया गया और लागू किया गया । (पैरा 3)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 683 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1486 : **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** बनाम **आल इंडिया मैन्यूफैक्चर्स आर्गनाइजेशन और अन्य** ;	4
[2004]	(2004) 4 एस. सी. सी. 281 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2186 : **एस्काट्र्स फार्म लिमिटेड, (जिसको पहले मैसर्स एस्कार्ट्स फार्म्स लिमिटेड) रामगढ़** बनाम **कमिश्नर, कुमाऊं डिविजन, नैनीताल, उत्तर प्रदेश और अन्य** ।	5

आरंभिक (सिविल रिट) अधिकारिता : 2010 की रिट याचिका सं. 1261.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्रीमती रेनू कोचर
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री बी. गोपा कुमार (उप-सरकारी उप-महाधिवक्ता)

आदेश

अभिलेख के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि याची ने एक पूर्ववर्ती अवसर पर उद्भूत वाद कारण के बाबत एक रिट याचिका फाइल की थी जिसको 2009 की रिट याचिका सं. 6308 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया और जो इस न्यायालय द्वारा तारीख 4 नवम्बर, 2009 को यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दी गई थी कि यह गुणागुण से रहित है ।

2. अब, याची ने हमारे समक्ष उपस्थित रिट याचिका के माध्यम से पुनः उसी वाद कारण के आधार पर रिट याचिका में मामूली फेरफार करते हुए उसमें उठाए गए आधारों पर चुनौती दी है ।

3. विधि की यह सुस्थापित स्थिति है कि किसी मुकदमेबाज को यह अधिकार नहीं है कि वह एक ही वाद कारण के बाबत मात्र आधारों में परिवर्तन करने के द्वारा बारम्बार न्यायालय की शरण ले । सभी संभव

आधारों को पहली बार में ही न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए या उनको चुनौती दी जानी चाहिए । मुकदमेबाज ने ऐसा नहीं किया अतः हम उसको एक ही वाद कारण के आधार पर बारम्बार, प्रत्येक बार आधारों में परिवर्तन करने के द्वारा, मामला प्रस्तुत करने की अनुज्ञा नहीं देंगे । जिस विवाद्यक को एक बार चुनौती दी जा चुकी है और जिसको निर्णीत किया जा चुका है, को मात्र इस आधार पर कि याची पहली बार में कुछ आधारों का अवलंब नहीं ले सका था और जिनको अब वह पश्चात्वर्ती रिट याचिका के माध्यम से उठा रहा है, पुनः उठाए जाने और पुनः विवादित करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । यदि इस प्रकार की प्रणाली और सिद्धांतों को अनुज्ञा प्रदान की जाती है तो मुकदमेबाजी का कभी अंत नहीं होगा और पूर्व में पारित निर्णय कभी भी बाध्यकारी प्रभाव नहीं रख सकेंगे और प्रमिततः इसी कारणवश पूर्व न्याय के सिद्धांत को अंगीकृत किया गया और लागू किया गया ।

4. उच्चतम न्यायालय ने पूर्व न्याय के उक्त विवाद्यक पर **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** बनाम **आल इंडिया मैन्यूफैक्चर्स आर्गनाइजेशन और अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया जो निम्नलिखित है :–

> "पूर्व न्याय एक ऐसा सिद्धांत है जो वृहत्तर लोक हित पर आधारित है और जिसको दो आधारों पर खोजा गया एक सूत्र है Nemo debet bis vexari pro una et eadem causa (किसी को भी एक ही कारणवश दो बार परेशान नहीं किया जा सकता) और दूसरा है लोक नीति कि एक ही प्रकार की मुकदमेबाजी का अंत होना चाहिए । सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 पूर्व न्याय के सिद्धांत का आधार नहीं है, किन्तु मात्र उसकी कानूनी मान्यता है और इसलिए, इस धारा को विधि के सामान्य सिद्धांत की व्यापकता के रूप में विचारित किया जाना चाहिए । इस सिद्धांत का मुख्य प्रयोजन है कि यदि कोई मामला किसी पूर्ववर्ती कार्यवाही में विनिर्धारित हो चुका है, तो पक्षों को यह अधिकार नहीं होना चाहिए कि वे उसी मामले को बारम्बार विवादित करें । सिविल प्रक्रिया संहिता, की धारा 11 इस सिद्धांत को मान्यता प्रदान करती है और न्यायालय को किसी वाद या विवाद्यक पर विचार करने से प्रवारित करती है, जो पूर्व न्याय है और इस प्रकार, 'वाद कारण निर्बंधन' और 'विवाद्यक निर्बंधन' दोनों को मान्यता प्रदान करती है ।"

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 683 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1486.

5. उच्चतम न्यायालय द्वारा **एस्काट्‌र्स फार्म लिमिटेड, (जिसको पहले मैसर्स एस्कार्ट्स फार्म्स लिमिटेड) रामगढ़** बनाम **कमिश्नर, कुमाऊं डिविजन, नैनीताल, उत्तर प्रदेश और अन्य**[1] वाले मामले में भी समान विचार व्यक्त किए गए हैं, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने पूर्व न्याय के विवाद्यक पर विचार करते हुए अभिनिर्धारित किया जो निम्नलिखित है :–

> "पूर्व न्याय एक अभिवाक् है जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 11 के अनुसार, सिविल कार्यवाहियों में लागू होता है । यह एक सिद्धांत है जो मूल या अपीली कार्यवाहियों में होने वाली मुकदमेबाजी को अंतिमता प्रदान करने के लिए लागू किया जाता है । सारतः इस सिद्धांत का अर्थ है कि किसी ऐसे विवाद्यक या बिन्दु को, जो निर्णीत और अंतिम हो चुका है, को पुनः उठाए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । रेस का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसी प्रत्येक बात जो अधिकारों के बाबत उद्देश्य सृजित करती है और जिसमें कोई उद्देश्य, विषयवस्तु या प्रास्थिति सम्मिलित होती है' और पूर्व न्याय का शाब्दिक अर्थ है ऐसा कोई मामला जिसका न्यायनिर्णयन हो चुका है ; कोई ऐसी बात जिसपर न्यायिक रूप से कार्यवाही की जा चुकी है या जिसको निर्णीत किया जा चुका है ; कोई बात या मामला जिसको निर्णय द्वारा स्थिरिकृत किया जा चुका है ।"

6. ऊपर उद्धृत विनिश्चयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए प्राधिकार पूर्ण निर्णयों को दृष्टि में रखते हुए इस न्यायालय का यह विचार है कि मेरे समक्ष उपस्थित रिट याचिका इस तथ्य के कारण पोषणीय नहीं है कि इस रिट याचिका में अन्तर्वलित विवाद्यक को पहले ही 2009 की रिट याचिका सं. 6308 में उठाया और निर्णीत किया जा चुका है और जिसको तारीख 4 नवम्बर, 2009 के आदेश द्वारा खारिज किया जा चुका है । मात्र आधारों में परिवर्तन करके कोई पश्चात्‌वर्ती रिट याचिका जिसके द्वारा समान अनुतोष की ईप्सा की जाए, पोषणीय नहीं होती ।

7. तद्‌नुसार, मेरे समक्ष उपस्थित रिट याचिका गुणागुण से रहित होने के कारण खारिज की जाती है ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

शु.

---

[1] (2004) 4 एस. सी. सी. 281 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 2186.

(2017) 1 सि. नि. प. 36 पटना

पारस नाथ गिरी

बनाम

दुर्गा गिरी

तारीख 3 दिसम्बर, 2015

न्यायमूर्ति आदित्य कुमार त्रिवेदी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 और आदेश 43(1) [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2(ज), 63 तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68] – विल – प्रोबेट –विल का संदिग्ध होना – संदिग्ध परिस्थितियों का निवारण नहीं होना – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि कोई विल संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी हुई है और प्रतिपादक द्वारा उसका समुचित तौर पर निवारण नहीं किया जाता है तो ऐसा विल संदिग्ध माना जाएगा और उसका निष्पादन तथा प्रोबेट रद्द किया जाना सर्वथा समुचित और विधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, आवेदक/प्रत्यर्थी ने ऊपर उल्लिखित संपत्ति के बाबत चन्द्र गिरी पुत्र शिवधरी गिरी, ग्राम मंगलापुर, पश्चिमी चंपारन द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित विल के आधार पर अन्य विधिक बाध्यताओं को पूरा करने के पश्चात् तारीख 24 अगस्त, 1995 को प्रोबेट/प्रशासन पत्र मंजूर किए जाने के लिए याचिका फाइल की । अपीलार्थी/आक्षेपकर्ता न्यायालय में प्रस्तुत हुआ और उसने लिखित कथन फाइल किया जिसमें तुच्छ आक्षेप के अतिरिक्त आवेदक की हैसियत को भी चुनौती दी जिसकी शनाख्त एक चालाक, बेईमान, लालची मुकदमेबाज के रूप में की गई है जिसने देवी की संपत्ति को हड़पने का प्रयास किया है और उसने इस संपूर्ण घटना को अपने हिसाब से बनाया है और इस प्रकार अपीलार्थी ने इस आवेदन के खारिज किए जाने की प्रार्थना की है । यह भी प्रकथन किया गया है कि मृतक चन्द्र गिरी की मृत्यु उस समय हुई जब वह आक्षेपकर्ता के साथ रहता था । यह भी दलील दी गई है कि फूल कुंवर अर्थात् चन्द्र गिरी की पत्नी ने स्वार्जित संपत्ति का एक बीघा 10 कट्ठा और 5 धुर शंकरजी को तारीख 22 मई, 1980 के रजिस्ट्रीकृत दान-विलेख द्वारा प्रदान की । यह भी दलील दी गई है कि शंकरजी को दान में अन्य

संपत्ति भी दी गई थीं । यह भी प्रकट होता है कि स्वयं फूल कुंवर तथा उसके वारिसों ने मन्दिर के रख-रखाव का कार्य संभाल लिया और मूर्तियों को राजभोग, समइया और अन्य सेवाएं उपलब्ध कराने का कार्य भी संभाल लिया जिसका खर्चा फूल कुंवर की संपत्ति से ही वहन किया जाता था और फूल कुंवर की मृत्यु के पश्चात् यह कार्य चन्द्र गिरी (मृतक) द्वारा किया जा रहा था और चन्द्र गिरी की मृत्यु के पश्चात् आक्षेपकर्ता जिसे आम सम्मति से नाम-निर्देशित किया गया है, ने इस संस्था को सार्वजनिक बताया और वही इसकी देखरेख करने लगा । चन्द्र गिरी की मृत्यु के पश्चात् उसकी श्रृद्धा का कार्य आक्षेपकर्ता द्वारा पूरा किया गया । संपत्ति तथा मन्दिर की देखरेख आक्षेपकर्ता द्वारा की जा रही है । बटाईदारी का दावा आक्षेपकर्ता के विरुद्ध बटाईदारी मामला सं. 96/1997 के अन्तर्गत रघुनाथ यादव की ओर से किया गया, जिस पर आक्षेपकर्ता द्वारा देवी-देवताओं का कब्जा रखने वाली संपत्ति से संबंधित सम्यक् रूप से प्रतिवाद किया गया है । उसके द्वारा किराए का संदाय किया जा रहा है । यह भी दलील दी गई है कि आवेदक एक अन्यजन है जिसने चन्द्र गिरी की मृत्यु के पश्चात् अपने लोगों के साथ सांठ-गांठ करके प्रश्नगत कूटरचित विल तैयार की । वास्तविकता यह है कि चन्द्र गिरी का झुकाव कभी भी आवेदक के पक्ष में विल निष्पादित करने का नहीं था और न ही कभी उसने नामित साक्षियों सहित किसी भी व्यक्ति के समक्ष ऐसी इच्छा प्रकट की । चन्द्र गिरी शिक्षित था, अतः यह प्रत्याशा की जाती है कि यदि प्रश्नगत विल उसकी अंतिम विल है, तब ऐसी स्थिति में, चन्द्र गिरी के बाएं अंगूठे की छाप के बजाय उसके हस्ताक्षर होते । हस्ताक्षर न पाए जाने की स्थिति में यह उपदर्शित होता है कि कूटरचित और गढ़ा हुआ दस्तावेज तैयार किया गया था और इसी प्रकार, चन्द्र गिरी का प्रतिरूपण किया गया है । यह भी प्रकट किया गया है कि मृत्यु के पूर्व चन्द्र गिरी की शारीरिक और मानसिक दशा उसके वृद्ध होने के कारण दुर्बल चल रही थी । परस्पर विरोधी अभिवाकों पर विचार करने के पश्चात्, विद्वान् निचले न्यायालय ने निम्न मुद्दे विरचित किए – (I) क्या प्रोबेट की याचिका चलने योग्य है ? (II) क्या तारीख 24 मई, 1995 को चन्द्र गिरी द्वारा निष्पादित विल असली और सभी संदेहों से परे है ? (III) क्या चन्द्र गिरी, याची दुर्गा गिरी के पक्ष में प्रश्नगत भूमि की विल निष्पादित करने का हकदार था ? उपर्युक्त मुद्दे विरचित करने के पश्चात् विद्वान् निचले न्यायालय ने उपर्युक्त सभी मुद्दे आवेदक/प्रत्यर्थी के पक्ष में विनिश्चित किए । इसलिए यह अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान संदर्भ में विचार करने पर यह पता चलता है कि आक्षेपित निर्णय का पैरा 7 पर सबसे पहले विचार किया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत आवेदक-प्रत्यर्थी द्वारा स्वीकार किया गया है कि विल प्रदर्श-1 के अधीन निगमित संपत्ति मृतक द्वारा पहले ही उसकी पत्नी के साथ शंकरजी और पार्वती जी को दान की जा चुकी है । प्रदर्श-ई के अनुसरण में संस्वीकृति प्रदर्श-1 की सत्यता की जांच करने के लिए प्रदर्श-ई/1 का परिशीलन किया गया है जिसके आधार पर यह स्पष्ट हो गया है कि सभी संपत्ति जो प्रदर्श-1 के अधीन लाई गई है, किसी भी दशा में मृतक चन्द्र गिरी की संपत्ति नहीं है और ऐसा होने पर, सबसे महत्वपूर्ण अवयव जो विल गठित करने के लिए आवश्यक है, त्रूटिपूर्ण है । यद्यपि, विद्वान् निचले न्यायालय ने एक ओर इस तथ्य को अनदेखा किया है । तथापि, प्रोबेट के बजाय प्रशासन पत्र, की गई प्रार्थना के अनुसार, मंजूर किया है । किंतु, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष का मूल्यांकन करने के दौरान वह पहलू ध्यान में रखा जाना चाहिए और प्रदर्श-1 के सुसंगत भाग को भी ध्यान में रखना आवश्यक है जिसे जान-बूझकर निचले न्यायालय द्वारा, आक्षेपित निर्णय पैरा 7 के अधीन इसका उल्लेख करते समय छोड़ दिया गया था । विल अर्थात् प्रदर्श-1 के उपरोक्त भाग का पठन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निष्पादी ने उन मूर्तियों के सीबेट होने का दावा किया है जिनको दान दक्षिणा दी जाती थी तथा उत्तराधिकारी को अपना चेला बताया है, दूसरी ओर उसने स्वयं को उस भोगी का स्वामी दर्शाया है और इसी प्रकार, उसने अपीलार्थी/प्रत्यर्थी/प्रस्तावक को अधिकार निहित करने का प्रयत्न किया है, ऐसा किए जाने पर विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा, विल अर्थात् प्रदर्श-1 की विधिमान्यता का मूल्यांकन करते समय, इसे ठीक ही अननुमोदित किया गया है । दूसरे पहलू पर विचार करने पर, जिसके अधीन प्रशासन पत्र विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया है, यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान् निचला न्यायालय वसीयतकर्ता के आशय न होने को विनिश्चित करने में असफल रहा है । साथ ही यह तथ्य भी विनिश्चित नहीं कर सका है कि प्रदर्श-1 अर्थात् विल के पठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीबेटशिप स्थानांतरित नहीं की गई है । उपर्युक्त भाग को अभि. सा. 5 के मौखिक साक्ष्य से बल मिलता है जो कि अनुप्रमाणन का साक्षी है जिसमें यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि स्वर्गीय चन्द्र गिरी सीबेटशिप स्थानांतरित करने के लिए आनत था और इसी प्रकार अभि. सा. 4 अर्थात् आवेदक-प्रत्यर्थी के साक्ष्य से भी यही स्पष्ट होता है । (पैरा 21, 22, 23 और 24)

विल के निष्पादन के तरीके से संबंधित तथ्यात्मक पहलू पर विचार करने पर दुर्गा गिरी अर्थात् अभि. सा. 4 के साक्ष्य के पैरा 3 से यह स्पष्ट हो जाता है कि मृतक वसीयतकर्ता वृद्ध आयु होने के कारण हस्ताक्षर करने के योग्य नहीं था, उसके हाथ कांपते थे इसलिए उसने अपने बाएं अंगूठे की छाप लगाई । इस साक्षी ने उदय नारायण अर्थात् अभि. सा. 5 की साक्षी के रूप में हैसियत के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है जिसने उसकी शनाख्त की है और हरी प्रसाद की परीक्षा नहीं कराई गई है । अभि. सा. 5 ने स्वयं यह दावा किया है कि वह दस्तावेज अनुप्रमाणित किए जाने का साक्षी है । जब इस साक्षी के साक्ष्य पर सूक्ष्मता से विचार किया जाता है तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने मृतक वसीयतकर्ता के स्वास्थ्य के संबंध में साक्ष्य नहीं दिया था न ही इस कारण को स्पष्ट किया है कि वसीयतकर्ता द्वारा दस्तावेज पर अंगूठे की छाप क्यों लगाई गई जबकि वसीयतकर्ता शिक्षित था । इसके अतिरिक्त, उपरोक्त साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 4 और अभि. सा. 5 के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वसीयतकर्ता की मानसिक दशा के संबंध में अभिसाक्ष्य देने में असफल रहे कि वसीयतकर्ता स्वस्थचित्त था या नहीं और सोच-विचार करने योग्य था या नहीं, कम से कम ऐसी स्थिति में जब मृतक विल निष्पादित करने जा रहा हो । वसीयत लिखने वाले मधुरेन्द्र प्रसाद वर्मा और एक अन्य साक्षी हरी प्रसाद पुत्र चन्द्रिका प्रसाद की परीक्षा न कराए जाने से उपर्युक्त घटना और अधिक संदिग्ध हो जाती है । स्वीकृततः, विल प्रदर्श-1 रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज है । किंतु इसके बावजूद इसकी विधिमान्यता साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के निबंधनों में अरजिस्ट्रीकृत विल के रूप में साबित की जानी चाहिए । अभि. सा. 4 तथा 5 के साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् पूर्णतः यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने इस संदर्भ में अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि दस्तावेज रजिस्ट्रार द्वारा निष्पादी को पढ़कर सुनाया गया था और जिस पर निष्पादी ने अपनी सहमति व्यक्त की हो और इस कारण से संदिग्ध परिस्थितियां त्रुटिपूर्ण प्रतीत नहीं होती हैं । विल की इस प्रकृति पर विचार करते हुए कि वह रजिस्ट्रीकृत की गई थी, तब भी यह नहीं पाया गया है कि प्रतिपादक ने अपने कर्तव्य का निर्वहन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने में किया है । यह पता लगाने के लिए कि क्या रजिस्ट्रार ने ऐसे आदेश का अनुपालन किया है या नहीं, विल अर्थात् प्रदर्श-1 का परिशीलन किया गया है और आश्चर्य की बात है कि रजिस्ट्रार द्वारा ऐसी कोई भी प्रविष्टि इस दस्तावेज पर नहीं की गई है । इस प्रकार, प्रतिपादक द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का सूक्ष्मता के साथ परिशीलन

करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अभिकथित विल से संबंधित संदिग्ध परिस्थितियों को स्पष्ट करने में पूर्णतया असफल रहा है और इसी के आधार पर आक्षेपित निर्णय किसी भी दशा में मूल्यांकन किए जाने योग्य नहीं है । (पैरा 26, 27, 28, 29, 30 और 31)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1995]	(1995) 4 एस. सी. सी. 459 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1684 : **रविन्द्र नाथ मुखर्जी** बनाम **पंचानन बनर्जी** ;	29
[1962]	ए. आई. आर. 1962 पटियाला 481 : **राम नाथ** बनाम **राम नगीना** ;	20
[1954]	ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 280 : **ईश्वर देव नारायण सिंह** बनाम **कामता देवी** ;	20
[1929]	ए. आई. आर. 1929 पी. सी. 122 : **कृष्णा कुमारी देवी** बनाम **राजेन्द्र बहादुर सिन्हा देव** ;	19
[1929]	ए. आई. आर. 1929 पी. सी. 65 = 56 इंड ऐप 104 : **राम चरण रामानुज दास** बनाम **गोबिंद रामानुज दास** ;	20
[1927]	ए. आई. आर. 1927 कलकत्ता 756 : **उमाचरण बोस** बनाम **रखल दास रे** ;	20
[1925]	ए. आई. आर. 1925 पी. सी. 196 : **विजय रत्नम** बनाम **सुदर्शन राव** ;	20
[1922]	ए. आई. आर. 1922 इलाहाबाद 285 : **पूरन लालजी** बनाम **रास बिहारी लाल** ;	20
[1922]	ए. आई. आर. 1922 पी. सी. 162(2) : **जगन्नाथ** बनाम **कुंजा बिहारी** ;	20
[1915]	20 कलकत्ता ला जर्नल 307 = ए. आई. आर. 1915 कलकत्ता 289 : **जगदीन्द्र** बनाम **मधुसुदन** ;	20

आई. एल. आर. 32 कलकत्ता 1082 :
चेतन्य गोबिंद पुजारी अधिकारी (याची- अपीलार्थी) बनाम **दयाल गोबिंद अधिकारी (आक्षेपकर्ता-प्रत्यर्थी)** ; 20,25

आई. एल. आर. 6 बम्बई 298 :
मंचाराम बनाम **प्राणशंकर** ; 20

आई. एल. आर. 28 इलाहाबाद 689 :
चंद्रनाथ चक्रवर्ती बनाम **जदाबेन्द्र चक्रवर्ती** । 20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की प्रकीर्ण अपील सं. 163.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री बक्शी एस. आर. पी. सिन्हा, ज्येष्ठ अधिवक्ता और सुरेश प्रसाद शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री द्रोणाचार्य, विजय कुमार सिन्हा और अर्गेश कुमार

न्यायमूर्ति आदित्य कुमार त्रिवेदी – अपीलार्थी/आक्षेपकर्ता ने तारीख 21 नवम्बर, 2011 को अपर जिला न्यायाधीश, वगाहा, पश्चिमी चंपारन द्वारा प्रोबेट मामला सं. 24/1995 में पारित किए गए उस निर्णय से व्यथित/असंतुष्ट होकर वर्तमान अपील याचिका फाइल की है जिसके द्वारा और जिसके अधीन उस वसीयत को असली अभिनिर्धारित किया जो मृतक चन्द्र गिरी द्वारा तारीख 24 मई, 1995 को निष्पादित की गई थी और उसी आदेश के अनुसरण में आवेदक/प्रत्यर्थी दुर्गा गिरी के पक्ष में मन्दिर संपत्ति के प्रबंधन के लिए प्रशासन पत्र मंजूर किया था ।

2. आवेदक/प्रत्यर्थी ने ऊपर उल्लिखित संपत्ति के बाबत चन्द्र गिरी पुत्र शिवधरी गिरी, ग्राम मंगलापुर, पश्चिमी चंपारन द्वारा उसके पक्ष में निष्पादित विल के आधार पर अन्य विधिक बाध्यताओं को पूरा करने के पश्चात् तारीख 24 अगस्त, 1995 को प्रोबेट/प्रशासन पत्र मंजूर किए जाने के लिए याचिका फाइल की ।

3. अपीलार्थी/आक्षेपकर्ता न्यायालय में प्रस्तुत हुआ और उसने लिखित कथन फाइल किया जिसमें तुच्छ आक्षेप के अतिरिक्त आवेदक की हैसियत को भी चुनौती दी जिसकी शनाख्त एक चालाक, बेईमान, लालची

मुकदमेबाज के रूप में की गई है जिसने देवी की संपत्ति को हड़पने का प्रयास किया है और उसने इस संपूर्ण घटना को अपने हिसाब से बनाया है और इस प्रकार अपीलार्थी ने इस आवेदन के खारिज किए जाने की प्रार्थना की है । यह भी प्रकथन किया गया है कि मृतक चन्द्र गिरी की मृत्यु उस समय हुई जब वह आक्षेपकर्ता के साथ रहता था । यह भी दलील दी गई है कि फूल कुंवर अर्थात् चन्द्र गिरी की पत्नी ने स्वार्जित संपत्ति का एक बीघा 10 कट्ठा और 5 धुर शंकरजी को तारीख 22 मई, 1980 के रजिस्ट्रीकृत दान-विलेख द्वारा प्रदान की । यह भी दलील दी गई है कि शंकरजी को दान में अन्य संपत्ति भी दी गई थीं । यह भी प्रकट होता है कि स्वयं फूल कुंवर तथा उसके वारिसों ने मन्दिर के रख-रखाव का कार्य संभाल लिया और मूर्तियों को राजभोग, समइया और अन्य सेवाएं उपलब्ध कराने का कार्य भी संभाल लिया जिसका खर्चा फूल कुंवर की संपत्ति से ही वहन किया जाता था और फूल कुंवर की मृत्यु के पश्चात् यह कार्य चन्द्र गिरी (मृतक) द्वारा किया जा रहा था और चन्द्र गिरी की मृत्यु के पश्चात् आक्षेपकर्ता जिसे आम सम्मति से नाम-निर्देशित किया गया है, ने इस संस्था को सार्वजनिक बताया और वही इसकी देखरेख करने लगा । चन्द्र गिरी की मृत्यु के पश्चात् उसकी श्रृद्धा का कार्य आक्षेपकर्ता द्वारा पूरा किया गया । संपत्ति तथा मन्दिर की देखरेख आक्षेपकर्ता द्वारा की जा रही है । बटाईदारी का दावा आक्षेपकर्ता के विरुद्ध बटाईदारी मामला सं. 96/1997 के अन्तर्गत रघुनाथ यादव की ओर से किया गया, जिस पर आक्षेपकर्ता द्वारा देवी-देवताओं का कब्जा रखने वाली संपत्ति से संबंधित सम्यक् रूप से प्रतिवाद किया गया है । उसके द्वारा किराए का संदाय किया जा रहा है ।

4. यह भी दलील दी गई है कि आवेदक एक अन्यजन है जिसने चन्द्र गिरी की मृत्यु के पश्चात् अपने लोगों के साथ सांठ-गांठ करके प्रश्नगत कूटरचित विल तैयार की । वास्तविकता यह है कि चन्द्र गिरी का झुकाव कभी भी आवेदक के पक्ष में विल निष्पादित करने का नहीं था और न ही कभी उसने नामित साक्षियों सहित किसी भी व्यक्ति के समक्ष ऐसी इच्छा प्रकट की । चन्द्र गिरी शिक्षित था, अतः यह प्रत्याशा की जाती है कि यदि प्रश्नगत विल उसकी अंतिम विल है, तब ऐसी स्थिति में, चन्द्र गिरी के बाएं अंगूठे की छाप के बजाय उसके हस्ताक्षर होते । हस्ताक्षर न पाए जाने की स्थिति में यह उपदर्शित होता है कि कूटरचित और गढ़ा हुआ दस्तावेज तैयार किया गया था और इसी प्रकार, चन्द्र गिरी का प्रतिरूपण किया गया

है । यह भी प्रकट किया गया है कि मृत्यु के पूर्व चन्द्र गिरी की शारीरिक और मानसिक दशा उसके वृद्ध होने के कारण दुर्बल चल रही थी ।

5. परस्पर विरोधी अभिवाकों पर विचार करने के पश्चात्, विद्वान् निचले न्यायालय ने निम्न मुद्दे विरचित किए :–

I. क्या प्रोबेट की याचिका चलने योग्य है ?

II. क्या तारीख 24 मई, 1995 को चन्द्र गिरी द्वारा निष्पादित विल असली और सभी संदेहों से परे है ?

III. क्या चन्द्र गिरी, याची दुर्गा गिरी के पक्ष में प्रश्नगत भूमि की विल निष्पादित करने का हकदार था ?

6. उपर्युक्त मुद्दे विरचित करने के पश्चात् विद्वान् निचले न्यायालय ने उपर्युक्त सभी मुद्दे आवेदक/प्रत्यर्थी के पक्ष में विनिश्चित किए । इसलिए यह अपील फाइल की गई ।

7. आक्षेपित निर्णय को चुनौती देते हुए, कई प्रकार के तर्क दिए गए हैं । इस तथ्य के आधार पर कि आवेदक/प्रत्यर्थी ने प्रोबेट मंजूर किए जाने की प्रार्थना की थी जब कि विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रशासन पत्र मंजूर किया था, प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण तर्क आक्षेपित निर्णय के औचित्य से संबंधित है । इन तर्कों के दौरान, विद्वान् निचला न्यायालय इस पर विचार करने में असफल रहा कि जब संपत्ति पहले ही शंकर जी और पार्वती जी के पक्ष में दान कर दी गई थी, तब ऐसी स्थिति में, मंदिर की हैसियत पर निचले न्यायालय द्वारा विचार किया जाता कि संपत्ति प्राइवेट प्रकृति की है या सार्वजनिक । यदि संपत्ति सार्वजनिक प्रकृति की होती तब ऐसी स्थिति में, बिहार धार्मिक बोर्ड न्यास अधिनियम के निबंधनों में कार्यवाही होनी चाहिए थी और उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आधार पर चन्द्र गिरी की सक्षमता विल निष्पादित करने के लिए ठीक मानी जानी चाहिए ।

8. अनुकल्पतः, यदि मंदिर प्राइवेट संपत्ति था, देवी-देवताओं के पक्ष में दान किए जाने पर प्रश्नगत संपत्ति निजी संपत्ति के रूप में विद्यमान नहीं रहेगी और इस आधार पर विल किसी भी दशा में अनुज्ञेय नहीं होगी । इसी प्रकार, यह निवेदन किया गया है कि विल के माध्यम से सीबेटशिप स्थानान्तरित हो जाती न कि संपत्ति । अतः, जब तक कि आवेदक/प्रत्यर्थी की उपर्युक्त हैसियत नहीं हो जाती, तब तक अभिकथित विल के अन्तर्गत वह संपत्ति का प्रबंधन करने का हकदार नहीं होता और न ही उसे विल के

अनुसरण में उस संपत्ति का प्रबंधन न्यस्त किया जाता ।

9. यह भी दलील दी गई है कि विन्यास के अधीन अधिरोपित शर्त को प्रधानता दी गई है जिसका यह कारण है कि दाता की इच्छा और आकांक्षा सुनिश्चित की जानी चाहिए और विन्यास की भावना के प्रतिकूल तत्पश्चात् तैयार की गई वसीयत अनुचित और अवैध है और ऐसा किए जाने पर आक्षेपित निर्णय की हैसियत भी ऐसी ही होगी ।

10. यह भी निवेदन किया गया है कि विल के मात्र रजिस्ट्रीकरण से यह दस्तावेज वैध और सत्यनिष्ठ नहीं हो सकता बल्कि इस प्रकार विहित की गई प्रक्रिया का अनुसरण दस्तावेज की असलियत, प्रमाणिकता और विधिमान्यता सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए जिसे करने में आवेदक/प्रत्यर्थी असफल रहा । अतः, कुल मिलाकर यह अभिवाक् किया गया है कि प्रश्नगत दस्तावेज को विधि के अनुसरण में विधिमान्य नहीं ठहराया गया है । इसके अतिरिक्त, यह निवेदन किया गया है कि प्रश्नगत दस्तावेज संदिग्ध परिस्थितियों से ग्रसित है जिनके आधार पर इसका अवलंब नहीं लिया जाता । इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाना चाहिए ।

11. इसके प्रतिकूल, अपीलार्थी/आक्षेपकर्ता की ओर से दी गई दलील का खंडन करते हुए आवेदक/प्रत्यर्थी की ओर से यह निवेदन किया गया है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने वसीयतकर्ता के आशय पर विचार किया था जिसके पीछे यह कारण दिखाई देता है कि प्रोबेट मंजूर किए जाने के बजाय थोड़ी कठोरता के साथ प्रशासन पत्र मंजूर किया गया है ताकि संपत्ति को किसी भी अतिचार से बचाया जा सके । यह भी निवेदन किया गया है कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा ऐसी शक्ति का प्रयोग किए जाने में कोई भी अड़चन नहीं है जिसका यह कारण है कि प्रोबेट के अन्तर्गत हक तथा कब्जा दिया जाता है जबकि प्रशासन पत्र के अधीन संपत्ति संरक्षित रहती है । स्वीकृततः, देवी-देवताओं से संबंधित संपत्ति सीबेट होने के कारण आवेदक/प्रत्यर्थी का यह कर्तव्य है कि वह न केवल देवी-देवताओं की पवित्र विद्यमानता से संबंधित कर्मकाण्ड का निष्पादन करे अपितु वह राजभोग और समइया का प्रतिपादन करे तथा त्यौहार मनाए और साथ ही साधु-संतों की सेवा भी करे ।

12. यह भी निवेदन किया गया है कि अपीलार्थी/आक्षेपकर्ता प्रश्नगत दस्तावेज को त्यक्त करने के लिए तर्कसम्मत और विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत

नहीं कर सका था कि चन्द्र गिरी की विल अन्तिम विल थी, इसके प्रतिकूल विद्वान् निचले न्यायालय ने पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत किए गए अपने-अपने साक्ष्य पर विस्तार से कार्यवाही की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रश्नगत विल असली विल है । इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में कोई भी हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

13. पक्षकारों को सुनने तथा अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् निम्न प्रश्न सामने आता है :–

(क) क्या प्रश्नगत विल समुचित रूप से विधि की दृष्टि से अभिस्वीकृत किए जाने योग्य है ?

14. उपर्युक्त प्रश्न पर विचार करने से पूर्व, निचले न्यायालय के अभिलेख का सरसरी तौर पर परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आवेदक/प्रत्यर्थी की ओर से कुल मिलाकर पांच साक्षियों की परीक्षा कराई गई है जिनमें से नोहार यादव (अभि. सा. 1), वीरा राय (अभि. सा. 2), हलीवन्त पाण्डेय (अभि. सा. 3), दुर्गा गिरी (अभि. सा. 4) और उदय नारायण प्रसाद (अभि. सा. 5) हैं ।

15. दूसरी ओर, अपीलार्थी/आक्षेपकर्ता ने कुल मिलाकर आठ प्रतिरक्षा साक्षियों की परीक्षा कराई है जिनमें से रमा कान्त गिरी (प्रतिरक्षा साक्षी 1), कृष्णदेव गिरी (प्रतिरक्षा साक्षी 2), मुनी ठाकुर (प्रतिरक्षा साक्षी 3), अब्दुल अजीज (प्रतिरक्षा साक्षी 4), देव नाथ सुकुल (प्रतिरक्षा साक्षी 5), मुखी बैथा (प्रतिरक्षा साक्षी 6), मनोज प्रसाद (प्रतिरक्षा साक्षी 7) और पारस नाथ गिरी (प्रतिरक्षा साक्षी 8) हैं ।

16. आवेदक की ओर से अभिलेख पर केवल एक प्रदर्श प्रस्तुत किया गया है जो कि तारीख 24 मई, 1995 की असली रजिस्ट्रीकृत विल (प्रदर्श-1) है जबकि आक्षेपकर्ता की ओर से पंचनामा (प्रदर्श-ए), रसीद (प्रदर्श-बी), किराए की रसीदें (प्रदर्श-सी-1 से सी-6), रजिस्ट्रीकृत याचिका (प्रदर्श-डी), तारीख 22 मई, 1990 को तैयार किया गया वक्फनामा विलेख (प्रदर्श ई-1), तारीख 12 मई, 1994 को तैयार की गई हुण्डी का दस्तावेज (प्रदर्श-एफ), बटाईदारी मामला सं. 1/96 में दिए गए नोटिस (प्रदर्श-एफ और प्रदर्श-जी) ग्राम शास्त्री नगर की मतदाता सूची की प्रमाणित प्रतिलिपि, चन्द्र गिरी का मृत्यु प्रमाणपत्र और प्रकीर्ण प्रमाणपत्र (प्रदर्श-जे) प्रस्तुत किए गए हैं ।

17. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2(ज) के

अधीन 'विल' इस प्रकार परिभाषित किया गया है :–

> 'विल' से वसीयतकर्ता की अपनी संपत्ति के बारे में उस आशय की विधिक घोषणा अभिप्रेत है जिसे वह अपनी मृत्यु के पश्चात् कार्यान्वित किए जाने की वांछा करता है ।

18. 'विल' की परिभाषा का पठन करने से ही स्पष्ट हो जाता है कि विल के उद्देश्य को पूरा करने के लिए तीन आवश्यक अवयव हैं – (क) वसीयतकर्ता के आशय की विधिक घोषणा होनी चाहिए, (ख) यह घोषणा उसकी अपनी संपत्ति के संबंध में होनी चाहिए और (ग) वसीयतकर्ता की यह वांछा होनी चाहिए कि उक्त घोषणा उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी होनी चाहिए ।

19. **कृष्णा कुमारी देवी** बनाम **राजेन्द्र बहादुर सिन्हा देव**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "माननीय न्यायाधीश (प्रिवी कौंसिल) इस दलील से उतने सहमत नहीं हुए जितना सहमत भारत का कोई भी न्यायालय हो जाता था । वास्तव में, उनके विचार से विल का व्ययन मात्र सुज्ञात नियम को ध्यान में रखते हुए संक्षिप्तः किया जा सकता है, जैसी सहमति हो, यदि कोई संसूचना ऐसी पाई जाती है जो (वसीयतकर्ता के) आशय के प्रतिकूल हो, उसमें उल्लिखित संपत्ति से संबंधित होनी चाहिए ।

20. **राम नाथ** बनाम **राम नगीना**[2] वाले मामले को विल से तात्पर्यित दस्तावेज पर विचार करने के संबंध में न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया । माननीय न्यायाधीश ने निर्णय के पैरा 7 में विस्तार से निम्न प्रकार विचार व्यक्त किया है :–

> "7. इस मुख्य दलील पर विचार करते हुए कि प्रश्नगत दस्तावेज स्पष्ट रूप से 'विल' नहीं है अपितु ऐसा परक्राम्य जिसे केवल उत्तराधिकारी का नियुक्त किया जाना तात्पर्यित है, विल की अन्तर्वस्तु पर विचार करना आवश्यक होगा । इसका सुसंगत भाग निम्न प्रकार है –

---

[1] ए. आई. आर. 1929 पी. सी. 122.

[2] ए. आई. आर. 1962 पटियाला 481.

> 'अतः, मैं निष्पादक स्वस्थचित्त रहते हुए भावपूर्ण अवस्था में सभी बातों पर सद्भावपूर्ण रूप से विचार करते हुए और कुटिया के फायदे के लिए अपने शुभचिंतकों और विधि परामर्शियों की सलाह पर स्वतंत्र रूप से बिना किसी दवाब और प्रपीड़न तथा किसी भी व्यक्ति द्वारा उत्प्रेरणा और आग्रह किए बिना निम्न अनुबंधों के अनुसार इस विल को निष्पादित करता हूं । जब तक मैं निष्पादक जीवित हूं, सभी वस्तुओं और संपत्ति तथा कुटिया का कब्जा यथावत् मेरे पास रहेगा । मेरी मृत्यु के पश्चात् राम नाथ दास मेरे बदले में उर्पयुक्त कुटिया का महंत होगा । वह संपूर्ण संपत्ति और कुटिया की आस्तियों का कब्जा मेरे बदले में प्राप्त करेगा । वह कुटिया के कार्यकलाप की व्यवस्था उसी प्रकार करेगा जिस प्रकार उस समय की जा रही थी और वह संपत्ति तथा कुटिया में सुधार करेगा ताकि श्री रामजी और अन्य देवताओं की पूजा-पाठ, राग, भोग चलता रहे और साधु तथा महात्माओं का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे । निष्पादी के रूप में मेरे जो भी अधिकार हैं, वे राम नाथ दास को स्थानांतरित किए जाएंगे । वह जहां कहीं भी आवश्यक हों मेरे नाम के स्थान पर अपना नाम रजिस्ट्रीकृत कराएगा । मैं निष्पादी, उपर्युक्त राम दास को निष्पादन नियुक्त करता हूं' ।"

वसीयत की भाषा पूर्णतया असंदिग्ध और अस्पष्ट है । विल का प्रभावी भाग जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि इस दस्तावेज द्वारा किसी भी संपत्ति का व्ययन नहीं किया गया है । महंत बनवारी दास ने इस दस्तावेज से जो कुछ अर्थ लिया है उसका संबंध उसके उत्तराधिकारी को उपलब्ध कराना है और इस प्रकार उसने इस दस्तावेज में यह अधिकथित किया है कि उसकी मृत्यु के पश्चात्, राम नाथ दास (आवेदक) उसके बदले में उपरोक्त कुटिया का महंत होगा । यह भी स्पष्ट है और इस पर अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा विवाद भी नहीं किया गया है कि कुटिया की संपत्ति का उल्लेख इस दस्तावेज में नहीं किया गया है । मठ की संपत्ति का व्ययन नहीं किया गया है ।

यह सत्य है कि यह निदेश दिया गया है कि राम नाथ दास इस संपत्ति का कब्जा लेगा और कुटिया की आस्तियों को भी उसके बदले में प्राप्त करेगा तथा कुटिया के कार्यकलाप व्यवस्थित करेगा जिस प्रकार महंत बनवारी दास के समय में किए जा रहे थे । उसने यह भी अधिकथित किया

है कि उसके जो भी अधिकार हैं वे सब वह राम नाथ दास को स्थानांतरित करेगा । यदि ईमानदारी से कहा जाए तब यह सब करना संपत्ति का व्ययन नहीं है । यह केवल एक ऐसा कार्य है जिसका किया जाना कुटिया के महंत द्वारा विधिवत् रूप से अपेक्षित है । महंत के रूप में उसे संपत्ति की व्यवस्था करनी होगी और इसके लिए उसे संपत्ति का कब्जा लेना होगा । संपत्ति का कब्जा और प्रबंधन के संबंध में जो निदेश दिया गया है वह व्ययन नहीं है, अपितु महंत के रूप में की जाने वाली उसकी नियुक्ति का एक आवश्यक परिणाम है । अतः यह स्पष्ट है कि मठ की संपत्ति का कोई व्ययन नहीं किया गया है और इस दस्तावेज के निष्पादन द्वारा महंत बनवारी दास से जो कुछ तात्पर्यित है वह उत्तराधिकारी की नियुक्ति है ।

अतः महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या एक दस्तावेज जिसके द्वारा संपत्ति का व्ययन न करके केवल उत्तराधिकारी की नियुक्ति की जाती है, उसे वसीयत कहा जा सकता है या नहीं । कलकत्ता उच्च न्यायालय की न्यायपीठ के ऐसे दो विनिश्चय हैं जिनमें इस प्रश्न पर विचार किया गया है । **चेतन्य गोबिंद पुजारी अधिकारी (याची-अपीलार्थी)** बनाम **दयाल गोबिंद अधिकारी (आक्षेपकर्ता-प्रत्यर्थी)**[1] वाले मामले में माननीय न्यायाधीश ने निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "विल शब्द को प्रोबेट और प्रशासन अधिनियम में परिभाषित किया गया है । इसका अर्थ यह हुआ कि यह अपनी संपत्ति के संबंध में वसीयतकर्ता के आशय की एक विधिक घोषणा है जो उसके मृत्यु के पश्चात् प्रभावी होती है । प्रश्नगत दस्तावेज के संबंध में घोषणाकर्ता के कथन के आधार पर अभिकथित वसीयतकर्ता की यह संपत्ति नहीं है किन्तु यह संपत्ति ठाकुर लोगों की है । किन्तु स्थिति कुछ भी हो यह स्पष्ट हो गया है कि प्रश्नगत दस्तावेज द्वारा केवल यह तात्पर्यित है कि याची को सीबेट के रूप में या सेवा, पूजा और अन्य रीति रिवाज तथा अखाड़ा से संबंधित आयोजनों को पूरा करने के लिए नियुक्त किया जाए जिसका वह प्रमुख था । अखाड़ा से संबंधित संपत्ति के निपटारे के लिए कोई भी वसीयत नहीं की गई है और वास्तव में वह ऐसा कोई भी व्ययन कर नहीं सकता था । यह केवल एक प्रबंधक की नियुक्ति पूर्व महंत द्वारा किए जाने से संबंधित था, यह स्पष्ट है कि किसी भी संपत्ति का व्ययन नहीं किया गया है । हमारा यह विचार है कि निचले न्यायालय ने यह मत ठीक ही व्यक्त

---
[1] आई. एल. आर. 32 कलकत्ता 1082.

किया है कि इस प्रकार के दस्तावेज के प्रोबेट को प्रोबेट और प्रशासन अधिनियम के अधीन लागू नहीं किया जा सकता ।"

इस विनिश्चय का अनुसरण **जगदीन्द्र** बनाम **मधुसुदन**[1] वाले मामले में अनुसरण किया गया है । इस मामले में यह अभिकथित किया गया है कि महंत द्वारा तैयार किए गए दस्तावेज को, जिससे उत्तराधिकारी की गद्दी पर नियुक्ति तात्पर्यित है और उसे स्थल की सभी संपत्तियों का महंत बनाया जाए और देवसेवा का अधिकार दिया जाए, वसीयत नहीं कहा जा सकता और प्रोबेट की अनुमति नहीं दी जा सकती ।

प्रिवी कौंसिल के ऐसे दो विनिश्चय हैं जिनमें यद्यपि स्पष्ट नहीं कहा गया है, किन्तु इस प्रश्न को सुनिश्चित करने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है । **जगन्नाथ** बनाम **कुंजा बिहारी**[2] वाले मामले में एक हिन्दू व्यक्ति ने अपनी पत्नी के पक्ष में एक अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज निम्न प्रकार निष्पादित किया है जिसे उसने विल कहा है :–

> "मैं आपको यह सहमति देता हूं कि आप सहर्ष पुत्र गोद ले लें और भली प्रकार संपदा के प्रबंधन का संचालन करें ।" इस दस्तावेज का निर्वचन करने पर माननीय न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह दस्तावेज वसीयत नहीं है किन्तु इसके अनुसार गोद लेने की शक्ति दी गई है और इस प्रकार इसे भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1877 की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जाना चाहिए था । माननीय न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया है कि दस्तावेज स्वयं में इससे अधिक कुछ नहीं है कि पत्नी को वर्तमान रूप से गोद लेने का अधिकार दिया गया है और इस दस्तावेज में इसके अतिरिक्त किसी भी सामग्री का उल्लेख नहीं है । यह दस्तावेज वसीयत अभिनिर्धारित किए जाने के लिए अक्षम है क्योंकि इसका संबंध किसी भी संपत्ति से नहीं है ।

विजय रत्नम बनाम **सुदर्शन राव**[3] वाले एक अन्य मामले में न्यायिक समिति के न्यायाधीश ने एक दस्तावेज पर विचार किया जो निष्पादक की संपत्ति का व्ययन किए जाने के तात्पर्य से तैयार किया गया था और साथ ही इस दस्तावेज के द्वारा उसकी विधवा को गोद लेने की शक्ति भी प्रदान

[1] 20 कलकत्ता ला जर्नल 307 = ए. आई. आर. 1915 कलकत्ता 289.
[2] ए. आई. आर. 1922 पी. सी. 162 (2).
[3] ए. आई. आर. 1925 पी. सी. 196.

की गई थी । निष्पादी अपर्याप्तवय था, अतः यह स्पष्ट था कि जिस दस्तावेज को विल बताया गया है वह निष्प्रभावी है । प्रश्न यह उद्भूत होता है कि किसी दस्तावेज का प्रयोग गोद लेने के प्राधिकार के रूप में किया जा सकता है या नहीं । माननीय न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जिस दस्तावेज को विल बताया गया है, वह विल का प्रभाव नहीं रखता है किंतु इसके अधीन गोद लेने के लिए एक विधिमान्य प्राधिकार दिया गया है । यह मामला इस प्रतिपादना के लिए एक प्राधिकार है कि जिस दस्तावेज से यह तात्पर्य न हो कि इसका प्रयोग संपत्ति के निपटारे के लिए किया जाना है, उसका प्रयोग विल के रूप में नहीं किया जा सकता । ऐसा ही मत **उमाचरण बोस** बनाम **रखल दास रे**[1] और **पूरन लालजी** बनाम **रास बिहारी लाल**[2] वाले मामलों में भी व्यक्त किया गया है ।

इसके प्रतिकूल अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने **मंचाराम** बनाम **प्राणशंकर**[3], **चंद्रनाथ चक्रवर्ती** बनाम **जदाबेन्द्र चक्रवर्ती**[4], **राम चरण रामानुज दास** बनाम **गोबिंद रामानुज दास**[5] और **ईश्वर देव नारायण सिंह** बनाम **कामता देवी**[6] वाले मामलों को निर्दिष्ट किया है । इनमें से किसी भी मामले में वह प्रश्न नहीं उठाया गया है जिस पर हम विचार कर रहे हैं और न ही कोई उत्तर दिया गया है । विद्वान् काउंसेल ने **ईश्वर देव नारायण सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों पर दृढ़तापूर्वक बल दिया गया है कि प्रोबेट न्यायालय को मात्र इस प्रश्न पर विचार करना होता है कि उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया दस्तावेज विल है या नहीं और यह कि मृत व्यक्ति द्वारा सम्यक् रूप से निष्पादित वसीयत विधि के अनुसरण में अनुप्रमाणित है या नहीं और यह भी तय करना होता है कि क्या ऐसे निष्पादन के समय पर वसीयतकर्ता स्वस्थचित्त था या नहीं और प्रोबेट न्यायालय को इस प्रश्न से कोई लेना देना नहीं होता है कि कोई भी वसीयत प्रोबेट न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अधीन सही या गलत है ।

विद्वान् काउंसेल द्वारा परिकल्पित विधि के प्रतिपादना के समर्थन में दी

---

[1] ए. आई. आर. 1927 कलकत्ता 756.
[2] ए. आई. आर. 1922 इलाहाबाद 285.
[3] आई. एल. आर. 6 बम्बई 298.
[4] आई. एल. आर. 28 इलाहाबाद 689.
[5] ए. आई. आर. 1929 पी. सी. 65 = 56 इंड ऐप 104.
[6] ए. आई. आर. 1954 एस. सी. 280.

गई इन मताभिव्यक्तियों के अधीन, कि दस्तावेज से उत्तराधिकारी की नियुक्ति तात्पर्यित है, संपत्ति का व्ययन तात्पर्यित नहीं, विल गठित की जा सकती है कि नहीं । जब किसी दस्तावेज को देखने से ही विल गठित होती हो, तब प्रोबेट न्यायालय ने निश्चित रूप से यह तय नहीं करेगा कि क्या संपत्ति का व्ययन ठीक प्रकार किया गया है या गलत । किन्तु प्रोबेट न्यायालय किसी यंत्र के तरह कार्य नहीं कर सकता और किसी भी दस्तावेज के संबंध में प्रोबेट मंजूर नहीं कर सकता चाहे दस्तावेज से विल गठित होती हो या नहीं । प्रोबेट न्यायालय का प्राथमिक कर्तव्य पहले यह देखना होता है कि क्या दस्तावेज से प्रथमदृष्ट्या विल गठित होती है या नहीं । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 2(ज) द्वारा परिभाषित विल के अर्थान्तर्गत वसीयतकर्ता के आशय की विधिक घोषणा है जो उसके संपत्ति के संबंध में की जाती है जिसे वह अपनी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी कराने की इच्छा रखता है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 2(ज) के अन्तर्गत परिभाषित "कौसिंल" शब्द का अर्थ वसीयत से संबंधित तैयार की गई एक लिखत है और इसके निपटारे को स्पष्ट करने, उसमें परिवर्तन करने या अभिवर्धन करने से संबंधित जो कुछ किया जाएगा वह विल का भाग समझा जाएगा । अतः यह स्पष्ट है कि जब तक इस परिभाषा का समाधान न हो जाए, विधि की दृष्टि से उस दस्तावेज को विल नहीं कहा जा सकता ।

किसी दस्तावेज को वसीयत गठित करने के लिए इस शर्त का समाधान किया जाना आवश्यक है कि संपत्ति का व्ययन किया जाना चाहिए । दस्तावेज में वसीयतकर्ता के आशय की घोषणा अन्य किसी वस्तु के संबंध में नहीं अपितु उसके अपनी संपत्ति के संबंध में अवश्य की जानी चाहिए । यदि उसके उत्तराधिकारी के संबंध में उसके आशय की घोषणा की गई है तब इस दस्तावेज से विल गठित नहीं होगी जैसाकि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन परिभाषित किया गया है । अतः जब किसी दस्तावेज को विल कहा जाता है और वह किसी संपत्ति के बारे में न हो तब इसका प्रभाव विल के रूप में नहीं होगा यद्यपि इसके आधार पर कोई दस्तावेज में उपबंधित अन्य किसी प्रयोजन को प्रभावी बनाया जा सकता है । वर्तमान मामले में, इस दस्तावेज में महंत बनवारी दास के आशय की घोषणा किसी भी संपत्ति के संबंध में नहीं की गई है और मृतक वसीयतकर्ता या मंदिर की मूर्तियों की किसी भी संपदा के निपटारे का कोई उल्लेख नहीं किया गया है । अतः, ऊपर कोट किए गए निर्णयज विधि को

दृष्टिगत करते हुए, विशेषकर विल की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए, इस दस्तावेज से स्पष्ट रूप से विल गठित नहीं हो सकती । अतः विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश ने ठीक ही निष्कर्ष निकाला है कि यह दस्तावेज विल नहीं है, अतः इसे प्रोबेट के लिए स्वीकार नहीं किया जा सकता । इस आधार पर, विनिश्चय कायम रखा जाना चाहिए ।

21. वर्तमान संदर्भ में विचार करने पर यह पता चलता है कि आक्षेपित निर्णय का पैरा 7 पर सबसे पहले विचार किया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत आवेदक-प्रत्यर्थी द्वारा स्वीकार किया गया है कि विल प्रदर्श-1 के अधीन निगमित संपत्ति मृतक द्वारा पहले ही उसकी पत्नी के साथ शंकरजी और पार्वती जी को दान की जा चुकी है । प्रदर्श-ई के अनुसरण में संस्वीकृति प्रदर्श-1 की सत्यता की जांच करने के लिए प्रदर्श-ई/1 का परिशीलन किया गया है जिसके आधार पर यह स्पष्ट हो गया है कि सभी संपत्ति जो प्रदर्श-1 के अधीन लाई गई हैं, किसी भी दशा में मृतक चन्द्र गिरी की संपत्ति नहीं है और ऐसा होने पर, सबसे महत्वपूर्ण अवयव जो विल गठित करने के लिए आवश्यक है, त्रूटिपूर्ण है ।

22. यद्यपि, विद्वान् निचले न्यायालय ने एक ओर इस तथ्य को अनदेखा किया है । तथापि, प्रोबेट के बजाय प्रशासन पत्र, की गई प्रार्थना के अनुसार, मंजूर किया है । किंतु, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष का मूल्यांकन करने के दौरान वह पहलू ध्यान में रखा जाना चाहिए और प्रदर्श-1 के सुसंगत भाग को भी ध्यान में रखना आवश्यक है जिसे जान-बूझकर निचले न्यायालय द्वारा, आक्षेपित निर्णय पैरा 7 के अधीन इसका उल्लेख करते समय छोड़ दिया गया था ।

(क्षेत्रीय भाषा में उल्लिखित भाग का लोप किया गया है) ।

23. विल अर्थात् प्रदर्श-1 के उपरोक्त भाग का पठन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निष्पादी ने उन मूर्तियों के सीबेट होने का दावा किया है जिनको दान दक्षिणा दी जाती थी तथा उत्तराधिकारी को अपना चेला बताया है, दूसरी ओर उसने स्वयं को उस भोगी का स्वामी दर्शाया है और इसी प्रकार, उसने अपीलार्थी/प्रत्यर्थी/प्रस्तावक को अधिकार निहित करने का प्रयत्न किया है, ऐसा किए जाने पर विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा, विल अर्थात् प्रदर्श-1 की विधिमान्यता का मूल्यांकन करते समय, इसे ठीक ही अनुमोदित किया गया है ।

24. दूसरे पहलू पर विचार करने पर, जिसके अधीन प्रशासन पत्र

विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया है, यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्वान् निचला न्यायालय वसीयतकर्ता के आशय न होने को विनिश्चित करने में असफल रहा है । साथ ही यह तथ्य भी विनिश्चित नहीं कर सका है कि प्रदर्श-1 अर्थात् विल के पठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीबेटशिप स्थानांतरित नहीं की गई है । उपर्युक्त भाग को अभि. सा. 5 के मौखिक साक्ष्य से बल मिलता है जो कि अनुप्रमाणन का साक्षी है जिसमें यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि स्वर्गीय गिचन्द्र गिरी सीबेटशिप स्थानांतरित करने के लिए आनत था और इसी प्रकार अभि. सा. 4 अर्थात् आवेदक-प्रत्यर्थी के साक्ष्य से भी यही स्पष्ट होता है ।

25. वर्तमान समागम पर **चेतन्य गोबिंद पुजारी अधिकारी (याची-अपीलार्थी)** बनाम **दयाल गोबिंद अधिकारी (आक्षेपकर्ता-प्रत्यर्थी)**[1] वाले मामले को, जिसे वर्ष 1904-05 में कलकत्ता वीकली नामक पत्रिका के जिसके पृष्ठ सं. 1021 पर निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है, निर्दिष्ट करना उचित होगा :–

> "हिन्दू विल अधिनियम और प्रोबेट और प्रबंध अधिनियम में विल का अर्थ वसीयतकर्ता की संपत्ति के संबंध में उसके आशय की विधिक घोषणा है जिसे वह अपनी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी कराने की वांछा करता है । प्रोबेट का अर्थ, जैसाकि परिभाषित है, वसीयतकर्ता की संपदा के प्रबंध की मंजूरी देते हुए सक्षम अधिकारिता के न्यायालय की मुहर द्वारा प्रमाणित वसीयत की एक प्रति है । जिस संपत्ति से अभिकथित विल का संबंध है वह न तो अभिकथित वसीयतकर्ता की संपत्ति है और न ही संपदा जो संपत्ति का सीबेट या प्रबंधक से अधिक कुछ नहीं है । अतः अभिकथित विल की परिधि के अधीन नहीं आती है और इसके संबंध में कोई भी प्रोबेट मंजूर नहीं किया जा सकता । यदि अभिकथित वसीयतकर्ता डोले गोविन्द अधिकारी को सीबेट के कार्यालय में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने की शक्ति थी, तब इस प्रकार किया गया नामनिर्देशन या तैयार किया गया नियुक्ति पत्र विधिमान्य था किंतु इसे विधि की दृष्टि से वसीयत नहीं कहा जा सकता । मैंने इसी बात को ध्यान में रखते हुए, भगवान रामानुज दास **बनाम** राम प्रपारणा रामानुज दास वाले मामले में उस पत्रिका के पृष्ठ 857 पर प्रिवी कौंसिल द्वारा व्यक्त किया गया

[1] आई. एल. आर. 32 कलकत्ता 1082.

मत का अवलंब लिया है । उसमें प्रिवी कौंसिल के माननीय न्यायाधीशों द्वारा यह मत व्यक्त किया गया है कि दस्तावेज वसीयत नहीं है, इसका कोई भी वसीयत संबंधी प्रभाव नहीं है, यह मात्र हैग्रिब (वह वसीयतकर्ता जिसने वर्तमान प्रतिपादित विल जैसी विल निष्पादित की थी) का एक कथन है ।

26. विल के निष्पादन के तरीके से संबंधित तथ्यात्मक पहलू पर विचार करने पर दुर्गा गिरी अर्थात् अभि. सा. 4 के साक्ष्य के पैरा 3 से यह स्पष्ट हो जाता है कि मृतक वसीयतकर्ता वृद्ध आयु होने के कारण हस्ताक्षर करने के योग्य नहीं था, उसके हाथ कांपते थे इसलिए उसने अपने बाएं अंगूठे की छाप लगाई । इस साक्षी ने उदय नारायण अर्थात् अभि. सा. 5 की साक्षी के रूप में हैसियत के संबंध में अभिसाक्ष्य दिया है जिसने उसकी शनाख्त की है और हरी प्रसाद की परीक्षा नहीं कराई गई है । अभि. सा. 5 ने स्वयं यह दावा किया है कि वह दस्तावेज अनुप्रमाणित किए जाने का साक्षी है । जब इस साक्षी के साक्ष्य पर सूक्ष्मता से विचार किया जाता है तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने मृतक वसीयतकर्ता के स्वास्थ्य के संबंध में साक्ष्य नहीं दिया था न ही इस कारण को स्पष्ट किया है कि वसीयतकर्ता द्वारा दस्तावेज पर अंगूठे की छाप क्यों लगाई गई जबकि वसीयतकर्ता शिक्षित था ।

27. इसके अतिरिक्त, उपरोक्त साक्षियों अर्थात् अभि. सा. 4 और अभि. सा. 5 के साक्ष्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वसीयतकर्ता की मानसिक दशा के संबंध में अभिसाक्ष्य देने में असफल रहे कि वसीयतकर्ता स्वस्थचित्त था या नहीं और सोच-विचार करने योग्य था या नहीं, कम से कम ऐसी स्थिति में जब मृतक विल निष्पादित करने जा रहा हो । वसीयत लिखने वाले मधुरेन्द्र प्रसाद वर्मा और एक अन्य साक्षी हरी प्रसाद पुत्र चन्द्रिका प्रसाद की परीक्षा न कराए जाने से उपर्युक्त घटना और अधिक संदिग्ध हो जाती है ।

28. स्वीकृततः, विल प्रदर्श-1 रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज है । किंतु इसके बावजूद इसकी विधिमान्यता साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के निबंधनों में अरजिस्ट्रीकृत विल के रूप में साबित की जानी चाहिए । अभि. सा. 4 तथा अभि. सा. 5 के साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि उसने इस संदर्भ में अभिसाक्ष्य नहीं दिया है कि दस्तावेज रजिस्ट्रार द्वारा निष्पादी को पढ़कर सुनाया गया था और जिस पर निष्पादी ने अपनी

सहमति व्यक्त की हो और इस कारण से संदिग्ध परिस्थितियां त्रुटिपूर्ण प्रतीत नहीं होती हैं ।

29. विल की इस प्रकृति पर विचार करते हुए कि वह रजिस्ट्रीकृत की गई थी, तब भी यह नहीं पाया गया है कि प्रतिपादक ने अपने कर्तव्य का निर्वहन संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने में किया है जैसाकि **रविन्द्र नाथ मुखर्जी** बनाम **पंचानन बनर्जी**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "यदि विल के साक्षी प्रतिपादक के हित में हैं और ये परिस्थिति संदिग्ध प्रतीत होती है, तब इसका महत्व समाप्त हो जाएगा यदि ये दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किया जाता है और उप रजिस्ट्रार यह प्रमाणित करता है कि वह दस्तावेज उस निष्पादी को पढ़कर सुनाया गया था जिसने दस्तावेज की अन्तर्वस्तु को स्वीकार किया था ।"

30. यह पता लगाने के लिए कि क्या रजिस्ट्रार ने ऐसे आदेश का अनुपालन किया है या नहीं, विल अर्थात् प्रदर्श-1 का परिशीलन किया गया है और आश्चर्य की बात है कि रजिस्ट्रार द्वारा ऐसी कोई भी प्रविष्टि इस दस्तावेज पर नहीं की गई है ।

31. इस प्रकार, प्रतिपादक द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का सूक्ष्मता के साथ परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह अभिकथित विल से संबंधित संदिग्ध परिस्थितियों को स्पष्ट करने में पूर्णतया असफल रहा है और इसी के आधार पर आक्षेपित निर्णय किसी भी दशा में मूल्यांकन किए जाने योग्य नहीं है ।

32. उपर्युक्त कमी और खामी के संचयी प्रभाव पर विचार करते हुए विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष स्वीकार्य नहीं है । परिणामस्वरूप, इन्हें अपास्त किया जाता है । अपील मंजूर की जाती है । तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए, पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

अस./क.

---

[1] (1995) 4 एस. सी. सी. 459 = ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1684.

वी. ज्वालामुखी

बनाम

जिला मजिस्ट्रेट और अन्य

तारीख 17 नवम्बर, 2015

न्यायमूर्ति सतीश के. अग्निहोत्री और न्यायमूर्ति डा. पी. देवदास

वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) – धारा 13 और 14 [सपठित संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 65क] – मांग का नोटिस जारी किए जाने के परिणाम – मांग का नोटिस जारी किए जाने के पश्चात् उधार लेने वाले द्वारा प्रतिभूत लेनदार की सहमति के बिना बंधक संपत्ति के बाबत पट्टा विलेख का निष्पादन विधिमान्य नहीं है – न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि याची विधिमान्य पट्टा विलेखों के आधार पर बंधक संपत्ति के कब्जे में प्रविष्ट हुए थे ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 के साथ 11 माह की अवधि के लिए दो अलग-अलग पट्टा करारों में प्रविष्ट हुए थे । प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 ने चतुर्थ प्रत्यर्थी से उक्त संपत्ति के बंधक के आधार पर विग्नेश एलॉज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी केनरा बैंक से लिए गए ऋण के बाबत गारंटी दी थी । तत्पश्चात् उक्त ऋण को गैर निष्पादित आस्ति के रूप में वर्गीकृत कर दिया गया और वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अधीन उधार लेने वाले विग्नेश एलॉज प्राइवेट लिमिटेड और प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 को सम्मिलित करते हुए सभी गारंटीकर्ताओं को मांग का नोटिस जारी कर दिया गया । तत्पश्चात्, संपत्ति का सांकेतिक कब्जा लिए जाने का नोटिस भी उक्त अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन जारी कर दिया गया और अंततः संपत्ति को आर. अशोकन नामक व्यक्ति को बेच दिया गया और उसके पक्ष में विक्रय प्रमाणपत्र भी जारी कर दिया गया । किन्तु याची उक्त संपत्ति के कब्जे में थे अतः उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष, जहां द्वितीय प्रत्यर्थी बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन आवेदन लंबित था, आक्षेप फाइल कर दिए । उनकी दलील थी कि उन्होंने संपत्ति का कब्जा विधिक

रूप से निष्पादित पट्टा विलेखों के आधार पर प्राप्त किया है अतः पट्टा विलेखों में उल्लिखित अवधि के व्यतीत हो जाने के पूर्व उनको संपत्ति से निष्कासित नहीं किया जा सकता । जिला मजिस्ट्रेट ने आवेदन को खारिज कर दिया । जिला मजिस्ट्रेट के आदेश से व्यथित होकर याची ने इस न्यायालय के समक्ष याचिका प्रस्तुत की । याचिका को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – 2015 की रिट याचिका सं. 27802 के संबंध में तारीख 26 जुलाई, 2010 का प्रथम अरजिस्ट्रीकृत पट्टा तारीख 1 अगस्त, 2010 से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था जो तारीख 30 जून, 2011 को समाप्त हो गया । पट्टा उक्त अवधि की समाप्ति पर नवीकरण किए जाने योग्य था । तारीख 1 जनवरी, 2013 का द्वितीय पट्टा भी उक्त तारीख से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था जो तारीख 30 नवम्बर, 2013 को समाप्त हो गया । हम 2015 की रिट याचिका सं. 27803 पर विचार करते हैं, तारीख 7 जून, 2010 का प्रथम अरजिस्ट्रीकृत पट्टा विलेख उक्त तारीख से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था, जो तारीख 6 अप्रैल, 2011 को समाप्त हो गया । पट्टा उक्त अवधि के व्यतीत हो जाने पर नवीकरण के योग्य था । तारीख 17 नवम्बर, 2014 का द्वितीय पट्टा विलेख भी तारीख 1 दिसम्बर, 2014 से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था जो तारीख 31 अक्तूबर, 2015 को समाप्त हो गया । सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन मांग का नोटिस तारीख 8 अक्तूबर, 2012 को जारी किया गया था । याचियों ने तारीख 30 जून, 2011 और तारीख 6 अप्रैल, 2011 के पश्चात् प्रथम पट्टे के संबंध में अलग-अलग कोई नवीकरण प्रस्तुत नहीं किया । द्वितीय पट्टा विलेख धारा 13(2) के अधीन मांग के नोटिस की तामीली के पश्चात् निष्पादित किए गए थे, अर्थात् निर्विवाद रूप से प्रतिभूत लेनदार की सहमति के बिना और इस प्रकार वे विधिमान्य नहीं थे और इस कारणवश उनके विरुद्ध संरक्षण की आवश्यकता उत्पन्न हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि पट्टा विलेख 1908 के रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन आवश्यक रजिस्ट्रीकरण से बचने के लिए 11 माह की अवधि के लिए निष्पादित किए गए थे । ऐसी परिस्थिति में 11 माह की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् धारा 13(2) के अधीन मांग के नोटिस जारी किए जाने के पश्चात् किया गया पट्टा विलेखों का नवीकरण विधिमान्य नहीं था चूंकि याची का यह पक्षकथन नहीं है कि पश्चात्वर्ती नवीकरण प्रतिभूत लेनदार की सहमति से किया गया था जो धारा 14 के उपबंधों की परिधि से संरक्षण के लिए

अनिवार्य है । अतः याची संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 65क के उपबंधों के अधीन विधिमान्य पट्टा विलेखों के आधार पर प्रश्नगत परिसर में प्रविष्ट नहीं हुए हैं । निर्विवाद रूप से याची अविधिमान्य पट्टा विलेखों के आधार पर किराएदारों के रूप में प्रश्नगत परिसर में प्रविष्ट हुए हैं, वे उसके कब्जे में बने रहने या कब्जे के हस्तांतरण के हकदार नहीं हैं । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014] (2014) 6 एस. सी. सी. 1 :
हर्षद गोवर्धन सोंदागार बनाम **इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य** । 6, 12

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2015 की रिट याचिका सं. 27802 और 2015 की एम पी सं. 1 और 2.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री पी. जे. ऋषिकेश, (श्रीमती) ए. श्रीजयंती और विशेष सरकारी प्लीडर

प्रत्यर्थी की ओर से मै. टी. एस. गोपालन एंड कंपनी के लिए श्री वी. कार्तिक

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सतीश के. अग्निहोत्री ने दिया ।

न्या. अग्निहोत्री – चूंकि दोनों रिट याचिकाएं एक ही आदेश से उद्भूत हुई हैं, दोनों पर एक साथ विचार किया गया और इस सामान्य आदेश द्वारा निर्णीत किया गया ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची तारीख 26 जुलाई, 2010 और 7 जून, 2010 को कोयम्बटूर स्थित आर. एस. पुरम के थिरूवेंकेटेशस्वामी रोड (पश्चिम), द्वार सं. 147 स्थित भवन के प्रथम तल पर एक भाग के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 के साथ 11 माह की अवधि के लिए तीस हजार रुपए के प्रतिमाह मासिक किराए पर अलग-अलग दो पट्टा करारों में प्रविष्ट हुए थे । प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 ने चतुर्थ प्रत्यर्थी से संबंधित प्रश्नगत संपत्ति के बंधक के आधार पर विग्नेश एलॉज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी केनरा बैंक से लिए गए ऋण के बाबत गारंटी

दी थी । तत्पश्चात् प्रतिभूत आस्ति को गैर निष्पादित आस्ति के रूप में वर्गीकृत कर दिए जाने पर वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (संक्षेप में "सरफेसी अधिनियम") की धारा 13(2) के अधीन मांग का नोटिस उधार लेने वाले अर्थात् विग्नेश एलॉज प्राइवेट लिमिटेड को तारीख 8 अक्तूबर, 2012 को यह अपेक्षा करते हुए कि उक्त कंपनी 26,20,84,716.87 रुपए की राशि का संदाय करे, जारी किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 को सम्मिलित करते हुए सभी गारंटीकर्ताओं को उपरोक्त रकम का संदाय करने के लिए नोटिस जारी किए गए थे । पूर्वोक्त रकम के संदाय में व्यतिक्रम कारित होने पर तारीख 12 दिसम्बर, 2012 को सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन सांकेतिक कब्जा लिए जाने का नोटिस जारी किया गया था । तत्पश्चात्, प्रश्नगत संपत्ति को आर. अशोकन नामक व्यक्ति को 4,23,00,000/- रुपए की राशि में बेच दिया गया था और इस बाबत एक प्रमाणपत्र भी जारी किया गया था । द्वितीय प्रत्यर्थी बैंक ने प्रश्नगत संपत्ति का कब्जा लेने में विफल रहने पर प्रथम प्रत्यर्थी के समक्ष परिसर पर कब्जे के बाबत सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया ।

3. जैसाकि याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अभिकथित किया गया है, याचियों ने प्रथम प्रत्यर्थी के न्यायालय से, जहां द्वितीय प्रत्यर्थी बैंक द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल किया गया उपरोक्त आवेदन विचाराधीन था, तारीख 19 मई, 2015 का एक नोटिस प्राप्त किया । तत्पश्चात्, याचियों ने तारीख 22 मई, 2015 को आक्षेप उठाते हुए अपने उत्तर फाइल किए । तत्पश्चात्, याची को सुनवाई का कोई नोटिस प्राप्त नहीं हुआ । प्रथम प्रत्यर्थी ने याचियों को सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना द्वितीय प्रत्यर्थी बैंक द्वारा फाइल किए गए आवेदन को मंजूर कर लिया और कोयंबटूर के तहसीलदार को प्रश्नगत संपत्ति का कब्जा लेने और उसको प्रतिभूत लेनदार अर्थात् द्वितीय प्रत्यर्थी बैंक को सौंपे जाने के लिए निदेशित कर दिया ।

4. याचियों की एक मात्र दलील यह है कि उनको आक्षेपित आदेश पारित किए जाने के पूर्व सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया । अतः, आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है और साथ ही प्रथम प्रत्यर्थी को निदेशित किया जाना चाहिए कि वह मामले पर विचार याचियों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् पुनः करे ।

5. प्रथम प्रत्यर्थी ने खंडन शपथपत्र स्पष्ट रूप से यह अभिकथित करते हुए फाइल किया कि उपस्थित सभी याचियों को सम्मिलित करते हुए सभी किराएदारों से यह अपेक्षा करते हुए कि वे प्रथम प्रत्यर्थी के न्यायालय के समक्ष जांच के लिए तारीख 29 मई, 2015 को अपराह्न 4.00 बजे उपस्थित हों, नोटिस तामील किए गए थे । मात्र मदन कुमार नामक एक व्यक्ति को छोड़कर याचियों को सम्मिलित करते हुए अन्य सभी किराएदारों ने जांच के लिए उपस्थित न होने का विकल्प चुना और इसलिए मामला पक्षों द्वारा फाइल किए गए दस्तावेजों के आधार पर अग्रसर हुआ ।

6. प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् विशेष सरकारी प्लीडर के अनुसार याचियों को भवन के कब्जे में अरजिस्ट्रीकृत पट्टा अभिलेखों के आधार पर रखा गया था । उच्चतम न्यायालय द्वारा **हर्षद गोवर्धन सोंदागार** बनाम **इंटरनेशनल एसेट्स रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी गई कि चूंकि पट्टा विलेख सम्यक् रूप से रजिस्ट्रीकृत नहीं है, इस पट्टे को याचियों के अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेजों के आधार पर इस सीमा तक कि उनको 1882 के संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 111 के उपबंधों का आश्रय लिए बिना समाप्त नहीं किया जा सकता, संरक्षण का हकदार मानते हुए विधिमान्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

7. द्वितीय प्रत्यर्थी बैंक के विद्वान् काउंसेल श्री वी. कार्तिक ने भी वही निवेदन किए जो विद्वान् विशेष सरकारी प्लीडर द्वारा किए गए और आगे निवेदन किया कि किराएदारों का कब्जा विधिमान्य और वैध नहीं था चूंकि पट्टा विलेख संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 65क के निबंधनों के अनुसार निष्पादित नहीं किए गए थे । याचियों को सुनवाई का पूर्ण अवसर प्रदान किया गया था । तथापि, याचियों ने प्राधिकारियों के समक्ष उपस्थित होने और कार्यवाहियों में भाग लेने का विकल्प नहीं चुना । अतः याचियों की दलील कि उनको सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया था, निराधार है और अस्वीकृत किए जाने योग्य है ।

8. हमने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिवचनों और उनके साथ संलग्न दस्तावेजों का परिशीलन किया ।

9. यह विवादित नहीं है कि तारीख 26 जुलाई, 2010 और 7 जून, 2010 को अभिकथित रूप से याचियों और प्रत्यर्थी सं. 3 और 4

[1] (2014) 6 एस. सी. सी. 1.

(भवनस्वामी) के मध्य अलग-अलग निष्पादित किए गए पट्टा विलेख अरजिस्ट्रीकृत थे । याचियों का यह पक्षकथन नहीं है कि वे अरजिस्ट्रीकृत पट्टा विलेखों के आधार पर प्रश्नगत परिसर के कब्जे में प्रविष्ट हो गए थे । याचियों का पक्षकथन यह है कि यद्यपि पट्टा विलेख रजिस्ट्रीकृत नहीं थे, फिर भी याचियों ने संपत्ति का कब्जा बंधक के पूर्व ले लिया था और इस प्रकार वे संरक्षण के हकदार हैं और पक्षों के मध्य पट्टा सरफेसी अधिनियम के उपबंधों के अन्तर्गत समाप्त नहीं किया जा सकता ।

10. दलीलों के दौरान प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर जारी की गई नोटिस की एक प्रति याचियों को संबंधित लिफाफे की प्रति के साथ इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई । उक्त लिफाफे पर नोटिस की स्वीकृति से इनकार करने वाला याची का पृष्ठांकन उपलब्ध है ।

11. विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि नोटिस प्राप्त करने से इनकारी को नोटिस की तामीली प्रतीत किया जाता है । याचियों का पक्षकथन भी यह है कि उनके ऊपर नोटिस तारीख 7 मई, 2015 को पहले ही तामील हो चुकी थी और उन्होंने अपने उत्तर तारीख 22 मई, 2015 को प्रस्तुत कर दिए थे । तत्पश्चात् याची इस बाध्यता के अधीन थे कि वे वाद में कार्यवाही करते चूंकि सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन लंबित आवेदन में नोटिस जारी कर दी गई थी । अतः याचियों की दलील कि उनको सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया गया, जो नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण है, अस्वीकृत की जाती है ।

12. उच्चतम न्यायालय ने पट्टा और साथ ही पट्टा विलेख के रजिस्ट्रीकरण की विधिमान्यता के प्रश्न पर **हर्षद गोवर्धन सोंदागार** (उपरोक्त) वाले मामले में इस विवाद्यक का विस्तारपूर्वक परीक्षण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि पट्टेदार अपने पक्ष में रजिस्ट्रीकृत लिखत के निष्पादन का सबूत प्रस्तुत करने पर ही प्रतिभूत आस्तियों के कब्जे का हकदार होता है ।

13. इस प्रक्रम पर पूर्वोक्त निर्णय के सुसंगत पैरा को उद्धृत किया जाना लाभदायक होगा जो इस प्रकार है :-

> "36. अब हम प्रत्यर्थी की इस दलील पर विचार करते हैं कि कुछ अपीलार्थियों ने इस बात को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है कि वे प्रतिभूत आस्तियों के सद्भावी पट्टेदार थे । हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमारे समक्ष उपस्थित

मामले में अपीलार्थियों ने भवन स्वामी द्वारा किराएदार को जारी किए गए लिखित कथनों या किराए की रसीदों का अवलंब लिया है । संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 उपबंधित करती है कि वर्ष दर वर्ष या कोई ऐसी अवधि जो एक वर्ष की हो या जिसके अंतर्गत एक वर्ष का किराया आरक्षित कर लिया गया हो, के आधार पर अचल संपत्ति का पट्टा 'मात्र किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा' किया जा सकता है और अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा या मौखिक करार द्वारा जिसके द्वारा कब्जे का हस्तांतरण भी किया गया हो, किए जा सकते हैं । अतः यदि कोई भी अपीलार्थी यह दावा करता है कि वह प्रतिभूत आस्ति के कब्जे का हकदार किसी ऐसी अवधि के लिए जो उसके पक्ष में पट्टे की तारीख से एक वर्ष से अधिक की हो, तो उसको पट्टाकर्ता द्वारा उसके पक्ष में रजिस्ट्रीकृत लिखत के निष्पादन का सबूत पेश करना होगा । जहां वह अपने पक्ष में किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत के निष्पादन का सबूत प्रस्तुत नहीं करता है और इसके बजाय किसी अरजिस्ट्रीकृत लिखत या मौखिक करार जिसके द्वारा कब्जे का हस्तांतरण कर दिया गया हो, का अवलंब लेता है, तो मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट, जैसा भी मामला हो, को इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि वह भवनस्वामी द्वारा उसके पक्ष में लिखत की तारीख से एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए या उसके पक्ष में कब्जे के हस्तांतरण की तारीख से प्रतिभूत आस्ति के कब्जे का हकदार नहीं है ।"

14. 2015 की रिट याचिका सं. 27802 के संबंध में तारीख 26 जुलाई, 2010 का प्रथम अरजिस्ट्रीकृत पट्टा तारीख 1 अगस्त, 2010 से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था जो तारीख 30 जून, 2011 को समाप्त हो गया । पट्टा उक्त अवधि की समाप्ति पर नवीकरण किए जाने योग्य था । तारीख 1 जनवरी, 2013 का द्वितीय पट्टा भी उक्त तारीख से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था जो तारीख 30 नवम्बर, 2013 को समाप्त हो गया ।

15. अब हम 2015 की रिट याचिका सं. 27803 पर विचार करते हैं, तारीख 7 जून, 2010 का प्रथम अरजिस्ट्रीकृत पट्टा विलेख उक्त तारीख से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था, जो तारीख 6 अप्रैल, 2011 को समाप्त हो गया । पट्टा उक्त अवधि के व्यतीत हो जाने पर नवीकरण के योग्य था । तारीख 17 नवम्बर, 2014 का द्वितीय पट्टा विलेख भी

तारीख 1 दिसम्बर, 2014 से आरंभ होकर 11 माह की अवधि के लिए था जो तारीख 31 अक्तूबर, 2015 को समाप्त हो गया ।

16. जैसाकि ऊपर अभिकथित किया गया है, सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के अधीन मांग का नोटिस तारीख 8 अक्तूबर, 2012 को जारी किया गया था । याचियों ने तारीख 30 जून, 2011 और तारीख 6 अप्रैल, 2011 के पश्चात् प्रथम पट्टे के संबंध में अलग-अलग कोई नवीकरण प्रस्तुत नहीं किया । द्वितीय पट्टा विलेख धारा 13(2) के अधीन मांग के नोटिस की तामीली के पश्चात् निष्पादित किए गए थे, अर्थात् निर्विवाद रूप से प्रतिभूत लेनदार के सहमति के बिना और इस प्रकार वे विधिमान्य नहीं थे और इस कारणवश उनके विरुद्ध संरक्षण की आवश्यकता उत्पन्न हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि पट्टा विलेख 1908 के रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के उपबंधों के अधीन आवश्यक रजिस्ट्रीकरण से बचने के लिए 11 माह की अवधि के लिए निष्पादित किए गए थे । ऐसी परिस्थिति में 11 माह की अवधि व्यतीत हो जाने के पश्चात् धारा 13(2) के अधीन मांग के नोटिस जारी किए जाने के पश्चात् किया गया पट्टा विलेखों का नवीकरण विधिमान्य नहीं था चूंकि याची का यह पक्षकथन नहीं है कि पश्चात्वर्ती नवीकरण प्रतिभूत लेनदार की सहमति से किया गया था जो धारा 14 के उपबंधों की परिधि से संरक्षण के लिए अनिवार्य है । अतः याची संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 65क के उपबंधों के अधीन विधिमान्य पट्टा विलेखों के आधार पर प्रश्नगत परिसर में प्रविष्ट नहीं हुए हैं ।

17. ऊपरवर्णित कारणोंवश, चूंकि निर्विवाद रूप से याची अविधिमान्य पट्टा विलेखों के आधार पर किराएदारों के रूप में प्रश्नगत परिसर में प्रविष्ट हुए हैं, वे उसके कब्जे में बने रहने या कब्जे के हस्तांतरण के हकदार नहीं हैं ।

18. परिणामस्वरूप रिट याचिका गुणागुण से रहित होने के कारण खारिज की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा है । संबद्ध प्रकीर्ण याचिकाएं भी बंद की जाती हैं ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

क्षेत्रीय प्रबंधक, राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लि., जोधपुर

बनाम

देवेन्द्र कुमार पुत्र गहरी लाल सुहालका और अन्य

तारीख 10 दिसम्बर, 2015

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 115 [सपठित माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8] – पुनरीक्षण आवेदन – राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड द्वारा करार अनुरूप शराब की बिक्री न किया जाना – करार/संविदा की शर्तों का उल्लंघन किया जाना – पक्षकारों के बीच विवाद्यकों को मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना – पक्षकारों के बीच संविदा/करार में उल्लिखित मध्यस्थ खण्ड मात्र एक शर्त होना – ऐसी स्थिति में यदि बकाया वसूली आदि से संबंधित विवाद्यक उद्भूत होता है तो पीड़ित पक्षकार मामले को मध्यस्थ को निर्दिष्ट कराने को बाध्य नहीं होगा और वह विधि में विहित तरीके से बकाए की वसूली कर सकता है ।

वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) सं. 5 उदयपुर द्वारा सिविल मूल मामला सं. 107/2008 "देवेन्द्र कुमार सुहालका बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स और अन्य" में तारीख 18 अक्तूबर, 2008 को पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर द्वारा फाइल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया था । आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल अपने आवेदन को तारीख 18 अक्तूबर, 2008 के आदेश के द्वारा खारिज होने से व्यथित होकर वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है । न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर की ओर से उपस्थित हुए श्री मनीष सिसोदिया, विद्वान् काउंसेल ने प्रश्नगत अवधि के लिए देशी शराब की बिक्री के लिए नोटिस आमंत्रित निविदा में निगमित सिवाय खंड (14) के बारे में यह निवेदन किया है कि पक्षकारों के बीच ऐसा कोई पृथक् संविदा या करार नहीं हुआ था जिसके आधार पर देशी शराब के बिक्री पर कमीशन के संदाय के संबंध में विवाद्यक को मध्यस्थ के पास निर्दिष्ट किया जाए और मामला खंड (14) के अंतर्गत आता है, इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन फाइल किए गए प्रतिवादी सं. 1 के आवेदन को खारिज करने में गलती की है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया है कि पूर्वोक्त परिस्थितियों में 7,74,540/- रुपए की वसूली के लिए वादी द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किए जाने योग्य है और मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने यह प्रार्थना की है कि वादी-प्रतिवादी सं. 1 द्वारा फाइल वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है और तारीख 18 अक्तूबर, 2008 का आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है । दूसरी ओर, वादी-देवेन्द्र कुमार सुहालका की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल श्री आर. के. थानवी, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ सुरेश श्रीमाली और श्री नरेन्द्र थानवी ने यह तर्क दिया कि नोटिस आमंत्रित निविदाओं (एन. आई. टी.) में निगमित उक्त खंड (14) पूर्वोक्त एन. आई. टी. के अनुसरण में आवेदनों के स्वीकार और नामंजूर करने के संबंध में केवल एक शर्त है और मामले में ऐसे आवेदनों के स्वीकार और नामंजूर करने संबंधित ऐसे किसी विवाद्यक को ऐसे किसी मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना होता है जो कंपनी का प्रबंध निदेशक है । विद्वान् काउंसेलों ने यह भी निवेदन किया है कि पूर्वोक्त कारणों से, खण्ड (14), प्रतिवादी (गंगानगर शुगर मिल्स) द्वारा शराब ठेकेदारों को दी गई संविदा/अनुज्ञप्ति के प्ररूप का भाग नहीं है । इसलिए, संविदा के अनुपालन और निष्पादन के बाद पक्षकारों के बीच उद्भूत कोई विवाद मध्यस्थ को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है । विद्वान् काउंसेलों ने यह भी निवेदन किया है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 1 के आवेदन को ठीक ही नामंजूर किया है और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन तथा देशी शराब की बिक्री पर कमीशन के लिए प्रतिवादियों से 7,74,450/- रुपए की देय बकाया राशि की वसूली के लिए वादी द्वारा फाइल आवेदन को सही खारिज किया है और इसलिए तारीख

18 अक्तूबर, 2008 के आक्षेपित आदेश में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री जिनमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन फाइल किए गए प्रतिवादी सं. 1-राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर के आवेदन को नामंजूर करने के लिए अपने तारीख 18 अक्तूबर, 2008 के आक्षेपित आदेश में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा समनुदेशित कारणों का परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह समाधान है कि नोटिस आमंत्रित निविदाओं (एन. आई. टी.) में निगमित खंड (14) वादी, शराब ठेकेदार के पक्ष में प्रतिवादी-गंगानगर शुगर मिल्स के पक्ष में निष्पादित अंतिम संविदा/अनुज्ञप्ति के प्ररूप का भाग नहीं है । यह विभिन्न व्यक्तियों के आवेदनों को स्वीकार करने या नामंजूर करने के प्राथमिक प्रक्रम पर विवाद्यकों का विनिश्चय करने के लिए राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड द्वारा जारी एन. आई. टी. में उल्लिखित मात्र एक शर्त है और इसलिए, इसे पक्षकारों के बीच विवाद्यकों, यदि कोई हो, 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने का समतुल्य या विवादित तौर पर नहीं माना जा सकता है । इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी सं. 1 को खंड (14) के बल पर दलील देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि देशी शराब की बिक्री पर कमीशन के संदाय के विवाद्यक से संबंधित मामले को मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और वादी देवेन्द्र कुमार सुहालका, संविदा का अनुपालन करने के पश्चात् प्रतिवादियों से वादपत्र में यथा उल्लिखित 7,74,540/- रुपए की राशि, सिविल वाद फाइल करके दावा करने का हकदार नहीं है जिसमें माध्यस्थम् खंड का होना अपने आप में स्पष्ट है । इसलिए, पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए, आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 द्वारा फाइल वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन में कोई गुणागुण नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है । (पैरा 5, 6, 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 24 : **अफकॉन इंफ्रास्ट्रक्चर्स लि.** बनाम **चेरियन वर्के कंस्ट्रक्शन कं. लि.** । 9

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2008 की एस. बी. सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 316.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 की ओर से	सर्वश्री मनीष सिसोदिया और अभिषेक सिंह
गैर-आवेदक-वादी की ओर से	सर्वश्री आर. के. थानवी, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ सुरेश श्रीमाली और नरेन्द्र थानवी, अधिवक्ता
प्रत्यर्थियों/प्रतिवादी सं. 2 और 3 की ओर से	सर्वश्री डा. सचिन आचार्य और राकेश चोटिया, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) सं. 5 उदयपुर द्वारा सिविल मूल मामला सं. 107/2008 "देवेन्द्र कुमार सुहालका बनाम क्षेत्रीय प्रबंधक, राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स और अन्य" में तारीख 18 अक्तूबर, 2008 को पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध आवेदक-प्रतिवादी सं. 1-राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर द्वारा फाइल किया गया है जिसके द्वारा विद्वान् जिला न्यायाधीश ने आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया गया था ।

2. आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल अपने आवेदन को तारीख 18 अक्तूबर, 2008 के आदेश के द्वारा खारिज होने से व्यथित होकर वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है ।

3. अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) सं. 5 के विद्वान् विचारण न्यायालय उदयपुर प्रतिवादी सं. 1 के आवेदन को इस आधार पर नामंजूर किया है कि नोटिस आमंत्रित निविदा (एन. आई. टी.) के खंड (14) के अनुसार किसी आवेदन की स्वीकृति या मंजूरी से संबंधित कोई विवाद्यक यदि कोई हो, या पूर्वोक्त एन. आई. टी. के अनुसरण में दिए गए निविदा से संबंधित विवाद्यक के मामले में उसी मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाएगा जो राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड का स्वयं भारसाधक हो और प्रबंध निदेशक हो और खंड (14), एन. आई. टी. में उल्लिखित मात्र

एक शर्त है और शराब का विक्रय करने के लिए पक्षकारों के बीच अंतिम करार/संविदा का भाग प्ररूप नहीं है और इसलिए वादी को वर्तमान वाद फाइल करके अपने भाग पर का संविदा के अनुपालन करने के पश्चात् प्रतिवादियों (गंगानगर शुगर मिल्स) से देय बकाया की वसूली करने का अधिकार था और इसे माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 8 को ध्यान में रखते हुए मध्यस्थ को विवाद्यक निर्दिष्ट करना आवश्यक नहीं था ।

4. तारीख 18 अक्तूबर, 2008 के आक्षेपित आदेश में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक) सं. 5, उदयपुर के निष्कर्षों का सुसंगत भाग, वर्तमान संदर्भ के लिए इसमें नीचे उद्धृत है :–

> "उपरोक्त के क्रम में अवलोकन किए जाने पर यह स्पष्ट रहा है कि प्रतिवादी सं. 1 द्वारा दिनांक 16 जून, 2006 की विज्ञप्ति से देशी मदिरा के खुदरा विक्रय हेतु आवेदन मांगे गए थे तथा उक्त विज्ञप्ति की ही चरण संख्या 13 वादी की ओर से प्रस्तुत की गई प्रति में (चरण संख्या 14 प्रतिवादी क्रम 1 की ओर से प्रस्तुत की गई प्रति) में जो अंकन किया गया है, वह पक्षकारों के बीच के अनुबंध का हिस्सा नहीं होकर वस्तुतः आवेदन मांगे जाने से संबंधित विज्ञप्ति के शर्त के रूप में रहा है तथा उक्त भाग में भी स्पष्ट रूप से आवेदन फार्म को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार प्रबंधक वर्ग में रहना व विवाद की दशा में प्रभारी निदेशक राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लि., जयपुर एक मात्र पंच होने व उसका निर्णय दोनों पक्षों को मान्य रहने के रूप में लिखा गया है, जिससे भी यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगत है कि उक्त पंच की व्यवस्था आमंत्रित आवेदन पत्र को स्वीकार अथवा अस्वीकार किए जाने के निर्णय के संबंध में होने वाले विवाद के निपटारे हेतु ही की गई हैं तथा उक्त व्यवस्था आवेदन स्वीकार हो जाने के क्रम में जन्म लेने वाले अनुबंध के क्रम में होने वाले विवाद के निस्तारण हेतु नहीं रही हैं, निश्चय ही उक्त आवेदन आमंत्रित किए जाने की विज्ञप्ति जिसमें कि उक्त सहित सभी शर्तें अंकित हैं, पक्षकारों के बीच का अनुबंध नहीं है तथा वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए वादपत्र के अभिवचन अनुरूप वादी के पक्ष में आवेदन पत्र स्वीकार हो जाने के पश्चात् तथा वादी द्वारा अपने हिस्से की संविदा पूर्ण कर दिए जाने के पश्चात् प्रतिवादीगण द्वारा कर दिए जाने के पश्चात् प्रतिवादीगण द्वारा वादी को देय रहने वाली कमीशन की राशि

बकाया रहने तथा उक्त राशि को वसूल करने की वादी की अधिकारिता के विनिश्चय के संबंध में पक्षकारों के बीच माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 में उल्लिखित अनुरूप कोई मध्यस्थता अनुबंध का अस्तित्व इस अवस्था पर परिलक्षित ही नहीं है, जिसके कारण धारा 5 अथवा धारा 8 माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधान किसी भी स्वरूप में आकृष्ठ नहीं होते हैं तथा इस क्रम में प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से प्रस्तुत किया गया आवेदन पत्र स्वीकार किए जाने योग्य नहीं होकर खारिज किए जाने योग्य रहा है ।

आदेश

उपरोक्त विवेचन व विश्लेषण के आधार पर प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से प्रस्तुत किया गया आवेदन पत्र आदेश 7, नियम 11 सपठित धारा 5 व 8 माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 अस्वीकार कर खारिज किया जाता है ।

हस्ता./-
(आर. के. माहेश्वरी)
अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक)
क्रम सं. 5, उदयपुर"

5. आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर की ओर से उपस्थित हुए श्री मनीष सिसोदिया, विद्वान् काउंसेल ने प्रश्नगत अवधि के लिए देशी शराब की बिक्री के लिए नोटिस आमंत्रित निविदा में निगमित सिवाय खंड (14) के बारे में यह निवेदन किया है कि पक्षकारों के बीच ऐसा कोई पृथक् संविदा या करार नहीं हुआ था जिसके आधार पर देशी शराब के बिक्री पर कमीशन के संदाय के संबंध में विवाद्यक को मध्यस्थ के पास निर्दिष्ट किया जाए और मामला खंड (14) के अंतर्गत आता है, इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन फाइल किए गए प्रतिवादी सं. 1 के आवेदन को खारिज करने में गलती की है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी निवेदन किया है कि पूर्वोक्त परिस्थितियों में 7,74,540/- रुपए की वसूली के लिए वादी द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज किए जाने योग्य है और मामला मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने यह प्रार्थना की है कि वादी-प्रतिवादी सं. 1 द्वारा फाइल वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किए जाने योग्य है और तारीख 18 अक्तूबर, 2008 का आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

6. दूसरी ओर, वादी-देवेन्द्र कुमार सुहालका की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल श्री आर. के. थानवी, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ सुरेश श्रीमाली और श्री नरेन्द्र थानवी ने यह तर्क दिया कि नोटिस आमंत्रित निविदाओं (एन. आई. टी.) में निगमित उक्त खंड (14) पूर्वोक्त एन. आई. टी. के अनुसरण में आवेदनों के स्वीकार और नामंजूर करने के संबंध में केवल एक शर्त है और मामले में ऐसे आवेदनों के स्वीकार और नामंजूर करने से संबंधित ऐसे किसी विवाद्यक को ऐसे किसी मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना होता है जो कंपनी का प्रबंध निदेशक है । विद्वान् काउंसेलों ने यह भी निवेदन किया है कि पूर्वोक्त कारणों से, खण्ड (14), प्रतिवादी (गंगानगर शुगर मिल्स) द्वारा शराब ठेकेदारों को दी गई संविदा/अनुज्ञप्ति के प्ररूप का भाग नहीं है । इसलिए, संविदा के अनुपालन और निष्पादन के बाद पक्षकारों के बीच उद्भूत कोई विवाद मध्यस्थ को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है । विद्वान् काउंसेलों ने यह भी निवेदन किया है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी सं. 1 के आवेदन को ठीक ही नामंजूर किया है और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन तथा देशी शराब की बिक्री पर कमीशन के लिए प्रतिवादियों से 7,74,450/- रुपए की देय बकाया राशि की वसूली के लिए वादी द्वारा फाइल आवेदन को सही खारिज किया है और इसलिए तारीख 18 अक्तूबर, 2008 के आक्षेपित आदेश में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

7. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री जिनमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7 के नियम 11 के अधीन फाइल किए गए प्रतिवादी सं. 1-राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर के आवेदन को नामंजूर करने के लिए अपने तारीख 18 अक्तूबर, 2008 के आक्षेपित आदेश में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा समनुदेशित कारणों का परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह समाधान है कि नोटिस आमंत्रित निविदाओं (एन. आई. टी.) में निगमित खंड (14) वादी, शराब ठेकेदार के पक्ष में प्रतिवादी-गंगानगर शुगर मिल्स के पक्ष में निष्पादित अंतिम संविदा/अनुज्ञप्ति के प्ररूप का भाग नहीं है । यह विभिन्न व्यक्तियों के आवेदनों को स्वीकार करने या नामंजूर करने के प्राथमिक प्रक्रम पर विवाद्यकों का विनिश्चय करने के लिए राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड द्वारा जारी एन. आई. टी. में उल्लिखित मात्र एक शर्त है और इसलिए, इसे पक्षकारों के बीच

विवाद्यकों, यदि कोई हो, 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन मध्यस्थ को निर्दिष्ट करने का समतुल्य या विवादित तौर पर नहीं माना जा सकता है ।

8. इन परिस्थितियों में, प्रतिवादी सं. 1 को खंड (14) के बल पर दलील देने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि देशी शराब की बिक्री पर कमीशन के संदाय के विवाद्यक से संबंधित मामले को मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना चाहिए और वादी देवेन्द्र कुमार सुहालका, संविदा का अनुपालन करने के पश्चात् प्रतिवादियों से वादपत्र में यथा उल्लिखित 7,74,540/- रुपए की राशि, सिविल वाद फाइल करके दावा करने का हकदार नहीं है जिसमें माध्यस्थम् खंड का होना अपने आप में स्पष्ट है । इसलिए, पूर्वोक्त को ध्यान में रखते हुए, आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 द्वारा फाइल वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन में कोई गुणागुण नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है ।

9. तथापि, यह आदेश, **अफकॉन इंफ्रास्ट्रक्चर्स लि.** बनाम **चेरियन वर्क कंस्ट्रक्शन कं. लि.**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित दिशानिर्देशों को ध्यान में रखते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के निबंधनों में निचले न्यायालय या पक्षकारों को ए. डी. आर. के पांच प्रकारों जिसमें माध्यस्थम्, मध्यस्थता इत्यादि में से किसी को भी सहमत करने से नहीं रोकेगा ।

10. तद्नुसार और उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, आवेदक-प्रतिवादी सं. 1 क्षेत्रीय प्रबंधक, राजस्थान राज्य गंगानगर शुगर मिल्स लिमिटेड, जोधपुर की ओर से फाइल वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की एक प्रति निचले न्यायालय और संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

मही./क.

---

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 24.

डिंपल (श्रीमती)

बनाम

सुभाष

तारीख 2 फरवरी, 2016

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 323, 498क, 406 और 109] – हिन्दू पक्षकारों के बीच विवाह – पक्षकारों के बीच विवाद – पक्षकारों का पृथक् रहना – पक्षकारों के संबंध में सुधार्य योग्य न होना – विवाह-विच्छेद की डिक्री फाइल करना – मानसिक क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर विवाह के पक्षकारों के बीच आपसी संबंध सुधार्य योग्य नहीं रह जाते हैं और विवाह का एक पक्षकार दूसरे के विरुद्ध अभित्यजन और मानसिक क्रूरता साबित कर देता है तो इन परिस्थितियों में मंजूर विवाह-विच्छेद की डिक्री युक्तियुक्त और मान्य होगी ।

वर्तमान मामले में, डिंपल और सुभाष, वर्तमान वैवाहिक विवाद के पक्षकार हैं और सरूपगंज व आबू रोड़ के प्रतिष्ठित अग्रवाल कुटुंब से संबंध रखते हैं जिनका विवाह तारीख 13 मई, 2001 को हुआ था । शीघ्र ही वे अलग हो गए और बाद में उन्होंने पृथक् रूप से रहना शुरू कर दिया और उनका विवाह टूट गया, उनको एक पुत्र हर्ष तारीख 22 फरवरी, 2002 को पैदा हुआ था । इस तरह के विवाह विवाद में सामान्य मुकदमेबाजी शुरू हो जाती है और तारीख 5 जून, 2006 को एक प्रथम सूचना सं. 83/2006 भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, 406 और 109 के अधीन पति द्वारा किए गए अधिकथित अपराधों के लिए पुलिस स्टेशन सरूपगंज में पृथक्करण के चार वर्ष बाद दर्ज की गई थी । पति के कुटुंब के सदस्य 3-4 दिन के लिए अभिरक्षा में रहे थे और उनके विरुद्ध आरोप पत्र तारीख 12 दिसम्बर, 2006 को सक्षम न्यायालय में फाइल किया गया था और इस मामले का विचारण न्यायालय में अभी तक लंबित है । पति ने अन्य बातों के साथ क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर तारीख 8 सितम्बर, 2008 को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की याचिका फाइल की थी । जबकि

उसी विवाह-विच्छेद याचिका सं. 1/10(65/2008) में, वर्तमान अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल ने दांपत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापन करने के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन अपना प्रति-दावा फाइल किया । प्रति-दावा खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने, उपर्युक्त वर्णित तथ्यों और परिस्थितियां जिनमें पक्षकारों के अभिकथन सम्मिलित हैं, को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई मानसिक क्रूरता के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य हैं और न्यायोचित निष्कर्ष हैं और वे किसी भी प्रकार से इस न्यायालय द्वारा उलटे जाने योग्य नहीं हैं । जैसाकि उपर्युक्त अभिकथित किया जा चुका है, वैवाहिक विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा कारित मानसिक क्रूरता को गणितीय मापकों में मापा नहीं जा सकता है और उसे निर्धारित नहीं किया जा सकता है, इसलिए, यह कई कारकों जैसे आरोपों की प्रकृति, उससे संबंधित समय, प्रभाव और उसका सार्वजनिक होना इत्यादि पर निर्भर करता है, जो वैवाहिक विवाद के लिए दोनों में से किसी एक पक्षकार की मानसिक शांति को भंग करने का कारण हो सकता है । यह सत्य है कि पति और उसके कुटुंब सदस्यों के विरुद्ध दांडिक मामले फाइल करना अपीलार्थी-डिंपल का एक विधिक अधिकार था किन्तु यह उतना ही सत्य है कि अभियुक्त व्यक्तियों अर्थात् पति के सभी कुटुंब सदस्यों की गिरफ्तारी और न्यायिक अभिरक्षा से समाज में प्रतिष्ठा की बड़ी हानि हुई है और यद्यपि लंबे विचारण के बाद सक्षम न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने से इस बीच में उनकी प्रतिष्ठा की हानि और उत्पीड़न सामान्यतया अपूर्णीय है । इस न्यायालय ने कई निर्णयों में सचेत किया है जिनमें इस न्यायालय के साथ ही उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और धारा 406 के मामले, महिलाओं के हाथों में उत्पीड़न करने के औजार बन गया है और वे अन्ततोगत्वा मानसिक उत्पीड़न, समय, धन और करियर की हानि तथा ऐसे मामलों को दर्ज करके कभी-कभी जीवन की हानि करके विधि की प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग करती हैं । इसीलिए, संसद् को कई निर्णयों को ध्यान में रखते हुए इस विधि में संशोधन करने पर विचार करना चाहिए और इसे शमनीय और जमानती अपराध बनाने पर विचार करना चाहिए । द्वितीयतः इस मामले में, पति द्वारा लिखित तात्पर्यित पत्र प्रदर्श ए/3 से, जो उपर्युक्त प्रस्तुत है, इस न्यायालय की राय में,

प्रत्यर्थी-पति का अपनी भाभी अलका के साथ कोई अवैध संबंध या यौन संबंध दर्शित नहीं होता है किन्तु अपीलार्थी-पत्नी द्वारा उक्त पत्र को कुटुंब के सभी अन्य सदस्यों के समक्ष इसे प्रत्यर्थी-पति द्वारा लिखित प्रेम पत्र के रूप में दर्शित करना और तत्पश्चात् इसे सार्वजनिक करना और संसार के सभी व्यक्तियों को इसकी जानकारी देना निश्चित तौर पर यदि कोई व्यक्ति इस चरित्र का है और इस प्रकृति का कोई अवैध संबंध नहीं बनाता है तो वह न तो इसका पर्याप्त रूप से स्पष्टीकरण दे सकता है और न ही इसकी बदनामी सहन कर सकता है जिससे वह समाज से बहिष्कृत हो गया है । चूंकि ऐसे मामलों में कोई सार्वभौमिक सिद्धांत अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि क्रूरता के कारण और कोटि में कौन से मामले आएंगे और कौन से नहीं, इसलिए हमेशा ही उन तथ्यों के सार संग्रह को विचार में लेना चाहिए और ऐसे साक्ष्यों पर विचार करना चाहिए जिनसे क्रूरता की सम्भाव्यता को प्रबलता मिलती है और न्यायालय को अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करना चाहिए या इनकार कर देना चाहिए । निचले न्यायालय ने विवाह-विच्छेद डिक्री न केवल अभित्यजन के आधार पर मंजूर की है अपितु ऐसे पत्र के कारण अपीलार्थी-पत्नी द्वारा अपने पति को कारित यातना और क्रूरता ध्यान में रखते हुए मंजूर की है जिसे वस्तुतः उसके द्वारा लिखित होना कभी भी साबित नहीं कर सकी है । सबूत का भार स्पष्ट रूप से उस पर होना था किन्तु निश्चित तौर पर इसका प्रभाव पति के लिए मानसिक क्रूरता कारित करता है जिसे उसने विवाह-विच्छेद की ईप्सा के आधार के रूप में साबित कर दिया है । यह अन्य व्यवहारिक समस्याओं के अलावा घरेलू हिंसा अधिनियम और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 406 के अधीन मामले फाइल करके घोर उत्पीड़न और प्रतिष्ठा की हानि पहुंचाई । यह न्यायालय इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकता है कि विवाह अब असुधार्य रूप से टूट चुका है क्योंकि पक्षकार वर्ष 2002 से और पिछले 14 वर्ष से अलग रह रहे हैं, उनका रास्ता एक नहीं रह गया है और प्रशिक्षित मध्यस्थ तथा इस न्यायालय द्वारा भी माध्यस्थम् कार्यवाहियों में सुलह कराने की संभावना समाप्त हो गई है, इसलिए, इस न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच सुलह और वैवाहिक गृह की वापसी किन्हीं भी परिस्थितियों में संभव नहीं है । इसलिए, यह न्यायालय अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल की वर्तमान अपील मंजूर करने की स्थिति में नहीं है किन्तु निचले न्यायालय

के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, विद्वान् जिला न्यायाधीश, सिरोही द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री कायम रखे जाने योग्य है । (पैरा 17, 18, 19 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	2011(3) सी. डी. आर. 1252 (राजस्थान) : **ममता गोयल** बनाम **रामगोपाल** ;	12
[2010]	2010 डी. एन. जे. (एस. सी.) 1134 : **गुरुबक्स सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर** ;	9,13
[2010]	2010 (2) सी. डी. आर. 833 (राजस्थान) (डी. बी.) : **श्रीमती अनीता जैन** बनाम **राजेन्द्र जैन** ;	12
[2007]	2007 (3) सी. डी. आर. 2344 (राजस्थान) (डी. बी.) : **राजेश डोडीवाल** बनाम **श्रीमती संगीता** ;	12
[2007]	2007 (3) सी. डी. आर. 2322 (राजस्थान) (डी. बी.) : **श्रीमती अलका दधीच** बनाम **अजय दधीच** ;	12
[2006]	2006 (1) डब्ल्यू. एल. सी. (एस. सी.) 690 : **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली** ;	12
[2006]	2006 (2) सी. डी. आर. 1249 (राजस्थान)(डी. बी.) : **श्रीमती इंदु मिश्रा और अन्य** बनाम **कोविन्द कुमार गौड़ और अन्य** ;	12
[2003]	(2003) 10 एस. सी. सी. 161 : **परमिन्दर चरण सिंह** बनाम **हरजीत कौर** ;	9,13
[2001]	(2001) 1 सी. सी. सी. 266 (इलाहाबाद) : **श्रीमती आभा अग्रवाल** बनाम **सुनील अग्रवाल** ;	12
[2001]	2001 आर. एल. डब्ल्यू. (4) राजस्थान 145 : **रेन प्रकाश** बनाम **श्रीमती स्नेहलता** ;	9,13
[1998]	ए. आई. आर. 1998 केरल 308 : **सोमासेखरन नायर** बनाम **थानकम्मा** ;	9,13

वैवाहिक विधि पृष्ठ 95 पर उच्चतम न्यायालय में रिपोर्ट :
जे. एल. नंदा बनाम **श्रीमती वीना नंदा** ; 13

[1984] 1984 डी. एम. सी. 168 (दिल्ली उच्च न्यायालय) :
रानी राज कौर बनाम **कुलदीप सिंह** । 9, 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 2173.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी-पत्नी की ओर से श्री एच. एम. सारस्वत

प्रत्यर्थी-पति की ओर से डा. ए. ए. भंसाली

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – ऐसे किसी पुरुष (महिला) के साथ, जिससे आप घृणा करते हैं, रहना दासता के समान है किन्तु उसकी इच्छाओं का आलिंगन करने के लिए मजबूर होना स्वयं गुलामी से भी अत्यधिक बड़ा दुर्भाग्य है ।

2. वैवाहिक दुर्भाव, जिसमें मनोवैज्ञानिक और व्यवहार संबंधी समस्याएं अन्तर्वलित हैं, कानूनी उपबंधों के ढांचे के अन्तर्गत भलीभांति फिट नहीं होते हैं विशेषकर तब जब न्यायालय एक ओर इस प्रकार के मामलों के संबंध में अर्थात् अपीलार्थी-पत्नी द्वारा मानसिक क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर कर रहे हैं ।

3. डिंपल और सुभाष, वर्तमान वैवाहिक विवाद के पक्षकार हैं और सरूपगंज व आबू रोड़ के प्रतिष्ठित अग्रवाल कुटुंब से संबंध रखते हैं जिनका विवाह तारीख 13 मई, 2001 को हुआ था । शीघ्र ही वे अलग हो गए और बाद में उन्होंने पृथक् रूप से रहना शुरू कर दिया और उनका विवाह टूट गया, उनको एक पुत्र हर्ष तारीख 22 फरवरी, 2002 को पैदा हुआ था । इस तरह के विवाह विवाद में सामान्य मुकदमेबाजी शुरू हो जाती है और तारीख 5 जून, 2006 को एक प्रथम सूचना सं. 83/2006 भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 498क, 406 और 109 के अधीन पति द्वारा किए गए अधिकथित अपराधों के लिए पुलिस स्टेशन सरूपगंज में पृथक्करण के चार वर्ष बाद दर्ज की गई थी । पति के कुटुंब के सदस्य 3-4 दिन के लिए अभिरक्षा में

रहे थे और उनके विरुद्ध आरोप पत्र तारीख 12 दिसम्बर, 2006 को सक्षम न्यायालय में फाइल किया गया था और इस मामले का विचारण न्यायालय में अभी तक लंबित है । पति ने अन्य बातों के साथ क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर तारीख 8 सितम्बर, 2008 को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की थी । जबकि उसी विवाह-विच्छेद याचिका सं. 1/10(65/2008) में, वर्तमान अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल ने दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन चाहने के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 अधीन अपना प्रति-दावा फाइल किया ।

4. विद्वान् जिला न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, सिरोही ने पत्नी-डिंपल द्वारा की गई क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद को मंजूरी दे दी जबकि पत्नी द्वारा अभित्यजन के आधार का इनकार करते हुए, दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन उसके द्वारा फाइल किए गए प्रति-दावे को खारिज कर दिया ।

5. प्रत्यर्थी-पति-सुभाष ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की मंजूरी से और दांपत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन चाहने के लिए अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन अपने आवेदन के खारिज होने से व्यथित होकर अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल द्वारा की गई वर्तमान अपील में अभित्यजन सिद्ध करने के लिए कोई प्रति आक्षेप फाइल नहीं किया ।

6. पक्षकारों के बीच चैम्बर्स में इस न्यायालय द्वारा और इस न्यायालय के साथ संबद्ध मध्यकता केन्द्र में प्रशिक्षित मध्यस्थ द्वारा सुलह कराने के लिए प्रयास भी किए गए थे किन्तु पक्षकार अपने वैवाहिक विवाद का समाधान कराने में असमर्थ रहे थे और इसलिए, वर्तमान अपील गुणागुण के आधार पर सुनी गई थी ।

7. पश्चात्वर्ती तथ्य जो पक्षकारों के विवाह और पृथक्करण के पश्चात् मामले में विकसित हुए हैं यह है कि प्रत्यर्थी-पति को अब पिछले 10 वर्षों से अधिक समय से चीन में कार्यरत होना भी बताया गया है और मध्यकता के दौरान वह सुस्पष्टतः विवाह-विच्छेद के लिए अपने आधार पर अडिग है और अपीलार्थी-पत्नी, डिंपल से अलग रहना चाहता है किन्तु उसने अपीलार्थी और पुत्र हर्ष जिसका जन्म विवाह के बाद हुआ था का भरणपोषण करने के लिए युक्तियुक्त निर्वाह व्यय का संदाय करने के लिए अपनी इच्छा व्यक्त की ।

8. विद्वान् जिला न्यायाधीश, सिरोही के तारीख 28 जुलाई, 2011 के निर्णय का विरोध करते हुए, अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल श्री एच. एम. सारस्वत ने प्रबलता से यह निवेदन किया है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति के साथ अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई मानसिक क्रूरता का निष्कर्ष गलत तौर पर निकाला है मात्र इस कारण से कि पत्नी द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क, 406 और 109 के अधीन बाध्यकारी परिस्थितियों में दहेज की मांग करने और शारीरिक दुर्व्यवहार के लिए मामला दर्ज कराई गई थी । विद्वान् काउंसेल श्री एच. एम. सारस्वत ने यह निवेदन किया है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 406 के अधीन मामला सक्षम न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए अभी तक लंबित है और 1,800/- रुपए के मासिक भरणपोषण देने के आदेश घरेलू हिंसा अधिनियम की उपबंधों के अधीन उसके पक्ष में किए गए हैं और इस प्रकार, मात्र दांडिक मामले फाइल करना अपने पति-सुभाष के साथ पत्नी-डिंपल द्वारा मानसिक क्रूरता किया जाना नहीं कहा जा सकता है । दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य, जिसे निचले न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में विवाह-विच्छेद डिक्री के लिए आधार बनाया है वह अपीलार्थी-पत्नी द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत पत्र प्रदर्श ए/3 है, जो तात्पर्यित पति-सुभाष द्वारा अपने बड़े भाई की पत्नी श्रीमती अलका को लिखा गया तात्पर्यित है जो प्रत्यर्थी-पति के समान आयु वर्ग के लोगों के लिए एक प्रेम पत्र के रूप में है । निचले न्यायालय ने पत्नी द्वारा प्रस्तुत ऐसे पत्र को मानसिक क्रूरता के रूप में माना है, जो प्रत्यर्थी-पति द्वारा नहीं लिखा गया था और इसने उसकी भाभी अलका और प्रत्यर्थी-सुभाष के बीच अवैध संबंध का मामला नहीं बनता है किन्तु उक्त दस्तावेज को सार्वजनिक करके, उसने प्रत्यर्थी-सुभाष के साथ मानसिक क्रूरता की थी । अपीलार्थी-पत्नी के कतिपय व्यवहारिक दृष्टिकोणों को भी मानसिक क्रूरता की कोटि में अभिनिर्धारित किए गए थे और इन सभी को अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन प्रत्यर्थी-सुभाष को विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए पर्याप्त पाया गया है ।

9. अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल श्री एच. एम. सारस्वत ने **गुरबक्स सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर**[1], **परमिन्दर चरण सिंह** बनाम **हरजीत**

---

[1] 2010 डी. एन.जे (एस. सी.) 1134.

कौर[1], **रानी राज कौर** बनाम **कुलदीप सिंह**[2], **रेन प्रकाश** बनाम **श्रीमती स्नेहलता**[3] और **सोमासेखरन नायर** बनाम **थानकम्मा**[4] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का भी अवलंब लिया है ।

10. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-सुभाष के विद्वान् काउंसेल डा. ए. ए. भंसाली ने कई निर्णयों को उद्धृत किया है जिन्हें नीचे प्रस्तुत किया गया है और उन्होंने यह जोरदार दलील दी कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा न केवल मिथ्या और तुच्छ मामले दर्ज कराए गए हैं अपितु पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति का अपनी भाभी-अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ तथाकथित अवैध संबंध के झूठे मामले में फंसाने के आशय से घोर मानसिक कष्ट और क्रूरता कारित की गई है, यद्यपि वे संयुक्त परिवार में रह रहे थे और ऐसा कोई पत्र उसके द्वारा नहीं लिखा गया था, जिससे परिवार के भीतर और बाहर प्रत्यर्थी-पति की प्रतिष्ठा को गंभीर क्षति पहुंची थी और जिसके कारण वस्तुतः उसे अपना देश छोड़ना पड़ा और रोजगार के लिए चीन जाना पड़ा था । उसने यह तर्क दिया कि ऐसे मामलों में मानसिक यंत्रणा को सिद्ध नहीं किया जा सकता है और यह कुटुंब के सम्मान और ख्याति पर निर्भर करता है, जहां ऐसी चीजें प्रत्यर्थी-पति और उसके कुटुंब की प्रतिष्ठा को भारी क्षति पहुंचा सकती थी, उसका कुटुंब आबू रोड पर था, जहां उनका संपूर्ण कुटुंब मिथ्या और तुच्छ मामले के कारण कुछ अवधि तक कारागार में रहा अपितु प्रत्यर्थी-सुभाष और उसकी स्वयं की भाभी श्रीमती अलका के बीच अभिकथित अवैध संबंध के कारण कुटुंब की सार्वजनिक बदनामी भी हुई थी, वस्तुतः जिससे श्रीमती अलका और उसके पति सुभाष दोनों के द्वारा इनकार किया गया था ।

11. प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल श्री भंसाली ने यह भी निवेदन किया कि विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति द्वारा सिद्ध किए गए सभी तथ्यों के लिए सही तौर पर यह आधार माना है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा अपीलार्थी-पत्नी की वर्तमान अपील खारिज करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री को कायम रखा गया है ।

12. प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने अपनी कतिपय दलीलों के

---

[1] (2003) 10 एस. सी. सी. 161.
[2] 1984 डी. एम. सी. 168 (दिल्ली उच्च न्यायालय).
[3] 2001 आर. एल. डब्ल्यू. (4) राजस्थान 145.
[4] ए. आई. आर. 1998 केरल 308.

समर्थन में उद्धृत निर्णयों की चर्चा, इसमें नीचे की गई है ।

(i) माननीय उच्चतम न्यायालय के **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली**[1] वाले मामले में अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई अपील में विवाह-विच्छेद की डिक्री को मंजूर करते हुए यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

> "क्रूरता की अभिव्यक्ति को मानव आचरण या मानव व्यवहार के संबंध में प्रयुक्त किया गया है । यह आचरण के संबंध में या वैवाहिक कर्तव्यों और बाध्यताओं के संबंध है । क्रूरता आचरण का एक क्रम है, जो दूसरे को प्रभावित करने का प्रतिकूल रूप है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, आशयपूर्वक या गैर-आशयपूर्वक हो सकती है । यदि यह शारीरिक है तो न्यायालय इसका निर्धारण करने में कोई समस्या नहीं होगी । इसमें प्रश्नगत तथ्य और डिग्री या यातना है । यदि यह मानसिक है तो फलस्वरूप.....समस्या को प्रस्तुत करने में परेशानियां होती हैं, इसमें आचरण की प्रकृति को ध्यान में लेकर आकर्षित किया जाना एक हस्तक्षेप का विषय है और इसमें शिकायत करने वाले पति-पत्नी प्रभावित होते हैं । तथापि, यहां ऐसा मामला हो सकता जहां स्वयं के आचरण की शिकायत बहुत दूषित और अपने आप में विधिविरुद्ध या अवैध है । तत्पश्चात्, एक दूसरे पति-पत्नी की आवश्यकता पर पड़ने वाले प्रभाव या हानिकारक प्रभाव को जांच या विचार में नहीं लिया जाता । ऐसे मामलों में क्रूरता सिद्ध करनी होगी यदि स्वयं आचरण साबित या स्वीकार करता है ।"

उच्चतम न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त है जो इस प्रकार है :–

> "..........सभी झगड़े निर्धारित करने में उस दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए जिससे प्रत्येक विशिष्ट मामले में क्रूरता गठित होती है और जैसाकि ऊपर उल्लिखित किया गया है, सदैव पक्षकारों की शारीरिक और मानसिक स्थितियों, उनके चरित्र और सामाजिक प्रतिष्ठा को ध्यान में रखना चाहिए । तकनीकी और अतिसंवेदनशील दृष्टिकोण भी विवाह के प्रतिस्थापन के लिए प्रति-उपयोगी होगा । न्यायालय आदर्श पतियों और आदर्श पत्नियों के मामले को सुलझाने की जरूरत नहीं करते हैं । उसने अपने समक्ष विशिष्ट आदमी और

[1] 2006 (1) डब्ल्यू. एल. सी. (एस. सी.) 690.

महिला के मामले ही सुलझाए हैं । आदर्श युग्ल या एक मात्र अकेला आदर्श वैवाहिक न्यायालय जाने का अवसर ही शायद कोई होगा ।"

(ii) इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **श्रीमती अनीता जैन** बनाम **राजेन्द्र जैन**[1] वाले मामले में विद्वान् कुटुंब न्यायालय के निर्णय कायम रखते हुए प्रत्यर्थी-पति को विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करते हुए मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

"18. इस मामले में, अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब सदस्यों के विरुद्ध बहुत से मामले ही स्थापित नहीं किए हैं बल्कि उसने अपनी भाभी और भतीजी से अवैध संबंध से संबंधित प्रत्यर्थी के विरुद्ध आरोप भी लगाए हैं जो आरोपों प्रकारों सबसे बुरी बातें हैं और उसने झूठे होने के इन आरोपों को स्वीकार भी किया है । अपीलार्थी का आचरण स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी को क्रूरता पहुंचाने वाला था ।

19. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट हो जाता है कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ न तो कोई क्रूरता की है और न ही बल प्रयोग किया है । यहां भी अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील में कोई सार नहीं है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को माफ कर दिया है चूंकि ऐसा कोई साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है ।

20. संपूर्ण साक्ष्य का विश्लेषण और मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट होता है कि अपीलार्थी ने केवल प्रत्यर्थी का जीवन दुखी नरक जैसा बनाने और यंत्रणा देने का संकल्प लिया है । इस प्रकार का हठी व्यवहार छोड़ने का कोई संदेह तरीका नहीं है कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी पर मानसिक क्रूरता करने पर आमदा है । इस प्रकार इसमें यह स्पष्ट है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध विवाद्यक सं. 1 का विनिश्चय करने में कोई त्रुटि कारित नहीं की है ।"

(iii) इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **राजेश डोडीवाल** बनाम **श्रीमती संगीता**[2] वाले मामले में क्रूरता के आधार पर अपीलार्थी-पति को विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करते हुए यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

---

[1] 2010 (2) सी. डी. आर. 833 (राजस्थान) (डी. बी.).

[2] 2007 (3) सी. डी. आर. 2344 (राजस्थान) (डी. बी.).

"पति और पत्नी दोनों को एक दूसरे से कतिपय समान आदर, कतिपय समान प्यार और प्रेम की अपेक्षा करने के अधिकारी हैं । तथापि, वर्तमान मामले में अपीलार्थी के ऊपर प्रत्यर्थी द्वारा मौखिक अपशब्दों की पुनरावृत्ति, अपमान की पुनरावृत्ति, शारीरिक हमलों की पुनरावृत्ति करना विवाह की नींव हिलाने को बाध्य किया है । कोई भी व्यक्ति सार्वजनिक रूप से अपमानित या क्रूर व्यवहार के अध्यधीन रहना पसंद नहीं करता है । वर्तमान मामले में अपीलार्थी को उसके मित्रों और पड़ोसियों के सामने में अपशब्द, हमला और मौखिक रूप से गाली-गलौज किया है । यहां तक कि अपीलार्थी के माता-पिता को भी मौखिक गाली-गलौज किया है । प्रत्यर्थी ने अपने सास-ससुर को खाना देने और आराम पहुंचाने की अपने गृहणी उत्तरदायित्वों का अनुपालन नहीं किया है । उसने अपने पति के विरुद्ध विश्वासघात और छोटे देवर के विरुद्ध छेड़खानी के आरोप लगाए हैं । लगता है उसने अपीलार्थी और उसके कुटुंब सदस्यों के विरुद्ध दांडिक शिकायतें दर्ज कराई हैं, इसके बाद ही अपीलार्थी ने विवाह-विच्छेद याचिका फाइल की थी । प्रथमदृष्ट्या प्रतीत होता है कि ऐसे कदम किसी गुप्त अभिप्राय से उसके द्वारा लिए गए थे । ये कृत्य मानसिक क्रूरता करने के लिए कतिपय रूप से समान होगें ऐसे कृत्यों से अपीलार्थी को समझना पर्याप्त है कि इससे विवाह जारी रखने के लिए उसके लिए संभव नहीं है ।"

(iv) इस न्यायालय की दूसरी खंड न्यायपीठ ने **श्रीमती इंदु मिश्रा और अन्य** बनाम **कोविन्द कुमार गौड़ और अन्य**[1] वाले मामले में विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध अपीलार्थी-पत्नी की अपील को खारिज करते हुए यह मत व्यक्त किया है जो पैरा 12 और 14 में इस प्रकार है :–

"12. विचारण न्यायालय ने तथ्य के रूप में यह पाया है कि प्रत्यर्थी-पति के अपनी भाभी के साथ अवैध संबंध के आरोप पूरी तरह से झूठे और आधारहीन हैं और अपीलार्थी, प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध इस आरोप को साबित करने में असफल रही है ।

14. इस प्रकार, तत्काल मामले में, असली तथ्य यह है कि पूरी तरह से झूठे और आधारहीन आरोप अपनी भाभी के साथ अवैध संबंध

[1] 2006 (2) सी. डी. आर. 1249 (राजस्थान) (डी. बी.).

होने के बारे में उसकी पत्नी द्वारा प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध लगाए गए हैं जो स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी-पति पर उसकी ओर से क्रूरता के समान है और प्रत्यर्थी-पति इस आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए हकदार है ।"

यह निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों के साथ हाथों और घूटनों के बल चलता है ।

(v) इस न्यायालय की दूसरी खंड न्यायपीठ ने **श्रीमती अलका दधीच** बनाम **अजय दधीच**[1] वाले मामले में विद्वान् कुटुंब न्यायालय, अजमेर द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद डिक्री को पुनः कायम रखते हुए, पैरा 20 में यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

"20. पक्षकारों की सामाजिक प्रतिष्ठा, उनकी शिक्षा, शारीरिक और मानसिक स्थिति, रीति-रिवाजों और परम्पराओं की पृष्ठभूमि में पत्नी के अधिकथित आचरण पर विचार करते हुए, हमने यह पाया है कि इसमें क्रूरता की मात्रा है । हमारा अभिलेख पर रखी गई सामग्री से समाधान हो गया है कि पक्षकारों के बीच रिश्ता पत्नी के आचरण के कारण ऐसी सीमा तक बिगड़ गया था कि यह मानसिक यंत्रणा, यातना या घोर दरिद्रता के बिना एक साथ रहना उनके लिए संभव नहीं होगा । पति और उसके वृद्ध माता-पिता को जेल में घसीटने के बाद, पत्नी से वैवाहिक संबंधों में मेल-मिलाप करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है । मंगल परिणय सूत्र में बंधे हुए पति-पत्नियों से सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक कर्तव्यों का अनुपालन करने की आशा की जाती है किन्तु तत्काल मामले में न तो ऐसे कर्तव्यों का अनुपालन हुआ और न ही पति-पत्नियों के बीच प्यार, प्रेम, देखभाल और संबंध सृजित हुए थे ।"

(vi) विद्वान् जिला न्यायाधीश, धौलपुर द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री पुष्टि करते हुए इस न्यायालय की समन्वयक न्यायपीठ **ममता गोयल** बनाम **रामगोपाल**[2] वाले मामले में के पैरा 23 से 25 में यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

"23. मैंने विवाह के पक्षकारों को बुलाया और मेल-मिलाप के संभावना खोजने के प्रयास किए थे । उन्हें पर्याप्त समय दिया गया था ।

[1] 2007 (3) सी. डी. आर. 2322 (राजस्थान) (डी. बी.).
[2] 2011 (3) सी. डी. आर. 1252 (राजस्थान).

हालांकि, पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के साथ रहने की अपनी इच्छा व्यक्त की थी किन्तु प्रत्यर्थी-पति ने एक क्षण भी साथ रहने के लिए तैयार नहीं हुआ । यद्यपि, अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के साथ रहने की अपनी इच्छा दर्शाई थी किन्तु जिस आचरण से वह न्यायालय में सुनवाई की दो या तीन तारीखों पर स्वयं उपस्थित हुई थी और अपने पति के बारे में सदैव कड़ुवा बोला, इससे यह नहीं कहा जा सकता है कि वह अपनी इच्छा के बारे में गंभीर थी ।

24. अपीलार्थी-पत्नी द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 406 के अधीन अपराधों के लिए पुलिस स्टेशन, बासेडी में एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज किया जाना भी पाया है, जिसमें प्रत्यर्थी-पति और उसकी माता और पिता गिरफ्तार हुए थे और जेल में भी रहे थे । न्यायालय में स्वयं अपीलार्थी-पत्नी ने अपनी हठधर्मी प्रदर्शित की थी और अपने पति के बारे में कठोर रवैया प्रदर्शित किया, जिससे मेरे दिमाग में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं रही है कि अपीलार्थी-पत्नी, प्रत्यर्थी-पति के ऊपर मानसिक क्रूरता से व्यवहार कर रही है । इससे पूर्ण रूप से यह स्पष्ट होता है कि पक्षकारों के बीच विवाह असुधार्य रूप से टूट गया था और इसमें पुनः उनके एक साथ आने या साथ रहने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

25. जब हमने एक महत्वपूर्ण परिस्थिति के साथ ऊपर उल्लिखित तथ्यों को विचार में लिया है कि पक्षकार 13 वर्षों से अधिक समय से पृथक् रूप से रहना स्वीकार किया है, इससे अत्यन्त सम्मोहक निकालता है कि वैवाहिक बंधन अपीलार्थी-पत्नी द्वारा कारित मानसिक क्रूरता के कारण सुधार के परे संबंध भंग हो गया है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित निर्णय उचित और उपयुक्त पाया गया है, जिससे पीड़ितों को कोई अशक्तता नहीं है । मैं विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष से पूर्ण रूप से स्वरमेल हूं और मानना भी यही है, इस वारंट में कोई हस्तक्षेप नहीं करता हूं ।"

यह मामला वर्तमान मामले के तथ्यों के लिए न्यायोचित रूप से भी लागू होता है ।

(vii) इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **श्रीमती आभा अग्रवाल** बनाम **सुनील अग्रवाल**[1] वाले मामले के पैरा 24 में यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

---

[1] 2001 (1) सी. सी. सी. 266 (इलाहाबाद).

"24. उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए न्यायालय के समक्ष दिए गए तर्कों पर विचार करने पर, हमारी राय अभिलेख पर साक्ष्य और संबंधित परिस्थितियों को देखते हुए निचले न्यायालय के निष्कर्ष यह है कि पति को पत्नी द्वारा कारित क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा युगल के विवाह के विघटन के लिए मजबूती देते हैं । वास्तव में बोलते हुए, यह शारीरिक क्रूरता का मामला नहीं है बल्कि एक मानसिक क्रूरता का है । पति द्वारा निर्दिष्ट किए गए अनेक दृष्टांत पति-पत्नी के बीच सामान्य झगड़ों की प्रकृति में नहीं आते हैं । वे बहुत ही गंभीर और दावा, मानसिक क्रूरता गठित करने वाले हैं । मानसिक क्रूरता दुःखद क्षति से भी अधिक है । वर्तमान मामले में, पति को पत्नी द्वारा कारित मानसिक क्रूरता दैनिक जीवन में उसके दुराचार दुर्व्यवहार के उभारे गए पूर्ण तथ्य से प्रत्यक्ष रूप से सुस्पष्ट है । उसका दुराचार और दुर्व्यवहार का कोई अकेला कृत्य नहीं था । बल्कि उसने समय अवधि में बहुत से गंभीर कृत्य गठित किए थे । हम अपनी बुद्धि से स्पष्ट हैं कि उसका दुर्व्यवहार और दुराचार वैवाहिक प्रयोजन की वैधता को समाप्त करके नष्ट करने की प्रवृत्ति है । यह स्वभाव की असंगति मात्र नहीं है । उसने अपने पति के चरित्र के संबंध में बहुत से आरोप ही नहीं लगाए थे बल्कि अपने पति और सास-ससुर द्वारा दहेज की मांग पर दुरुपयोग करते हुए फर्जी बचाव किया है । यह स्पष्ट है कि उसने पति पर ढेर सारी क्रूरता स्वयं करके यह झूठा अभिवाक् लिया है । उसका आचरण पति के लिए उसकी मानसिक शक्ति पर उल्टा प्रभाव डालकर हतोत्साहित करने वाला था । यहां वैवाहिक बंधन सुधार्य नहीं है । युगल के बीच प्यार और प्रेम की नींव पूरी तरह से नीरस हो गई है । यह रिश्ता अनुत्क्रमणीय और असुधार्य की अवस्था पर पहुंच गया है और पत्नी ने झूठे दोष लगाए थे जो बहुत ही अविवेकी और स्वार्थी थे । युगल के बीच विवाह पति को पत्नी द्वारा कारित क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित हो गया है ।"

13. अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्धृत निर्णयों की चर्चा की है जो संक्षिप्त में इस प्रकार है ।

(i) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गुरुबक्स सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर**[1] वाले मामले में पति-गुरुबक्स सिंह द्वारा फाइल अपील में चर्चा की थी

[1] 2010 डी. एन. जे. (एस. सी.) 1134.

और यह अभिनिर्धारित किया था कि विवाह माता-पिता के गाली-गलौज और किसी न्यायोचित कारणों के बिना वैवाहिक घर छोड़ने के आधार पर विघटित नहीं किया जा सकता है । माननीय उच्चतम न्यायालय मामले के पैरा 14 और 15 में यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :—

> "14. अपना बच्चा पीटने उसको खाना नहीं देने के आरोपों के संबंध में, उच्च न्यायालय ने संपूर्ण सामग्री का विश्लेषण करने के बाद उस पर विश्वास नहीं किया । हमारी जानकारी में यह भी आया है कि अपीलार्थी ने क्रूरता के अधिकथित कृत्य की माफी मांगी थी चूंकि वह अपने घर में प्रत्यर्थी को वापस लाना चाहता था । उसी प्रकार, क्रूरता के आरोपों का सच्च होना प्रतीत नहीं होता है । यह भी साबित होता है कि अपीलार्थी की प्रत्यर्थी को अपनी पत्नी के रूप में रखने की रुचि नहीं थी और वह किसी भी तरह से विवाह-विच्छेद चाहता है । चूंकि पूर्ववर्ती मत, व्यक्त किए गए धारा 13 में परिगणना के आधारों के सिवाय, अधिनियम के अधीन हिन्दू विवाह समारोह किस अन्य आधारों पर विघटित नहीं हो सकता है ।
>
> 15. अंततः, कमजोर तर्क यह दिया गया था कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों वर्ष 2002 से पृथक् रूप से रहे थे और उनको एक साथ करना असंभव होगा, चूंकि यह न्यायालय उनके विवाह को संविधान की अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए दोनों पक्षकारों के हित को विघटित कर सकता है । यद्यपि, इस दुर्लभ स्थिति पर, इस न्यायालय ने तथ्य को ध्यान में रखते हुए धारा 13 में उल्लिखित आधारों की अनदेखी करते हुए असाधारण अनुतोष मंजूर किया है कि विवाद्यक को वर्तमान में ऐसी कार्यप्रणाली की अनुज्ञेयता के बारे में बृहत्त न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है, हम अपीलार्थी के अनुरोध को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं । यदि इसमें संसद् के अधिनियम द्वारा धारा 13 में किसी विधि के बदलने और अतिरिक्त आधार सम्मिलित होता तो अपीलार्थी समुचित समय पर उसका उपभोग करने के लिए स्वतंत्र होगा ।"

इस मामले में, अपीलार्थी-पति ने पत्नी द्वारा की गई क्रूरता के आधार को स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं किया है और माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस उपचार प्राप्त करने के लिए अपीलार्थी के लिए खुला रखा था यदि संसद् द्वारा किसी विधि के कोई परिवर्तन या अधिनियम, 1955 की धारा 13 में कोई अतिरिक्त आधार सम्मिलित करती है । इसलिए, यह मामला

तथ्यों पर विभेदनीय है और वर्तमान मामले में वर्तमान अपीलार्थी-पत्नी की कोई सहायता नहीं करता ।

(ii) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जे. एल. नंदा** बनाम **श्रीमती वीना नंदा**[1] वाले मामले में पति की अपील खारिज करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है जो इस प्रकार है :–

> "इस मामले के दुर्भाग्यपूर्ण कथन से कोई संदेह नहीं है किन्तु यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सका कि प्रत्यर्थी ने किस प्रकार से अपीलार्थी के साथ आचरण किया था जिससे क्रूरता के प्रकार को परिभाषित किया जा सके जिससे अपीलार्थी विवाह-विच्छेद की डिक्री का हकदार होता । पक्षकारों के कुछ समय के स्वभाव अनुकूल नहीं हो सके जिस कारण से छोटे झगड़े और परेशानियां हुई हों यद्यपि अपीलार्थी द्वारा यह दलील दी गई है कि वह पत्नी द्वारा उसके साथ किए गए व्यवहार के कारण अनेकों बीमारियों से पीड़ित था किन्तु किसी सामग्री के आधार पर यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सका है कि अपीलार्थी की बीमारी प्रत्यर्थी के आचरण के कारण हुई थी । इस प्रकार, खंड न्यायपीठ ने सही निष्कर्ष नहीं निकाला है कि इसमें निष्कर्ष निकालने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ ऐसी क्रूरता की थी जिससे वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार होता । इस प्रकार, तथ्य और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपील बल रहित है । इसलिए यह खारिज की जाती है ।

इस मामले में भी, पति द्वारा की गई क्रूरता सिद्ध नहीं की जा सकी और माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि इसका निष्कर्ष निकालने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि पति, पत्नी के आचरण के कारण ही बीमारियों से पीड़ित था और ऐसी किसी रीति में अपीलार्थी-पति के साथ पत्नी का व्यवहार क्रूरता कारित करना नहीं हो सका । इस प्रकार, इस मामले से वर्तमान मामले में विवाह-विच्छेद की डिक्री को उलटने के लिए वर्तमान अपीलार्थी-पत्नी को सहायता नहीं मिली है ।

(iii) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **परमिन्दर चरण सिंह** बनाम

[1] वैवाहिक विधि पृष्ठ 95 पर उच्चतम न्यायालय में रिपोर्ट.

हरजीत कौर[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

> "........ दुर्भाग्यवश, न्यायालय किसी विशिष्ट निष्कर्ष निकालने पर नहीं पहुंचा कि इसमें प्रत्यर्थी की ओर से क्रूरता की गई थी । इस निष्कर्ष के अभाव के बावजूद, विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी को विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर की थी और उसे विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपास्त करके सही ही किया है ।
>
> विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले पर विस्तृत रूप से विचार किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि इसमें प्रत्यर्थी......की ओर से कोई क्रूरता नहीं की गई है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह पाया है कि याचिकाओं में लगाए गए अनेकों आरोपों को संतोषजनक रूप से साबित नहीं किया है और अपीलार्थी का आचरण कतिपय रूप से निष्कपट नहीं था ।"

यह मामला तथ्यों के आधार पर भी विशेषणीय है चूंकि वर्तमान मामले में विचारण न्यायालय साक्ष्य के आधार पर, कोटिबद्ध रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति पर क्रूरता की थी और कि वर्तमान मामले में अपीलार्थी-पति का आचरण ऐसा नहीं था जिससे कि उसे क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री से नकारा जाए ।

(iv) दिल्ली उच्च न्यायालय ने **रानी राज कौर** बनाम **कुलदीप सिंह**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

> "50. क्या 'मानसिक क्रूरता' वाले मामलों में बोल-चाल की भाषा कहा जाता है जिसमें स्वास्थ्य तत्व के लिए खतरे की क्रूरता के आरोप में मौजूदगी होनी चाहिए । कोई पति या पत्नी के लिए कैसे दयालुता और आत्मसंयम के सामान्य मानकों से अतीत हो जाते हैं उसके वैवाहिक जीवन का आधार है और उसके लिए कैसा बड़ा संचयी प्रभाव होता है पति या पत्नी पर विचलन इसके समक्ष क्रूरता गठित करना डिग्री का प्रश्न, स्वभाव पर वृहत्त रूप से निर्भरता, परिस्थितियां, प्रत्येक पक्षकार का स्वास्थ्य सदैव होता । हमने इसमें क्या निष्कर्ष निकाला है ? एक मोटी बुद्धि वाला पति था । सामान्य दयालुता और विचार का अभाव पूरा था । पत्नी के लिए कोई सामान्य

---

[1] (2003) 10 एस. सी. सी. 161.

[2] (1984) डी. एम. सी. 168 (दिल्ली उच्च न्यायालय).

> शिष्टाचार नहीं । पत्नी की ओर से इसमें अपनी स्वयं की माता के साथ पति के अवैध संबंध के आरोप प्रस्तुत करने का नृशंस किया था । इसमें दोनों पक्षों की तरफ से गलती की गई थी । वे दोनों दुष्कर व्यक्ति थे । दोनों ने एक दूसरे के विरुद्ध शिकायतें की हैं । किन्तु यह साबित नहीं हुआ कि पत्नी क्रूर थी । यदि न्यायालय स्वास्थ्य के खतरे मौजूदगी के बिना घोर क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद देने की मंजूरी देते हैं तो वैवाहिक संस्था पर प्रतिबंध लगाना होगा ।"

इस मामले में भी प्रस्तुत वर्तमान मामले के तथ्यों पर कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया है, इस प्रकार, इसमें अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल को कोई सहायता नहीं मिली है ।

(v) इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **रेन प्रकाश** बनाम **श्रीमती स्नेहलता**[1] वाले मामले में पति की अपील को फाइल करते हुए यह मत व्यक्त किया है जो इस प्रकार है :–

> "कोई ऐसी महत्वपूर्ण और प्रभावशाली घटनाएं नहीं हैं जिससे क्रूरता की मात्रा को मापा जा सके । प्रत्येक छोटा कृत्य केवल नगण्यता के आधार पर नहीं किया जा सकता है जिस पर न्यायालय क्रूरता के आधार पर धारा 13(1)(आई-ए) के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर सकता है । इसके उलटे, स्वयं याची का आचरण से अपनी पत्नी के साथ उसकी क्रूरता सिद्ध होती है ।"

(vi) अंततः, अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने केरल उच्च न्यायालय के **सोमासेखरन नायर** बनाम **थानकम्मा**[2] वाले मामले के निर्णय का अवलंब लिया है जिसमें केरल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अपीलार्थी-पति की अपील उस आधार पर खारिज की थी कि वह हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 में दिए गए आधारों को सिद्ध नहीं कर पाया है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है जो पैरा 9 में इस प्रकार है :–

> "9. तत्काल मामले में कुछ आधार आरोप प्रतीत होता है । प्रत्यर्थी द्वारा लिखे जाने के लिए अधिकथित पत्रों में से कुछ इस मामले में प्रस्तुत किए गए हैं । ऐसे कई पत्रों में अपीलार्थी के विरुद्ध

---

[1] आर. एल. डब्ल्यू. 2001 (4) (राजस्थान) 145.

[2] ए. आई. आर. 1988 केरल 308.

आरोप देखने में आएं हैं । प्रत्यर्थी के पिता द्वारा लिखा गया तात्पर्यित एक पत्र को भी देखने के लिए प्रस्तुत किया है । जिसमें इस तरह के आरोप भी अपीलार्थी के विरुद्ध किए गए हैं इस पत्राचार से यह प्रतीत होता है कि ये आरोप काफी लंबे समय से लगाए गए हैं । पक्षकारों के बीच संबंध पर विचार करते हुए, हमें नहीं लगता है कि इन आरोपों को अपीलार्थी की क्रूरता बांटने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । अपीलार्थी ने यह भी अभिकथित किया है कि प्रत्यर्थी ने उसे शारीरिक क्षति भी पहुंचाई थी । उसके लिए भी, इसमें संपूर्ण रूप से कोई स्वीकार्य साक्ष्य नहीं है ।"

14. इस न्यायालय में प्रस्तुत मामले से उद्धृत निर्णयों की किसी भी समरूपता से निष्कर्ष नहीं निकलता है ।

15. यह तारीख 28 जुलाई, 2011 के आक्षेपित निर्णय में मानसिक क्रूरता के बिन्दु पर निचले न्यायालय के सुसंगत निर्णयों को पुरःस्थापित करने के लिए समुचित हो जाएगा ।

"**विवाद्यक संख्या एक :–**

> 10. इस विवाद्यक बिन्दु को सिद्ध करने का भार प्रार्थी पर है और प्रार्थी ने अपनी याचिका में प्रकट आधारों को ही अपने मुख्य परीक्षारूपी शपथपत्र ए.ड.1 सुभाष में कथित करते हुए उसकी अक्षरशः पुष्टि की है और समर्थन स्वरूप अप्रार्थीया द्वारा उसके विरुद्ध दहेज की मांग का झूठा मुकदमा दर्ज करवाया, जिसकी अंतिम परिणाम की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श-1 प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श-2, परिवादिया द्वारा प्रस्तुत परिवाद की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श-3, धारा 161 द.प्र.सं. के बयान की प्रति प्रदर्श-4, उसके, उसके पिता, उसकी माता, उसकी भाभी की गिरफ्तारी की फर्दे प्रदर्श पी-5 से प्रदर्श पी-8 फर्द बरामदगी प्रदर्श-9 व प्रदर्श पी-10, पुलिस अधीक्षक सिरोही को झूठा लिखा प्रार्थनापत्र प्रदर्श-11, अप्रार्थीया द्वारा प्रस्तुत घरेलू हिंसा का प्रार्थनापत्र प्रदर्श-12 एवं धारा 12 घरेलू हिंसा का प्रार्थनापत्र प्रदर्श-13, धारा 125 द.प्र.सं. में अन्तरिम आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श-14, उसके पासपोर्ट की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श-15, अप्रार्थीया द्वारा प्रस्तुत पुलिस अधीक्षक सिरोही को दिनांक 9 मार्च, 2010 को दिया

प्रार्थनापत्र प्रदर्श-16 एवं अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक सिरोही के पत्र प्रदर्श-17 को प्रदर्शित करवाया गया है । जिरह में उसने यह स्वीकार किया है कि उसने अप्रार्थीया को लाने की कोई कार्यवाही नहीं की, सीधे ही यह तलाक की कार्यवाही की है तथा प्रदर्श-14 आदेश होने के पहले ही उसने विवाह-विच्छेद की कार्यवाही कर दी थी । उल्लेखनीय है कि प्रदर्श-14 धारा 125 द.प्र.सं. अंतरिम भरणपोषण भत्ता संबंधी आदेश है । उसने यह स्वीकार किया है कि धारा 498ए, 406 भारतीय दंड संहिता का मुकदमा पिण्डवाडा कोर्ट में चल रहा है परन्तु वह मुकदमा झूठा है । घरेलू हिंसा का मुकदमा प्रदर्श-12 भी न्यायालय में चल रहा है । इस बात को स्वीकार किया कि उसे पुत्र हर्ष का जन्म सरूपगंज में हुआ था । स्वतः कहा कि अप्रार्थीया बार-बार भागकर अपने पीहर चली जाती थी इस कारण हर्ष का जन्म सरूपगंज में हुआ । उनके परिवार में यह रिवाज है कि पुत्र का जन्म उनके घर पर ही होना चाहिए एवं उनके समाज में आणा की कोई प्रथा नहीं होती है । उसने अप्रार्थी या उसके पुत्र के भरणपोषण की कोई व्यवस्था नहीं की तथा उसने अपने पुत्र के जन्मदिन पर कोई गिफ्ट नहीं भेजा । प्रदर्श-2 पर्ची उसने तैयार कराई थी या नहीं, यह उसे पता नहीं । स्वतः कहा कि प्रदर्श ए-2 पर्ची थी या दूसरी थी यह पता नहीं, उसकी पत्नी गर्भवती थी इसलिए उसका टेस्ट करवाने हेतु वह लेकर गया था । इस बात को गलत बताया कि दिनांक 21 जून, 2002 को उसकी पत्नी गर्भवती नहीं हो फिर कहा कि दिनांक 21 जून, 2001 की बात समझ रहा हूं, दिनांक 21 जून, 2002 को तो वह अप्रार्थीया को जनरल चैकअप करवाने के लिए लेकर गया था । प्रदर्श ए-3 पत्र की लिखावट उसके हाथ की नहीं है, उक्त पत्र उसने नहीं लिखा है और यह पत्र उनके परिवार के किसी भी सदस्य के हाथ का लिखा हुआ नहीं है । इस बात को गलत बताया कि प्रदर्श ए-3 पत्र उसकी भाभी अलका ने डिंपल को दिया हो । इस बात को गलत बताया है कि उसके व उसकी भाभी के मध्य कोई अवैध संबंध हो । जब डिंपल ने उसके व उसकी भाभी को लेकर झूठे आरोप लगाए, उन झूठे आरोपों की जानकारी उसे मुकदमा करने पर हुई एवं उसके पहले भी मुख-जुबानी आरोप लगाने से हुई थी । इस बात को स्वीकार किया

कि धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही विपक्षीया द्वारा किए जाने पर उसका जवाब दिए जाने के करीब सात माह बाद उसने यह तलाक की याचिका पेश की है । यह उसे पता नहीं है कि डिंपल के पिताजी व दो भाई एक दुकान पर बैठकर साथ में व्यवसाय करते हों । डिंपल ने उसे शादी होते ही दस-पन्द्रह दिन बाद यह कहना शुरू किया कि सरूपगंज चलो और वहां जाकर व्यवसाय करो एवं सरूपगंज में ही रहो किन्तु वह व्यवसाय हेतु सरूपगंज कभी नहीं गया । डिंपल ने पूरे परिवार के साथ ही गालीगलौज व क्रूरता करना शुरू कर दिया था इस कारण परिवार के सभी सदस्य जानते थे । इस बात को गलत बताया कि उसके भाभी के कोई सन्तान नहीं होने के कारण उन्होंने डिंपल पर दबाव डाला हो कि तू भी डिएन्सी अर्थात् गर्भपात करवा ले । इस बात को भी गलत बताया कि डिंपल अपना बच्चा बचाने के लिए पीहर अपने भाई के साथ गई हो । इस बात को गलत बताया कि उसने व उसके परिवारजन ने डिंपल से दहेज की कोई मांग की हो और उसके साथ डिंपल ने कभी कोई क्रूरता नहीं की हो । प्रार्थी के उपरोक्त कथनों की पुष्टि उसके सगे भाई सुरेश ए.ड. 2 एवं उसके पिता वेदप्रकाश ए.ड. 4 तो अपने बयानों में पूर्णतया करते ही हैं, ए.ड. 3 के रूप में उसकी भाभी अलका ने भी यह कथन किया है कि अप्रार्थीया ने विवाह के कुछ समय पश्चात् से ही उनके साथ गालीगलौज व झगड़ा-फंसाद करना शुरू किया एवं अप्रार्थीया ने स्पष्ट रूप से उसे एवं सुभाष को कह दिया कि यदि सुभाष उसके पिता के घर पर नहीं रहता है तो वह घर छोड़कर चली जाएगी तथा पूरे परिवार को दहेज के झूठे मुकदमे एवं अन्य मुकदमों में फंसा देगी । उन्होंने काफी समझाया लेकिन वह नहीं मानी तथा अन्त में दिनांक 22 जून, 2002 को अपने भाई के साथ अपने पीहर सरूपगंज चली गई । उसके सुभाष के साथ अवैध संबंध होने का बिल्कुल झूठा व मनगढ़ंत आरोप लगाया है । अप्रार्थीया ने झूठे पत्र सुभाष के नाम से बनवाकर न्यायालय में पेश किए हैं । सुभाष ने कभी भी कोई पत्र उसे नहीं लिखा और न ही कोई पत्र दिया है । उसने कोई पत्र एवं अप्रार्थीया द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत पत्र अप्रार्थीया को दिया है । अप्रार्थीया ने सुभाष, उस पर एवं उनके परिवार के विरुद्ध दहेज का झूठा

मुकदमा दर्ज करवाकर उनके परिवार के सदस्यों को गिरफ्तार करवा दिया जबकि उनके द्वारा अप्रार्थीया से कभी भी दहेज की मांग नहीं की है । इस प्रकार घरेलू हिंसा आदि की भी रिपोर्ट व मुकदमा झूठा किया गया है । ए.ड. 5 प्रार्थी के चाचा महेन्द्र कुमार भी इस बात की पुष्टि करता है कि विवाह के कुछ समय बाद से ही सुभाष को डिंपल के पीहर सरूपगंज में रहने एवं उसके पिता के साथ व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया एवं डिंपल बिना किसी कारण के सुभाष व उसके घरवालों के साथ गालीगलौज व झगड़ा-फंसाद करती और उसे समझाने पर भी नहीं मानी तथा डिंपल ने स्पष्ट रूप से उन्हें कह दिया कि यदि सुभाष उसके पिता के घर सरूपगंज में नहीं रहता है तो वह घर छोड़कर चली जाएगी एवं पूरे परिवार को दहेज के झूठे मुकदमे में फंसा देगी । डिंपल के दिनांक 22 जून, 2002 को पीहर जाने के कुछ दिन बाद वे लोग समझाने गए थे लेकिन वह नहीं मानी । इस गवाह से जो प्रतिपरीक्षा अप्रार्थीया की ओर से की गई है, उनसे मुख्य बयानों का कोई विशेष खण्डन नहीं होता क्योंकि करीब-करीब उससे जिरह की गई है जो प्रार्थी से की गई है । प्रदर्श-3 के बारे में गवाह ए. डब्ल्यू. 3 अलका ने स्पष्ट रूप से इनकार किया है कि उसे यह पत्र सुभाष ने लिखा हो और उसने यह पत्र प्रदर्श ए-3 अप्रार्थीया को दिया हो । इस बात को गलत बताया है कि उसके व सुभाष के मध्य अवैध संबंध होने से डिंपल व सुभाष के बीच विवाद हुआ हो । इस बात को भी गलत बताया है कि उसके बच्चा नहीं हो सकता है ।

11. इसके खंडन स्वरूप एन.ए.ड.1 डिंपल ने अपने मुख्य परीक्षण में अपने अभिवचनों की पुष्टि करते हुए यह स्पष्ट कथन किया है उसने किसी प्रकार की कोई क्रूरता प्रार्थी पक्ष के साथ नहीं की अपितु उससे 15 लाख रुपए लेकर अपने का कहकर इलाज नहीं कराया गया तो वह मजबूर होकर अपने भाई के साथ पीहर गई एवं उसकी सास ने उसके भाई को कहा कि इलाज कराओ एवं 15 लाख रुपए हो तो ही वापस लाना । उस पर गर्भ गिराने का दवाब डाला गया जिसके लिए वह तैयार नहीं हुई जिस पर प्रार्थी पक्ष द्वारा उसके साथ झगड़ा किया गया एवं

उसके पुत्र का जन्म पीहर में हुआ है । उसके व उसके पुत्र की किसी प्रकार के भरणपोषण की व्यवस्था नहीं की है तब उसने फौजदारी कार्यवाही की है जो पूर्णतया विधिसम्मत है, वह अपना घर बसाना चाहती थी इसलिए उसने पुलिस अधीक्षक को भी पत्र लिखे थे । उसने अपने कथनों के समर्थन स्वरूप उप अधीक्षक आबूपर्वत द्वारा समझाइश के तहत की गई कार्यवाही की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श ए-1, अपने इलाज की पर्ची असल प्रदर्श ए-2, सुभाष द्वारा उसकी भाभी के नाम लिखित पत्र प्रदर्श ए-3, उसके पुत्र बबू के महावीर अस्पताल सुमेरपुर में करवाए इलाज की पर्ची प्रदर्श ए-5 एवं उसके द्वारा पुलिस अधीक्षक पाली को प्रस्तुत पत्र की प्रति प्रदर्श ए-6 प्रस्तुत की है । जिरह में यह स्वीकार किया है उसके ससुराल से आने के बाद उसने प्रार्थी सुभाष पर भरणपोषण का दावा किया था किन्तु उससे पहले उसको नोटिस नहीं दिया, महिला ने केन्द्र सिरोही में कार्यवाही की थी परन्तु कौन-सी तारीख व माह में यह कार्यवाही की थी, उसे याद नहीं है । उसने दिनांक 9 मार्च, 2006 को पुलिस अधीक्षक सिरोही को प्रदर्श-11 एवं उसके बाद दिनांक 24 अप्रैल, 2006 को पुलिस अधीक्षक पाली को प्रदर्श ए-6 रिपोर्ट दी थी परन्तु उनसे पहले कोई नोटिस प्रार्थी को नहीं दिया । उसके बाद उसने पति, सास-ससुर, जेठ-जेठानी एवं ननद-ननदोई आदि पर प्रदर्श ए-3 जुर्म दफा 498ए, 406 भारतीय दंड संहिता का मुकदमा पिण्डवाड़ा कोर्ट में प्रदर्श-3 पेश किया था परन्तु यह उसे पता नहीं कि उसके द्वारा उक्त मुकदमा करने पर उस प्रकरण में उसके पति, जेठ-जेठानी एवं सास-ससुर गिरफ्तार हुए हों । उसने घरेलू हिंसा की कार्यवाही इन लोगों के विरुद्ध पिण्डवाड़ा में कोई प्रदर्श-12 की थी एवं उसके बाद उसके पति ने तलाक की याचिका पेश की है । उसने प्रदर्श-11 एवं प्रदर्श ए-6 में सुभाष व उसके ससुराल वालों द्वारा दहेज में 15 लाख रुपए मांगने की बात नहीं लिखाई थी क्योंकि वह ससुराल जाना चाहती थी । उसके मुख्य परीक्षणरूपी शपथपत्र के पद संख्या चार में सुभाष द्वारा उसकी भाभी को पत्र लिखने की जो बात उसने लिखी है वह पत्र उसे

स्वयं अलका ने दिया था जो पत्र प्रदर्श ए-3 है । इस बात को गलत बताया है कि उसने प्रदर्श-3 पत्र दहेज, घरेलू हिंसा व धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के मुकदमे में पेश नहीं किया हो । अलका ने उसे पत्र प्रदर्श ए-3 किस तारीख, महीना व साल में दिया था, वह उसे याद नहीं है लेकिन शादी के कुछ दिनों बाद उसे अलका ने दिया था, जो पत्र उसने अपने भाई महावीर प्रसाद जो सुमेरपुर में व्यापार के काम में आया था, उसको दिया था । सुभाष के पेन्ट की जेब से पत्र उसने निकाला था वही पत्र प्रदर्श-3 था । स्वतः कहा कि उक्त पत्र उसे भाभी अलका ने दिया था । उसने प्रदर्श-3 देखकर कहा कि इसके पद संख्या नौ में अलका भाभी द्वारा सुभाष का पत्र देने की बात लिखने से रह गई है, अपितु उसने मौका मिलने पर सुभाष की पेन्ट की जेब से पत्र लिखा हुआ निकाला है । प्रदर्श-4 पुलिस बयान का ए से बी भाग एक पत्र घर में मिला यह सुनकर गवाह ने कहा कि यह गलत लिखा है, ऐसा बयान उसने पुलिस को नहीं दिया । याचिका के जवाब एवं प्रदर्श-3 परिवाद में अलका द्वारा पत्र दिया जो उसने सुभाष को दिया एवं वापिस सुभाष की पेन्ट में से निकाला, यह बात लिखी हुई नहीं है । उसने इस बात को स्वीकार किया कि जवाब याचिका व काउण्टर क्लेम में 1,81,000/- रुपए फेरे के वक्त उसके ससुरालवालों द्वारा मांगने की बात नहीं लिखाई है क्योंकि सुभाष ने अपनी याचिका में इसका उल्लेख नहीं किया, इस कारण उसने उक्त बात नहीं लिखाई । बच्चा होने के बाद उसे उसके ससुराल वाले लेने नहीं आए, उसका भाई महावीर प्रसाद जब बच्चा दो माह का हो गया था तब उसे छोड़ने ससुराल आया था । दिनांक 21 जून, 2002 को वह बीमार हुई, उसके कुछ दिन बाद उसका भाई महावीर प्रसाद उसके ससुराल आया जिससे उसकी सास ने यह कहा कि इसका इलाज कराओ और 15 लाख रुपए हो तो लेकर आने को कहा था । इस बात को गलत बताया कि उसके विरुद्ध उसके ससुरालवालों ने गर्भपात कराने का कोई दबाव नहीं डाला हो एवं उसने उनके विरुद्ध झूठे आरोप लगाए हों । उसने अपने पीहरवालों को गर्भपात कराने वाली बात फोन से

नहीं कही, पत्र लिखकर कही परन्तु वह पत्र किस तारीख, महीने में उसने लिखा था यह आज याद नहीं है । उसने प्रदर्श-ए पत्र महावीर प्रसाद को उसके पीहरवालों को देने के लिए दिया था, यह बात याचिका के जवाब व काउण्टरक्लेम में लिखी हुई नहीं है क्योंकि मूल याचिका में जो लिखा था उसी का उसने जवाब दिया था, दूसरी बातें लिखना उसने आवश्यक नहीं समझा इस कारण नहीं लिखाई । इस बात को भी स्वीकार किया कि प्रदर्श-11 व प्रदर्श ए-6 में भी प्रदर्श ए-5 पत्र का हवाला नहीं है । इस बात को गलत बताया कि उसने प्रदर्श-11 व प्रदर्श-6 में गर्भ गिराने का दबाव डालने की बात पत्र से न देकर टेलीफोन से देने की बात लिखी हो । इस बात को गलत बताया कि उसने प्रदर्श ए-3 व प्रदर्श-5 पत्र मुकदमा बनाने के लिए व अन्य कार्यवाहियों के लिए झूठे पत्र तैयार किए हों । इस बात को गलत बताया कि उसने दबाव व अन्य कार्यवाहियों में उसके पति व जेठानी पर झूठे आरोप लगाए हों अपितु जो देखा था वही लिखा था । इस बात को गलत बताया कि उससे दहेज की कोई मांग नहीं की गई हो । प्रदर्श-11 में ए से बी भाग सब रिश्तेदारों के दबाव से उसके ससुराल वाले उसे लेकर गए यह बात गलत लिखी है किन्तु चार माह ससुराल में रही, यह सही लिखा है । एन.ए.ड. 3 के रूप में अप्रार्थीया के पिता सत्यनारायण ने भी अप्रार्थीया के उपरोक्त बयानों की पूर्णतया पुष्टि की है और उसके भाई एन.ए.ड. 4 महावीर प्रसाद ने भी करीब-करीब वैसे ही बयान देते हुए अप्रार्थीया के कथनों की पुष्टि की है तथा इनसे प्रार्थी पक्ष की ओर से की गई जवाब में वैसा ही जवाब आया है जैसा अप्रार्थीया ने अपने जिरह में बताया है ।

12. इस प्रकार हमारी राय में दोनों ही पक्षों की ओर से आई उपरोक्त साक्ष्य पर उनके द्वारा प्रस्तुत विधिक व्यवस्थाओं में प्रतिपादित सिद्धांतों के साथ विचार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रार्थी पक्ष अपनी याचिका में क्रूरता संबंधी आक्षेप को भलीभांति सिद्ध करने में सफल रहा है क्योंकि इस बाबत प्रार्थी, उसके पिता, भाई, भाभी एवं चाचा ने स्पष्टतः कथन किए हैं और उनसे विपक्षीया की ओर से जो जिरह की

गई है, उनसे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि उनके बताए अनुसार अप्रार्थीया द्वारा उनके साथ व्यवहार नहीं किया गया हो । अप्रार्थीया की ओर से जो साक्ष्य आए हैं, उससे भी इसका कोई खंडन नहीं होता अपितु अप्रार्थीया द्वारा जो आरोप लगाए गए हैं उसके साथ क्रूरता की गई, गर्भपात कराने के लिए उस पर दबाव डाला, उसका खंडन तो उसके स्वयं द्वारा ही अलग-अलग स्थानों में किए गए कथन करती है कि उसने टेलीफोन के जरिए अपने परिवारजनों को इसकी सूचना दी थी, दूसरी तरफ प्रदर्श ए-5 पत्र लिखकर अपने भाई महावीर प्रसाद से इसकी सूचना दी थी एवं टेलीफोन संबंधी कहानी गलत लिखी है । इसके अलावा वह जो 15 लाख रुपए दहेज की मांग करना बताती है वह कहानी भी इसलिए आधारहीन है क्योंकि उसने जब प्रदर्श-11 व प्रदर्श-6 पुलिस अधीक्षक को वर्ष 2006 में की थी उनमें भी दहेज में 15 लाख रुपए मांगने की बात लिखी हुई नहीं है और उसके बाबत उसके द्वारा जो स्पष्टीकरण दिया गया है कि वह ससुराल जाना चाहती थी इसलिए उसने यह बात नहीं लिखाई । हमारी राय में यह विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि जब अन्य आरोप लगाए जा सकते हैं तो यह दहेज वाली बात भी उसमें अवश्य लिखी जाती । इस प्रकार हमारी राय में प्रार्थी पक्ष की ओर से प्रस्तुत साक्ष्य से यह तथ्य भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि अप्रार्थीया द्वारा प्रार्थी एवं उसके भाभी के बीच अवैध संबंध बाबत झूठे आरोप समय-समय पर लगाए गए हैं, जो प्रार्थी पक्ष के अनुसार मौखिक रूप से तो लगाए ही गए, उसके अलावा पत्रावली के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रदर्श-3 इस्तगासा जो मस्तगीसा श्रीमती डिंपल की ओर से न्यायालय में प्रस्तुत किया गया है, उसके पैरा नंबर-9 में उसने यह अंकित किया है कि मुलजिम सुभाष के अपनी भाभी मुलजिमा अलका से अवैध संबंध है तथा दोनों आए दिन अश्लील हरकतें कर मस्तगीसा को मानसिक रूप से प्रताड़ित करते रहते हैं । मुस्तगीसा ने मुलजिम सुभाष के हाथ का लिखा प्रेम पत्र एक दिन मौका मिलने पर उसकी पेन्ट की जेब से निकाला जो मुस्तगीसा के पास में है । इसी प्रकार प्रदर्श ए-4 बयान श्रीमती डिंपल ने जो दिनांक 27 जून, 2006 को दिया है उसमें भी उसने यह कथन किया है कि शादी के कुछ समय पश्चात् उसे

ससुराल में उसे पति द्वारा जेठानी श्रीमती अलका पत्नी सुरेश को लिखा हुआ एक पत्र घर में मिला जिस पत्र की फोटो प्रति रिपोर्ट के साथ संलग्न है एवं उसके पश्चात् उसकी जेठानी श्रीमती अलका एवं उसके पति सुभाष जो आपस में अश्लील हरकतें करते एवं आपत्तिजनक अवस्था में देखा तब इसकी शिकायत उसने अपनी सास श्रीमती फुली देवी एवं ससुर वेदप्रकाश को की मगर उन्होंने इसकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया तथा उसकी सास ने उसे कहा कि ये तो ऐसे ही करते रहेंगे तेरे को रहना है तो रह तब वह यह सब सहन करती रही। इसी प्रकार उन्होंने प्रदर्श-11 पत्र जो पुलिस अधीक्षक सिरोही को दिनांक 9 मार्च, 2006 को प्रस्तुत किया है, उसमें भी उसने यह अंकित किया है कि जब से वह ससुराल गई तब से ही उसे यह देखने को मिला कि उसके पति सुभाष का गलत रिश्ता उसकी जेठानी अलका पत्नी सुरेश कुमार के साथ है। उसने जब इनकी अश्लील हरकतें देखी तो उसने विरोध किया। इस पर उसके पति ने उसके साथ मारपीट भी की तथा उसकी जेठानी, उसकी ननद ने देखा जिसकी शादी माउण्टआबू निवासी लक्ष्मण के साथ हुई है, उसे बुलाया तथा उसकी ननद सास-ससुर इन सब ने मिलकर उसे कहा कि इस घर में रहना है तो चुपचाप सब सहन करके रहना है तथा यह बात घर के बाहर नहीं जानी चाहिए। उसकी जेठानी ने तो उसके पति के लिखे हुए प्रेम पत्र भी उसे लाकर दिए तथा कहा कि इन चिट्ठियों को पढ़ने से तुमको मालूम हो जाएगा कि उसके सुभाष से क्या संबंध हैं। इसी प्रकार उसने प्रदर्श ए-6 पत्र पुलिस अधीक्षक पाली को दिनांक 24 अप्रैल, 2006 को लिखा है, उसमें भी उसने यह तथ्य अंकित किया है कि जब से वह ससुराल गई तब से ही उसे यह देखने को मिला कि उसके पति सुभाष का गलत रिश्ता उसकी जेठानी अलका पत्नी सुरेश कुमार के साथ है। उसने जब इनकी अश्लील हरकतें देखी तो उसने विरोध किया। इस पर उसके पति ने उसके साथ मारपीट भी की तथा उसकी जेठानी, उसकी ननद रेखा जिसकी शादी माउण्टआबू निवासी लक्ष्मण के साथ हुई है, उसे बुलाया गया तथा उसकी ननद, जेठानी, सास-ससुर इन सबने मिलकर उसे कहा कि इस घर में रहना है तो चुपचाप सब सहन करके रहना है तथा यह बात घर

के बाहर नहीं जानी चाहिए । उसकी जेठानी ने तो उसके पति के लिखे हुए प्रेम पत्र भी उसे लाकर दिए तथा कहा कि इन चिट्ठियों को पढ़ने से तुमको मालूम हो जाएगा कि उसके सुभाष से क्या संबंध है । इसी प्रकार दिनांक 15 मार्च, 2007 को जो श्रीमती डिंपल द्वारा घरेलू हिंसा बाबत प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया है, उसमें भी उसने यह स्पष्ट कथन किया है कि उसने अपने पति को कहा कि आप रोजाना देर रात्रि तक अपनी भाभी के पास ही रहते है क्या बात है? इस पर सुभाष ने परिवादिनी को स्पष्ट कहा कि मेरी भाभी और मेरे संबंध के बारे में तुम्हें ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है । इस घर में रहना है तो यह सब सहन करना पड़ेगा जिसका स्पष्ट आशय यह था कि उसके अपनी भाभी के साथ अवैध संबंध हैं । इस पर परिवादिनी ने अपनी सास से यह बात कही तो परिवादिनी की सास व बाद में ससुर ने परिवादिनी को स्पष्ट कह दिया कि सुभाष व उसकी भाभी (अलका) के आपस में अवैध संबंध है, जिसे तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा ... इस पर अलका ने परिवादिनी को अपने कमरे से करीब 10-12 पत्र लाकर, उनमें से एक पत्र अलका परिवादिनी के पास ही छोड़ गई । अर्थात् विभिन्न स्थानों पर लिखित रूप से अप्रार्थीया ने प्रार्थी व उसकी भाभी के अवैध संबंध होने के आरोप लगाए हैं और इस संदर्भ में उसने दो आधार प्रकट किए हैं, एक तो उसके द्वारा स्वयं उन्हें अश्लील हरकतें करते हुए देखना अपने पत्रों में अंकित किया है और दूसरी तरफ अलका द्वारा ऐसे कई पत्र उसे बताकर उसमें से प्रदर्श ए-3 पत्र उसके पास छोड़ देना कथित किया गया है । उल्लेखनीय है कि अप्रार्थीया की ओर से इस बिन्दु पर जो कथन किए गए हैं उसमें उसने प्रार्थी द्वारा अपनी भाभी के साथ अश्लील हरकतें करते हुए देखा हो, ऐसा कोई कथन नहीं किया है, अपितु केवल यह कथन किया गया है कि उसके पति का व्यवहार उनकी भाभी अलका के साथ रहा एवं जो पत्र उसने अलका भाभी को लिखा, उससे उसे उसके पति के उसकी भाभी के साथ संबंधों पर शंका हुई जो स्वाभाविक है । जिरह में प्रदर्श ए-3 पत्र के बारे में पूछे जाने पर उसने जो कथन किए हैं उससे प्रकट है कि उसे अलग-अलग स्थानों पर वह पत्र किस प्रकार प्राप्त हुआ, इस बाबत भिन्न-भिन्न कथन प्रकट किए हैं,

एक जगह वह यह कथन करती है कि प्रदर्श-3 पत्र उसे उसकी जेठानी अलका ने दिया था, दूसरी जगह वह यह कथन करती है कि सुभाष की पेन्ट की जेब में से उसने यह प्रदर्श-3 पत्र निकाला था तथा तीसरी जगह वह यह कथन करती है कि एक पत्र घर में मिला था । अतः वह पत्र वहां से व किस रूप में मिला, यह अप्रार्थीया स्पष्ट रूप से सिद्ध नहीं कर पाई है । वैसे भी हमारी राय में प्रदर्श ए-3 पत्र को देखा जावे तो उससे ऐसा कोई तथ्य प्रकट नहीं होता कि प्रार्थी व उसकी भाभी के बीच अश्लील या अवैध संबंध रहे हों, भावनात्मक रूप से लिखा गया पत्र अवश्य प्रतीत होता है । प्रदर्श ए-3 पत्र प्रार्थी सुभाष ने अपना होने से स्पष्ट इनकार किया है और इसे लिखे जाने से भी इनकार किया है तथा अलका ने भी अपने सशपथ कथनों में इससे इनकार करते हुए कथन किया है कि उसे सुभाष से ऐसा कोई पत्र नहीं मिला, न उसे ऐसा पत्र मिला और न ही उसने अप्रार्थीया को यह पत्र दिया तब हमारी राय में प्रदर्श-3 वाली कहानी भी प्रथमदृष्ट्या विश्वास के योग्य नहीं है । इसके अलावा अप्रार्थीया द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है जिसके आधार पर उक्त तथ्य पर विश्वास किया जा सके कि प्रार्थी एवं उसकी भाभी के बीच अवैध संबंध हों तब हमारी राय में यह तथ्य प्रार्थी पक्ष सिद्ध करने में सफल रहा है कि अप्रार्थीया द्वारा प्रार्थी व उसकी भाभी के अवैध संबंधों का झूठा व आधारहीन आरोप लगाया गया है जिससे उसे एवं उसके परिवारजन को अत्यधिक मानसिक क्रूरता पहुंची है । अतः इस बिन्दु पर प्रार्थी पक्ष की ओर से प्रस्तुत माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय इन्दू मिश्रा **बनाम** कोविद कुमार गौड़ और अन्य, 2006 (1) डीएनजे (राजस्थान) पेज 182, राजेश डोडीवाल **बनाम** श्रीमती संगीता 2007 (2) डीएनजे (राजस्थान) पेज 763, श्रीमती पार्वती **बनाम** प्रेमसिंह, (2001) डीमसी पेज 501 एवं श्रीमती अनिता जैन **बनाम** राजेन्द्र कुमार जैन, 2009 (3) डीएनजे (राजस्थान) पेज 1665 में प्रतिपादित सिद्धांतों को देखते हुए इस प्रकार के झूठे आरोप लगाना मानसिक क्रूरता की श्रेणी में आता है एवं यह तलाक के लिए पर्याप्त आधार है । जहां तक अन्य आक्षेपों का प्रश्न है, विद्वान् अधिवक्ता अप्रार्थीया का तर्क है कि सर्वप्रथम तो उपरोक्त तथ्य सिद्ध नहीं होते और यह मान भी लिया जाए

तो भी यह पारिवारिक जीवन की सामान्य उठा-पटक मात्र है, उससे गंभीर नहीं । हमारी राय में उनका यह तर्क सारहीन है क्योंकि प्रार्थी पर विवाह के कुछ समय बाद अप्रार्थीया ने दबाव डालना शुरू किया कि व अप्रार्थीया के पिता के यहां रहकर उनके व्यवसाय में सहयोग करे और ऐसा नहीं करने पर अप्रार्थीया ने प्रार्थी व उसके परिवार वालों को गालीगलौज, अभद्र व्यवहार लम्बे समय तक करना और उन्हें दहेज व अन्य झूठे मुकदमे में फंसाए जाने की धमकी आदि देना और उसके बाद पीहर जाकर उनके विरुद्ध फौजदारी मुकदमा दर्ज करा देना जिसमें उनको गिरफ्तार होना पड़ा, आदि तथ्यों से यह नहीं माना जा सकता कि ये पारिवारिक जीवन की सामान्य उठक-पटक मात्र है, अपितु हमारी राय में वह भी क्रूरता की श्रेणी में आता है । जहां तक विद्वान् अधिवक्ता अप्रार्थीया के इस तर्क का प्रश्न है कि दिनांक 9 जनवरी, 2008 को प्रार्थी द्वारा अप्रार्थीया की ओर से प्रस्तुत धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता प्रार्थनापत्र में यह लिखने के आधार पर कि वह अप्रार्थीया को साथ रखने के लिए तैयार है, इस क्रूरता को माफ कर दिया गया है । हमारी राय में यह तर्क भी सारहीन है क्योंकि क्रूरता की माफी के संदर्भ में प्रार्थी पक्ष की ओर से जो माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय श्रीमती आभा अग्रवाल **बनाम** सुनील अग्रवाल, 2001 (1) सिविल कोर्ट केसेज पेज 266 पेश किया, उसमें हिन्दू विवाह अधिनियम के अनुसार क्रूरता की माफी का तात्पर्य दाम्पत्य अधिकारों के संबंधों में किए गए अपराध का भूल जाना एवं ऐसे कृत्य किए जाने वाले पक्षकार को पूर्ववर्ती स्थिति में वापिस स्थापित कर देना, जैसा कि वह उस घटना से पूर्व में था, माना जाएगा और इस प्रकरण में ऐसी कोई स्थिति नहीं आई है, केवल प्रार्थी द्वारा अप्रार्थीया के धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रार्थनापत्र में यह लिख देने मात्र से कि वह अप्रार्थीया को आज भी साथ रखने के लिए तैयार है, यह नहीं माना जा सकता कि प्रार्थी ने उसकी पूर्ववर्ती क्रूरता को माफ कर दिया है क्योंकि उसके बाद दोनों पक्षों के बीच दाम्पत्य जीवन की पुनर्स्थापना नहीं हुई है, केवल मात्र साथ रखने का लिखा गया है, अप्रार्थीया उसके बाद प्रार्थी के साथ रहने गई हो, ऐसा कोई प्रकरण अप्रार्थी पक्ष का नहीं है ।

अतः यह नहीं माना जा सकता कि प्रार्थी ने अप्रार्थीया द्वारा किए गए क्रूरतापूर्ण व्यवहार को माफ कर दिया गया हो या ऐसा अंतरिम भरणभोषण के प्रार्थनापत्र में लिख देने मात्र से वह विवाह-विच्छेद की कार्यवाही नहीं कर सकता हो ।

13. फलस्वरूप हमारी राय में उपरोक्त समस्त विवेचन के आधार पर इस प्रकरण में प्रार्थी पक्ष यह सिद्ध करने में सफल रहा है कि अप्रार्थीया द्वारा प्रार्थी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया है । अतः यह विवाद्यक प्रार्थी के पक्ष में विपक्षीया के विरुद्ध तय किया जाता है ।

आदेश

18. अतः प्रार्थी सुभाष पुत्र वेद प्रकाश जाति अग्रवाल निवासी सुमेरपुर तहसील सुमेरपुर जिला पाली की ओर से प्रस्तुत याचिका के अंतर्गत धारा 13 हिन्दू विवाह अधिनियम विपक्षीया श्रीमती डिंपल पुत्री सत्यनाराण जाति अग्रवाल निवासी सरूपगंज तहसील पिण्डवाड़ा जिला सिरोही के विरुद्ध स्वीकार की जाकर प्रार्थी सुभाष एवं विपक्षीया श्रीमती डिंपल के मध्य दिनांक 13 मई, 2001 को गांव सरूपगंज तहसील पिण्डवाड़ा जिला सिरोही में हिन्दू रीति रिवाज के अनुसार संपादित विवाह आज दिनांक 28 जुलाई, 2011 से विघटित किया जाता है इसका प्रभाव तारीख डिक्री से होगा । विपक्षीया श्रीमती डिंपल की ओर से प्रार्थी सुभाष के विरुद्ध प्रस्तुत प्रति-प्रकरण रूपी याचिका अंतर्गत धारा 9 हिन्दू विवाह अधिनियम वास्ते दाम्पत्य अधिकारों की पुनर्स्थापना एतद्द्वारा अस्वीकार यानि खारिज की जाती है । तद्नुसार डिक्री पर्चा बनाया जाए ।

एसडी/-
(अजय कुमार शारदा)
जिला न्यायाधीश, सिरोही

15. यह अपराध पत्र प्रदर्श-ए/3 पुनः प्रस्तुत करने के लिए भी सुसंगत पाया है, जिसमें प्रत्यर्थी-पति के अनुसार अपीलार्थी-पत्नी द्वारा उसको क्रूरता और मानसिक यांत्रणा की गई है चूंकि उसने निचले न्यायालय के समक्ष यह पत्र प्रस्तुत किया है कि उसी समय पर भिन्न समय पर भिन्न स्रोत

प्रकट करने के बारे में इसमें निष्कर्ष के स्रोत मिले हैं और जैसा उपरोक्त उद्धृत भाग में निचले न्यायालय द्वारा उल्लेख किया गया है, वह यह साबित करने में असफल रही कि क्या उसके पति ने अपनी भाभी को उक्त पत्र सच में लिखे थे ।

"डियर-एन-डियर, भाभी जी,
हैलो एंड स्वीट मेमोरी ।
मेरा दिल ये पुकारे आजा...!"

पता नहीं पत्र में क्या-क्या कैसे लिखते हैं फिर भी कोशिश करता हूं क्योंकि आपने भी कोशिश की और आपको सफलता हुई मैं कोशिश करता हूं शायद कुछ लिख सकूं ।

सबसे पहले

मैं यहां खुश हूं और आशा करता हूं आप भी अच्छी होंगी ।

भाभी जी, आप तो नवरात्री शुरू होने के कुछ दिन पहले ही अजमेर चले गए, इसलिए यहां के डांडिया तो आप नहीं देख पाए लेकिन अजमेर के डांडिया तो देखे ही होंगे । कैसे लगे कृपया तुरन्त लिखो, यहां तो बहुत अच्छे लगे किन्तु फिर भी शायद अच्छा लगने में कुछ कमी लगी क्योंकि डांडिया देखने हम आपके साथ नहीं जा सके । वैसे हम कर भी क्या सकते थे आप अजमेर में जो थे । वैसे तो अजमेर में डांडिया देखने व खेलने का लुत्फ उठा रही होंगी ।

भाभी जी, मुझे कुछ लोगों से शिकायत है कि वे बार-बार मुझसे झूठ बोलते हैं कि आपने मुझे यहीं घर पर बुलाया है जबकि आप तो अजमेर में हो, फिर भी मैं उनकी बातों पर विश्वास नहीं करता क्योंकि आपने खुद मुझे टेलीफोन पर अपने अजमेर जाने की बात कही थी आखिर आप मुझसे झूठ थोड़े ही बोलेंगी । क्योंकि आप शायद ही ऐसा मजाक पसन्द करें जो मुझे भावनात्मक रूप से दुख पहुंचाए । आपसे तो मुलाकात शायद तभी हो जब आप अजमेर से वापस आ जाएं । अजमेर से वापस आने पर मुझे जरूर सूचित करना क्योंकि आपके बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता न तो डांडिया देखना और न ही शिवगंज जाना और कुछ भी नहीं ।

हो सकता है आपको तो मेरी याद बिल्कुल भी नहीं आती हो क्योंकि अजमेर शहर ही ऐसा है वहां जो जाता है अपने आप में ही

मशरूफ हो जाता है लेकिन मैं तो आपको एक क्षण के लिए भी नहीं भूल पाया बस यही सोचता रहता हूं कि "हमसे का भूल हुई जो ये सजा हमको मिली ।"

और हां आपने तो अजमेर जाने के बाद न तो फोन पर बात की और न ही पत्र लिखा । शायद आप मुझसे किसी बात पर नाराज हों, लेकिन मुझे खुशी है क्योंकि नाराज भी तो उसी पर दिखाते हैं न जिस पर अपना कुछ अधिकार बनता हो । और हां कोई नाराज हो तभी तो रूठे को मनाने का मौका मिलता है । तो बताइए आला-कमान को मनाने के लिए क्या किया जाए यदि आप को मार दिया जाए या छोड़ दिया जाए तो मैं तो यही कहूंगा कि छोड़ने की गलती तो कभी मत करना फिर भी आखिर मुझे यह तो कहना ही होगा कि 'हमका माफी दे दो'

कृपया मनाने का विचार जल्दी से बताएं ताकि मैं शिवगंज तो तहे दिल से आ सकूं वरना मैं तो पत्र लिखते-पढ़ते हिचकियां ही लेता रहता हूं । फिर भी शिवगंज आकर गली के कोने में ही आना पड़ता है ।

वैसे आप अजमेर से कब तक वापस आएंगी क्योंकि कभी-कभी मैं तो ये भूल ही जाता हूं कि आप अजमेर में हैं व मैं तो आपको डांडिया के स्थान पर ढूंढता रहता हूं बाद में कहीं जाकर याद आता है कि आप तो यही कहेंगी कि मैं तो अजमेर चली जाऊंगी पीछे ढूंढते रह जाओगे । कभी-कभी दीदी के घर के बाहर जाली पर आकर खड़ा रहता हूं तो किसी और के आपके बारे में याद दिलाने पर ही ख्यालों से अलग हो पाता हूं ।

कृपया आप बिना वक्त गवाएं तुरन्त वापस आ जाओ ।

हां तो आप वापस कब आ रही हैं हो सके तो नवरात्री के बीच ही लौट आइए ताकि भटके राही सही रास्ते पर चल सकें ।

चलिए अब कुछ काम की बात पर आते हैं । भैया आपको बहुत याद करते हैं और हां भैया भी मुझसे मज़ाक करते हैं कि आप अजमेर गई ही नहीं । आप उन्हे जरूर डाटियेगा ।

एक ओर महत्वपूर्ण बात है कि आप जब भी अजमेर से वापस आएंगी मेरे दिल को सुकुन मिलेगा और मैं यह गाता हुआ उठूंगा कि

"मदहोश हुआ जाये रे, मेरा मन........!"

आह माफ करना....... मैं तो भूल ही गया था कि मैं तो महज एक पत्र लिख रहा हूं । मैं तो जैसे अपने ख्यालों की किताब में दिल की दास्तान को यादों को एक्सीलेटर की तरह दबाए ही जा रहा था । मैं माफी चाहता हूं आगे से ध्यान रखूंगा । छावनी में सभी अच्छे हैं ।

मम्मी जी ने व रेखा दीदी ने आपको याद फरमाया है साथ ही योगेश ने भी । मुझे तो पत्र लिखकर सुकुन मिला है चैन तभी मिलेगा जब आपसे गुफ्तगू होगी ।

अब तो दो ही अर्ज हैं एक तो आप लौट आइए । दूसरी अर्ज है - आदाब अर्ज ।

आमने-सामने होने तक
अच्छा ठीक है, फिर मिलेंगे

आपका
नाम- सब जानते हैं !"

16. पूर्वोक्त पत्र के अतिरिक्त, इसमें अधिनियम की धारा 13 के अधीन की गई कार्यवाहियों में निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए अभिकथनों के कुछ भाग उद्धृत करना भी उचित होगा ।

(i) पति-सुभाष-प्रत्यर्थी के अभिकथन

"2. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूं कि अप्रार्थीया का व्यवहार विवाह के कुछ समय तक मेरे प्रति ठीक रहा मगर कुछ समय पश्चात् से ही अप्रार्थीया ने मुझ पर दबाव डालना शुरू कर दिया कि आप मेरे पिता के यहां सरूपगंज में उनके साथ व्यवसाय शुरू करें तथा सरूपगंज में ही निवास करें । मेरे द्वारा कई बार समझाईश करने के बावजूद भी अप्रार्थीया नहीं मानी तथा अपने जिद पर अड़ी रही इस हेतु दबाव बढ़ाने के लिए मेरे साथ एवं मेरे परिवारजन के साथ अप्रार्थीया ने उपेक्षित व्यवहार करना शुरू कर दिया । अप्रार्थीया बिना किसी उचित वजह के मेरे एवं मेरे परिवारजन के साथ झगड़ा एवं बात-बात पर गालीगलौज करना शुरू कर दिया । मेरे द्वारा काफी समझाने के बावजूद भी अप्रार्थीया नहीं मानी, तथा अप्रार्थीया ने स्पष्ट रूप से मुझे कह दिया कि यदि मैं उसके पिता के घर नहीं रहता हूं तो अप्रार्थीया भी घर छोड़कर चली जाएगी तथा धमकी देने लगी कि उसकी बात नहीं मानी तो किसी भी सीमा तक आरोप लगा सकती

है । पूरे परिवार को दहेज के झूठे मुकदमे में एवं अन्य मुकदमे में फसा देगी । इसके बावजूद भी मेरे द्वारा अप्रार्थीया को समझाने की कोशिश की लेकिन अप्रार्थीया नहीं मानी तथा अन्त में दिनांक 22 जून, 2002 को अप्रार्थीया ने अपने भाई को अस्पताल जाने का बहाना बनाकर बुलाया तथा अपने पीहर सरूपगंज चली गई, वहां पर मेरे एवं मेरे परिवारजन के विरुद्ध दहेज की मांग का झूठा मुकदमा कर दिया इस प्रकार अप्रार्थीया ने मेरे एवं मेरे परिवार के सदस्यों की हर तरह से परेशान कर मेरे साथ क्रूरता की ।

3. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूं की अप्रार्थीया अपने उद्देश्य में सफल नहीं होने पर नैतिकता की सारी सीमाओं को समाप्त कर दिया तथा मुझ पर मेरी मां समान भाभी अलका के साथ अवैध संबंध होने का बिल्कुल झूठा, मनगंढ़त व आधारहीन आरोप लगा दिया तथा अप्रार्थीया ने सिर्फ मुझ पर ही नहीं बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से मेरे माता पिता पर भी इस अवैध संबंध पर अप्रार्थीया को चुपचाप सहन करने के आदेश देने का आरोप लगा दिया जो आरोप बिल्कुल ही आधारहीन है । इस प्रकार अप्रार्थीया ने मेरे साथ क्रूरता की है । अप्रार्थीया ने मुझे 8 वर्ष से अधिक से अभित्यक्त कर रखा है ।

4. मैं शपथपूर्वक बयान करता हूं कि अप्रार्थीया ने मेरे एवं मेरे परिवार के सदस्यों को मुझे दहेज की मांग करने का मुकदमा दर्ज करवा कर मुझे एवं मेरे परिवार के सदस्यों को गिरफ्तार करवा दिया जबकि मेरे एवं मेरे परिवारजन द्वारा अप्रार्थीया से कभी भी दहेज की मांग नहीं की गई तथा अप्रार्थीया द्वारा प्रस्तुत पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट में भी दहेज की मांग का जिक्र नहीं किया गया है । अप्रार्थीया ने झूठे बनावटी व मनगढ़ंत आरोप लगाकर मुझे एवं मेरे परिवार के सदस्यों के विरुद्ध घरेलू हिंसा से स्त्री का संरक्षण अधिनियम व भरण-पोषण के झूठे मुकदमे कर मेरे साथ क्रूरता की है ।

जिरह

यह बात सही है कि मैंने अपने पुत्र के जन्मदिन पर कोई गिफ्ट नहीं भेजा । यह बात सही है कि मेरा पुत्र आबू रोड स्कूल में पढ़ता था वहां मैं कभी नहीं गया । मेरे बड़े भाई सुरेश का विवाह कौन-सी तारीख को हुआ वह मुझे याद नहीं है लेकिन करीब पन्द्रह से बीस साल विवाह हुए हो गए हैं । यह बात सही है कि मेरे बड़े भाई सुरेश

के अभी तक कोई संतान पैदा नहीं हुई है । यह कहना गलत है कि मेरे पुत्र का इलाज दिनांक 9 मई, 2003 को महावीर अस्पताल में हुआ हो तो मुझे पता नहीं । मेरे चाचा के लड़के का नाम योगेश है । यह कहना गलत है कि दिनांक 21 जून, 2002 को अप्रार्थीया कोई इलाज हेतु योगेश सरकारी अस्पताल लेकर गया हो बल्कि योगेश नहीं गया मैं गया था । प्रदर्श ए-2 पर्ची मैंने तैयार कराई थी या नहीं यह मुझे पता नहीं । आज खुद कहा कि प्रदर्श ए-2 पर्ची थी या दूसरी थी यह पता नहीं, मेरी पत्नी गर्भवती थी इसलिए उसका टेस्ट करवाने हेतु मैं लेकर गया था । यह कहना गलत है कि दिनांक 21 जून, 2002 को मेरी पत्नी गर्भवती नहीं हो । फिर कहा कि मैं दिनांक 21 जून, 2001 की बात समझ रहा हूं, दिनांक 21 जून, 2002 को तो मैं अप्रार्थीया का जनरल चैकअप करवाने के लिए लेकर गया था । यह बात सही है कि मेरी भाभी का नाम अलका है । यह मुझे पता नहीं है कि मेरी भाभी अलका की बड़ी बहन की शादी अजमेर में हुई या नहीं । प्रदर्श ए-3 पत्र की लिखावट मेरे हाथ की नहीं है, उक्त पत्र मैंने नहीं लिखा है । मेरी बहन का नाम रेखा है । प्रदर्श ए-3 पत्र हमारे परिवार के किसी भी सदस्य के हाथ का लिखा हुआ नहीं है । हम दो भाई हैं, मैं व सुरेश । यह कहना गलत है कि प्रदर्श ए-3 पत्र मेरी भाभी अलका ने डिंपल को दिया हो । सरूपगंज व सुमेरपुर में कब-कब समझाइश हुई इसकी तारीख मुझे याद नहीं है लेकिन हमने कई बार प्रयास किए कि डिंपल आ जाए । हमारी समझाइश में मेरे चाचा महेन्द्रजी, फूफाजी प्रभुदयालजी में अलग-अलग रिश्तेदार शामिल थे । यह बात सही है कि समझाइश विफल होने पर मैंने अप्रार्थीया को लाने हेतु कोई नोटिस नहीं दिया । आज खुद कहा कि मेरे पिताजी ने पत्र जरूर लिखे थे । पुलिस अधीक्षक पाली व पुलिस अधीक्षक सिरोही के समक्ष वार्तालाप में दहेज की बात नहीं हुई क्योंकि हमने कभी भी दहेज की मांग अप्रार्थीया से नहीं की । दहेज के मुकदमे में मेरे विरुद्ध कौन-कौन गवाह हैं इसका मैंने ध्यान नहीं दिया क्योंकि सभी गवाह झूठे हैं । यह कहना गलत है कि मेरे व मेरी भाभी के मध्य कोई अवैध संबंध हों । जब डिंपल ने मेरे व मेरी भाभी को लेकर झूठे आरोप लगाए उन झूठे आरोपों की जानकारी मुझे मुकदमा करने पर हुई और उससे पहले भी मुखजुबानी आरोप लगाने से हुई थी । सुमेरपुर व सरूपगंज में हमने समाज इकट्ठा किया था । समाज इकट्ठा किया उसमें कोई लिखा-पढ़ी नहीं हुई । समाज इकट्ठा

किया तब उसके पिताजी मौजूद रहते थे । समाज इकट्ठा विवाह-विच्छेद की कार्यवाही के पहले किया था । अब डिंपल मेरे साथ रहना चाहे तो संभव नहीं है क्योंकि मुझे जेल में डलवाया, मेरे ऊपर झूठे लांछन लगाए, हमे कलंकित किया । यह बात सही है कि धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही विपक्षीया द्वारा किए जाने पर उसका जवाब दिए जाने के करीब सात माह बाद मैंने यह तलाक का मुकदमा पेश किया है । यह कहना गलत है कि इस सात माह की अवधि में हमने विपक्षीया को लाने का कोई प्रयास नहीं किया हो अपितु मिलने-जुलने वालो से कहा था कि अभी भी कोई रास्ता निकलता हो तो निकालो लेकिन नहीं आने पर यह तलाक का मुकदमा पेश किया । डिंपल के दो भाई हैं । यह मुझे पता नहीं है कि डिंपल के पिताजी व दो भाई एक दुकान पर बैठकर साथ में व्यवसाय करते हों । डिंपल ने मुझे शादी होते ही दस-पन्द्रह दिन बाद यह कहना शुरू किया कि सरूपगंज चलो और वहां जाकर व्यवसाय करो तथा सरूपगंज में ही रहो । मैं व्यवसाय हेतु सरूपगंज कभी नहीं गया । यह कहना गलत है कि दिनांक 21 जून, 2002 को हमारे मध्य कोई विवाद नहीं हो अपितु डिंपल ने अनबन शुरू कर दी थी । डिंपल ने पूरे परिवार के साथ ही गालीगलौज व क्रूरता करना शुरू कर दिया था इस कारण परिवार के सभी सदस्य जानते थे, मुझे किसी को बताने की आवश्यकता नहीं थी । दिनांक 21 जून, 2002 तक डिंपल कई बार अपने पीहर जा चुकी थी और कई बार हमने सुमझा-बुझाकर उसको लाया था । यह कहना गलत है कि मेरी भाभी के कोई संतान नहीं होने के कारण हमने डिंपल पर दबाव डाला हो कि तू भी डी एन सी करा । यह कहना गलत है कि डिंपल अपना बच्चा बचाने के लिए पीहर अपने भाई के साथ गई हो । बच्चे के जन्म के बाद डिंपल हमारे घर पर आई थी जो अपने आप नहीं आई, हम उसे लेकर आए थे । आज खुद कहा कि इस सोच के साथ कि अब पुत्र हो गया है जिससे उसके व्यवहार में परिवर्तन हो गया होगा और घर नहीं टूटे । जब मेरे पुत्र हुआ उस समय मैं चीन नहीं गया था । यह कहना गलत है कि दिनांक 22 जून, 2002 के बाद डिंपल अपने पीहर सरूपगंज गई उसके बाद हम उसे लेने कभी सरूपगंज नहीं गए हों । यह कहना गलत है कि डिंपल के परिवार ने सुमेरपुर में समाज इकट्ठा किया हो । मैं सुमेरपुर के गोपालजी, बाबूजी, अंबिका सेनेट्री वाले, सत्यनारायणजी को पहचानता हूं । यह कहना गलत

है कि उक्त तीनों व्यक्ति डिंपल के पिताजी के साथ हमारे घर आए हों । यह कहना गलत है कि डिंपल को हमारे पहने कपड़े घर से मारपीट कर निकाल दिया हो इस कारण वह अपने पीहर में रह रही हो । आज खुद कहा कि डिंपल का भाई हमारे घर आया और डिंपल कमरे से उसका सारा सामान पैक कर होस्पिटल के बहाने भाई के साथ चली गई । यह बात सही है कि डिंपल हमारे घर से उसका सारा सामान लेकर गई उसकी हमने पुलिस कार्यवाही नहीं की लेकिन समझाने का प्रयास जरूर किया था । मैंने बच्चे से मिलने की कोशिश की । यह बात सही है कि मैंने बच्चे को प्राप्त करने के लिए कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की । मेरे अंकल का ससुराल सरूपगंज में है । मेरे अंकल के ससुरजी का नाम मुझे पता नहीं है । यह बात सही है कि डिंपल की बहन सुमेरपुर में रहती है । प्रदर्श-9 व प्रदर्श-10 के जरिए हमने डिंपल को सामान सुपुर्द किया था । यह कहना गलत है कि डिंपल के गर्भवती होने पर मैंने डी एन सी कराने के लिए उस पर दबाव डाला हो तथा इस पर उसने अपने भाई को पत्र लिखा हो । यह कहना गलत है कि मैं डिंपल को नहीं रखता था इस कारण वह अपने पीहर में निवास कर रही हो । यह कहना गलत है कि मेरे व मेरे परिववार के बेरूखेपन से डिंपल अपने पीहर रह रही हो । यह कहना गलत है कि डिंपल ने हमारे विरुद्ध जो भी कार्यवाही की है उससे हमें कोई मानसिक व शारीरिक परेशानी नहीं हुई हो । यह कहना गलत है कि मैंने व मेरे परिवारजन ने डिंपल व उसके परिवारवालों से दहेज में पन्द्रह लाख रुपए की मांग की हो । मैं, मेरे माता-पिता, मेरे सगे भाई वगैरह सभी शामिल ही रहते हैं । यह कहना गलत है कि मेरे साथ डिंपल ने कभी कोई क्रूरता नहीं की हो । यह कहना गलत है कि डिंपल मेरे से पुनर्स्थापना की डिक्री प्राप्त करने की अधिकारिणी हो ।"

(ii) सुरेश का अभिकथन (सुभाष का बड़ा भाई)

"2. मैं शपथ पूर्वक बयान करता हूं कि अप्रार्थीया अपने उद्देश्य में सफल नहीं होने पर नैतिकता की सारी सीमाओं को समाप्त कर दिया तथा सुभाष पर उसकी मां समान भाभी अलका जो कि मेरी धर्मपत्नी है के साथ अवैध संबंध होने का बिल्कुल झूठा, मनगढ़ंत व आधारहीन आरोप लगा दिया । अप्रार्थीया ने सिर्फ सुभाष व मेरे पत्नी अलका पर ही नहीं बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से मेरे माता-पिता पर भी इस

अवैध संबंध पर अप्रार्थीया को चुपचाप सहन करने के आदेश देने का आरोप लगा दिया जो आरोप बिल्कुल ही आधारहीन है । इस प्रकार अप्रार्थीया ने हमारे साथ क्रूरता की है एवं मेरी पत्नी अलका व सुभाष को बदनाम किया है । अप्रार्थीया ने सुभाष को 8 वर्ष से अधिक से अभित्यक्त कर रखा है ।

जिरह

मुझे यह जानकारी नहीं है कि सुभाष ने मेरी पत्नी को एक पत्र लिखा हो । यह कहना गलत है कि मेरी पत्नी अजमेर में हो तब मेरे भाई सुभाष ने पत्र लिखा हो । इस प्रकरण में जो पत्र पेश हुआ है वह मैंने नहीं देखा है । वह पत्र मैंने नहीं देखा लेकिन एफ. आई. आर. में उक्त पत्र का लिखा होने से मैंने मेरे शपथपत्र में बयान दिया है । उस केस में पुलिस ने मेरे बयान नहीं लिए । यह कहना गलत है कि सुभाष के बच्चे को देखने सरूपगंज मैं व मेरी पत्नी नहीं गए हों । जब डिंपल अपने भाई के साथ में झूठ बोलकर चली गई थी उसके बाद में मैं व मेरे पिता जी लेने के लिए डिंपल के घर सरूपगंज गए थे । उसकी तारीख मुझे आज याद नहीं है । डिंपल के जाने के बाद मैं एक बार ही सरूपगंज गया था । जब हम सरूपगंज समझाइश के लिए गए थे तब डिंपल ने आने के लिए इनकार किया था ।"

(iii) श्रीमती अलका का अभिकथन (सुभाष की भाभी)

"2. मैं शपथपूर्वक बयान करती हूं । कि अप्रार्थीया ने नैतिकता की सारी सीमाओं को पार कर दिया तथा मेरा सुभाष के साथ अवैध संबंध होने का बिल्कुल झूठा व मनगढ़ंत आरोप लगा दिया । अप्रार्थीया ने उक्त कृत्य कर मुझे व सुभाष को बदनाम किया है व क्रूरता की है । अप्रार्थीया ने झूठे पत्र सुभाष के नाम से बनवाकर न्यायालय में पेश किए हैं । सुभाष ने कभी भी मुझे कोई पत्र नहीं लिखा है तथा न ही कोई पत्र दिया है । मैंने कोई भी पत्र एवं अप्रार्थीया द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत पत्र अप्रार्थीया को नहीं दिया है । अप्रार्थीया द्वारा सर्वथा झूठा बनावटी पत्र न्यायालय में पेश किए हैं और मुझे बदनाम किया है ।

जिरह

यह कहना गलत है कि मैं जब अजमेर अपनी बहन के यहां गई तब उक्त पत्र सुभाष ने मुझे लिखा हो । डिंपल द्वारा केस करने के

बाद में हमारे सामलाती बात को लेकर विवाद हुआ था । सुभाष का केस करने के बाद विवाद हुआ था । मुझे मालूम नहीं है कि कौन-से केस के बाद हमारा विवाद हुआ था यह बात सही है कि सुभाष के बच्चा होने के बाद मैं कभी सरूपगंज नहीं गई । मेरे परिवार वाले डिंपल को लेने जरूर गए थे लेकिन किस-किस तारीख को गए थे यह मुझे आज याद नहीं है ।"

(iv) श्रीमती डिंपल का अभिकथन (वर्तमान अपीलार्थी)

"मैंने कभी भी अपने पति या उनके परिवार से झगड़ा नहीं किया एवं न ही उनके साथ उपेक्षित व्यवहार किया है । मेरे पति द्वारा मुझे समझाने एवं मेरे द्वारा घर छोड़कर चले जाने की बात गलत है । मैंने ऐसा कभी नहीं कहा है वरन सही बात यह है कि मेरे गर्भवती होने के बाद गर्भ गिराने का दबाव मेरे पति व उसके परिवारजन ने मुझ पर डाला है परन्तु मैं गर्भ गिराने के लिए तैयार नहीं थी । मेरे पुत्र का जन्म मेरे पीहर में हुआ है एवं इसके पश्चात् मैं ससुराल आई एवं रही हूं । इस दौरान या और कभी भी मैंने, प्रार्थी व उसके परिवारजन पर आरोप लगाने, दहेज के झूठे मुकदमे करने व अन्य मुकदमों में फंसाने की बात नहीं कही है । प्रार्थी ने विवाह विच्छेद याचिका में सर्वथा गलत रूप से सफल होने के लिए मनगढ़ंत व मिथ्या आरोप मुझ पर लगाए हैं । मेरे पति व उसके परिवारजन ने पन्द्रह लाख रुपए दहेज में लाने हेतु मुझ पर दबाव डाला था तब मैंने ऐसा करने से मना किया, इस कारण प्रार्थी व उसके परिवार वाले मुझ पर नाराज रहने लगे । मैंने बीमार होने पर दिनांक 21 जून, 2002 को मेरे सास ससुर से अस्पताल ले जाने एवं इलाज कराने हेतु निवेदन किया था परन्तु उनमें से कोई भी मुझे अस्पताल साथ में लेकर नहीं गया । मेरे काकीया ससुर के पुत्र बिट्टू के साथ में राजकीय अस्पताल सुमेरपुर गई जहां मुझे डाक्टर ने इलाज व जांच आदि कराने के लिए परामर्श व निर्देश दिए एवं उनका उल्लेख राजकीय चिकित्सालय की चिट्ठी पर किया ।

4. मैं शपथ लेती हूं कि और बयान करती हूं कि मेरे पति का व्यवहार उनकी भाभी अलका के साथ रहा एवं जो पत्र उसने अलका भाभी को लिखा, उससे मुझे मेरे पति के उसकी भाभी के साथ संबंधों पर शंका हुई है जो स्वाभाविक है ।

जिरह

प्रदर्श ए-3 पत्र अदालत में पेश करने से पूर्व मेरे पास ही रहा। मैंने याचिका जवाब व काउण्टर क्लेम में यह बात लिखाई थी कि प्रदर्श ए-3 पत्र मुझे मेरी जेठानी अलका ने मुझे दिया था। याचिका के जवाब व काउण्टर क्लेम पर मेरे हस्ताक्षर हैं। जवाब पर मैंने पढ़कर हस्ताक्षर किए थे। जवाब देखकर गवाह ने कहा कि अलका द्वारा मुझे पत्र देने की बात लिखी हुई नहीं है लेकिन पत्र का विवरण है। मुझे आज याद नहीं कि मैंने धारा 498ए, 406 भा. द. सं. के मुकदमे में अलका द्वारा पत्र मुझे देना लिखाया या नहीं। सुभाष के पेन्ट की जेब से पत्र मैंने निकाला था जो प्रदर्श ए-3 ही था। आज खुद कहा कि उक्त पत्र मुझे भाभी अलका ने दिए थे। गवाह ने प्रदर्श-3 देखकर कहा कि इसका पद संख्या नौ में अलका भाभी द्वारा सुभाष का पत्र देने की बात लिखने से रह गई है। प्रदर्श-3 में प्रदर्श ए-3 पत्र मौका मिलने पर सुभाष की पेन्ट की जेब से निकाला लिखा हुआ है। प्रदर्श-4 पुलिस बयान का ए से बी भाग 'एक पत्र घर में मिला' सुनकर कहा कि गलत लिखा है, मैंने ऐसा बयान पुलिस को नहीं दिया। याचिका के जवाब व प्रदर्श-3 परिवाद में अलका द्वारा पत्र दिया जो मैंने सुभाष को दिया और वापिस सुभाष की पेन्ट में से निकाला यह बात लिखी हुई नहीं है। आज खुद कहा कि घरेलू हिंसा वाले मुकदमे में उक्त बात लिखाई थी। यह बात सही है कि प्रदर्श-12 में मौका मिलने पर मैंने सुभाष की पेन्ट में से निकाला यह तथ्य लिखा हुआ नहीं है। प्रदर्श-11 व प्रदर्श ए-6 में भी सुभाष को वह पत्र देना तथा मौका मिलने पर उसकी जेब से निकालने वाली बात लिखी हुई नहीं है क्योंकि मैं ससुराल जाना चाहती थी इसलिए कुछ बातों का उल्लेख नहीं किया। यह सही है कि मैंने जवाब याचिका व काउण्टर क्लेम में 1,81,000/- रुपए फेरे के वक्त मेरे ससुरालवालों द्वारा मांगने की बात नहीं लिखाई है। क्योंकि सुभाष ने अपनी याचिका में इसका उल्लेख नहीं किया इस कारण मैंने उक्त बात नहीं लिखाई।"

(v) सत्यनारायण का अभिकथन (वर्तमान अपीलार्थी डिंपल के पिता)

"3. मैं शपथ लेता हूं और बयान करता हूं कि डिंपल शादी के कुछ समय पश्चात् गर्भवती हुई थी तो उसके ससुराल वाले नाराज

हुए एवं डिंपल पर गर्भपात करवाने का दबाव डालने लगे, डिंपल ने काफी मना किया लेकिन उसके ससुराल वाले नहीं माने और उन्होंने कहा कि जब तक अलका के संतान नहीं होती तब तक तुम्हारे संतान नहीं चाहिए । फिर डिंपल के साथ उपेक्षित व्यवहार करने लग गए, मेरा पुत्र महावीर प्रसाद डिंपल की शादी के 6-7 माह बाद डिंपल से मिलने सुमेरपुर गया तो डिंपल ने डी एन सी वाला पत्र प्रदर्श ए-5 लिखकर मेरे पुत्र महावीर प्रसाद के साथ मुझे भिजवाया तब मैं, मेरे रिश्तेदारों के साथ सुमेरपुर गया और डिंपल के सास, ससुर व सुभाष को काफी समझाया कि वह डिंपल पर गर्भपात का दबाव नहीं डाले लेकिन व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आया तब मैं डिंपल को लेकर सरूपगंज आया एवं सरूपगंज में ही डिंपल के डिलीवरी करवाई ।

जिरह

यह कहना गलत है कि धारा 498ए के मुकदमे में पुलिस ने प्रदर्श ए-3 असल पत्र जांच हेतु मांगा हो और हमने कहा हो कि वह असल पत्र नहीं मिल रहा है । जवाब याचिका तैयार करवाने के लिए मैं डिंपल के साथ में आया था उस समय वकील साहब को प्रदर्श ए-3 पत्र बताया या नहीं यह मुझे पता नहीं, डिंपल को पता है । यह मुझे पता नहीं है कि जवाब याचिका तैयार करवाने के लिए हम आए तब प्रदर्श ए-3 पत्र सरूपगंज के साथ लेकर आए थे या नहीं । डिंपल सभी कागज जवाब याचिका तैयार करवाने आए तब साथ लेकर आई थी और वकील साहब को बताए थे । उस समय पत्र प्रदर्श ए-3 असल बताया या नहीं यह मुझे पता नहीं । यह कहना गलत है कि प्रदर्श ए-3 पत्र मुझे महावीर प्रसाद ने डिंपल की शादी के बाद नहीं दिया हो । और केवल मात्र इस मुकदमे के लिए व अन्य फौजदारी मुकदमों के लिए हमने झूठा तैयार किया हो । प्रदर्श ए-3 पत्र जब मेरे पास आया और मैं वहां पर गया तब मेरी पुत्री डिंपल गर्भवती थी । इसके करीब साढ़े छह-सात महीने बाद महावीर प्रसाद दुबारा सुमेरपुर गया तब प्रदर्श ए-5 पत्र लेकर आया था । प्रदर्श ए-5 पत्र महावीर प्रसाद लेकर आया तब हम उसी दिन सुमेरपुर गए थे और उनसे बात की तथा उसी दिन मैं मेरी बच्ची को सरूपगंज लेकर आया था एवं उसके बाद डिलीवरी हुई थी ।"

17. उपर्युक्त वर्णित तथ्यों और परिस्थितियों जिनमें पक्षकारों के

सम्मिलित अभिकथन को ध्यान में रखते हुए, सम्मिलित हैं, इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा की गई मानसिक क्रूरता के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य हैं और न्यायोचित निष्कर्ष हैं और वे किसी भी प्रकार से इस न्यायालय द्वारा उलटे जाने योग्य नहीं हैं । जैसाकि उपर्युक्त अभिकथित किया जा चुका है, वैवाहिक विवाद के किसी भी पक्षकार द्वारा कारित मानसिक क्रूरता को गणितीय मापकों में मापा नहीं जा सकता है और उसे निर्धारित नहीं किया जा सकता है, इसलिए, यह कई कारकों जैसे आरोपों की प्रकृति, उससे संबंधित समय, प्रभाव और उसका सार्वजनिक होना इत्यादि पर निर्भर करता है, जो वैवाहिक विवाद के लिए दोनों में से किसी एक पक्षकार की मानसिक शांति को भंग करने का कारण हो सकता है ।

18. यह सत्य है कि पति और उसके कुटुंब सदस्यों के विरुद्ध दांडिक मामले फाइल करना अपीलार्थी-डिंपल का एक विधिक अधिकार था किन्तु यह उतना ही सत्य है कि अभियुक्त व्यक्तियों अर्थात् पति के सभी कुटुंब सदस्य की गिरफ्तारी और न्यायिक अभिरक्षा से समाज में प्रतिष्ठा की बड़ी हानि हुई है और यद्यपि लंबे विचारण के बाद सक्षम न्यायालय द्वारा दोषमुक्त करने से इस बीच में उनकी प्रतिष्ठा की हानि और उत्पीड़न सामान्यतया अपूर्णीय है । इस न्यायालय ने कई निर्णयों में सचेत किया है जिनमें इस न्यायालय के साथ ही उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 406 के मामले, महिलाओं के हाथों में उत्पीड़न करने के औजार बन गया है और वे अन्ततोगत्वा मानसिक उत्पीड़न और समय, धन और करियर की हानि तथा ऐसे मामलों को दर्ज करके कभी-कभी जीवन की हानि करके विधि की प्रक्रिया का सरासर दुरुपयोग करती है । इसीलिए, संसद् को कई निर्णयों को ध्यान में रखते हुए इस विधि में संशोधन करने पर विचार करना चाहिए और इसे शमनीय और जमानती अपराध बनाने पर विचार करना चाहिए । द्वितीयतः इस मामले में, पति द्वारा लिखित तात्पर्यित पत्र प्रदर्श ए-3 से, जो उपर्युक्त प्रस्तुत है, इस न्यायालय की राय में, प्रत्यर्थी-पति का अपनी भाभी अलका के साथ कोई अवैध संबंध या यौन संबंध दर्शित नहीं होता है किन्तु अपीलार्थी-पत्नी द्वारा उक्त पत्र को कुटुंब के सभी अन्य सदस्यों के समक्ष इसे प्रत्यर्थी-पति द्वारा लिखित प्रेम पत्र के रूप में दर्शित करना और तत्पश्चात् इसे सार्वजनिक करना और संसार के सभी व्यक्तियों को इसकी

जानकारी देना निश्चित तौर पर यदि कोई व्यक्ति इस चरित्र का है और इस प्रकृति का कोई अवैध संबंध नहीं बनाता है तो वह न तो इसका पर्याप्त रूप से स्पष्टीकरण दे सकता है और न ही इसकी बदनामी सहन कर सकता है जिससे वह समाज से बहिष्कृत हो गया है । चूंकि ऐसे मामलों में कोई सार्वभौमिक सिद्धांत अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि क्रूरता के कारण और कोटि में कौन से मामले आएंगे और कौन से नहीं, इसलिए हमेशा ही उन तथ्यों के सार संग्रह को विचार में लेना चाहिए और ऐसे साक्ष्यों पर विचार करना चाहिए जिनसे क्रूरता की सम्भाव्यता को प्रबलता मिलती है और न्यायालय को अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करना चाहिए या इनकार कर देना चाहिए ।

19. निचले न्यायालय ने विवाह-विच्छेद डिक्री न केवल अभित्यजन के आधार पर मंजूर की है अपितु ऐसे पत्र के कारण अपीलार्थी-पत्नी द्वारा अपने पति को कारित यातना और क्रूरता ध्यान में रखते हुए मंजूर की है जिसे वस्तुतः उसके द्वारा लिखित होना कभी भी साबित नहीं कर सकी है । यद्यपि सबूत का भार स्पष्ट रूप से उस पर होना था किन्तु निश्चित तौर पर इसका प्रभाव पति के लिए मानसिक क्रूरता कारित करता है जिसे उसने विवाह-विच्छेद की ईप्सा के आधार के रूप में साबित कर दिया है । यह अन्य व्यवहारिक समस्याओं के अलावा घरेलू हिंसा अधिनियम और भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क और 406 के अधीन मामले फाइल करके घोर उत्पीड़न और प्रतिष्ठा की हानि पहुंचाई ।

20. यह न्यायालय इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकता है कि विवाह अब असुधार्य रूप से टूट चुका है क्योंकि पक्षकार वर्ष 2002 से और पिछले 14 वर्षों से अलग रह रहे हैं, उनका रास्ता एक नहीं रह गया है और प्रशिक्षित मध्यस्थ तथा इस न्यायालय द्वारा भी माध्यस्थम् कार्यवाहियों में सुलह कराने की संभावना समाप्त हो गई है, इसलिए, इस न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच सुलह और वैवाहिक गृह की वापसी किन्ही भी परिस्थितियों में संभव नहीं है । इसलिए, यह न्यायालय अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल की वर्तमान अपील मंजूर करने की स्थिति में नहीं है किन्तु निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, विद्वान् जिला न्यायाधीश, सिरोही द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री कायम रखे जाने योग्य है ।

21. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी-पत्नी की वर्तमान अपील खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

22. अब प्रत्यर्थी-पति द्वारा अपीलार्थी-पत्नी को उसके और उसके पुत्र हर्ष के लिए संदत्त किया जाने वाला स्थायी भरण-पोषण का अधिनिर्णय करते हुए, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति-सुभाष द्वारा अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल को स्वयं के भरण-पोषण और उनके पुत्र हर्ष के भरण-पोषण जिसका जन्म विवाह के बाद हुआ, के लिए संदत्त की जाने वाली 20 लाख रुपए की राशि का अधिनिर्णय करने के लिए इसे समुचित समझा है । 20 लाख रुपए की उक्त धनराशि आज की तारीख से तीन माह के भीतर प्रति 10 लाख की पृथक् एफ. डी. आर. के द्वारा संदत्त करनी होंगी, जिसमें एक अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल और पुत्र हर्ष के संयुक्त नाम में और दूसरी एफ. डी. आर. में हर्ष का नाम प्रथम और अपीलार्थी-पत्नी-डिंपल के नाम में होंगी । उक्त एफ. डी. आर. पांच वर्षों के लिए होंगी और उस समय पुत्र (हर्ष) 2020 में वयस्क हो जाएगा क्योंकि उसका जन्म 22 फरवरी, 2002 को हुआ था । इन एफ. डी. आर. की परिपक्वता मूल्य एफ. डी. आर. के प्रथम धारक के नाम में चैकों द्वारा संदत्त की जाएगी । मूल एफ. डी. आर. को पति-अपीलार्थी को सौंपेगा और उसकी छायाप्रति तीन महीने के भीतर इस न्यायालय में प्रत्यर्थी पति द्वारा रिपोर्ट अनुपालन के साथ फाइल की जाए । उक्त एफ.डी.आर. देने के उपरांत, अपीलार्थी संदत्त किए जा रहे मासिक भरण-भोषण संदाय बंद हो जाएगा और अपीलार्थी और उसका पुत्र बैंक से पूर्वोक्त एफ. डी. आर. के ब्याज को निकाले और उसे अपने स्वयं के भरण-पोषण पर खर्च करे ।

23. पूर्वोक्त निदेशों के साथ, वर्तमान अपील खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की प्रति संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

प्रति-दावा खारिज किया गया ।

मही./क.

मस्तू देवी और अन्य

बनाम

चेत राम और अन्य

तारीख 3 मार्च, 2016

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65] – द्वितीय अपील – प्रश्नगत स्थावर सम्पत्ति में प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करना – प्रतिकूल कब्जे के लिए विधि में विहित अवयवों को पूरा नहीं करना – अर्थात् उस सम्पत्ति में निरन्तर, निर्बाध, खुला, शान्तिपूर्ण और अनन्य तौर से कम से कम 12 वर्ष तक कब्जा बनाए रखना – अभिलेखों में मात्र सह-अंशधारी अभिलिखित होना – यदि कोई व्यक्ति किसी स्थावर सम्पत्ति पर प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से कब्जे सहित स्वामी होने का दावा करता है तो उसे यह साबित करना होगा कि वह उस सम्पत्ति पर निरन्तर, निर्बाध, खुला, शान्तिपूर्ण और अनन्य तौर से कम से कम 12 वर्षों से उस सम्पत्ति पर कब्जा बनाए हुए हैं अन्यथा प्रतिकूल कब्जे का दावा अमान्य होगा ।

वर्तमान लम्बित वाद में विवाद की विषयवस्तु, ग्राम टीकरी, हदबस्त संख्या 40, इलाकुआ मूवी सेरी, तहसील चचियोट, जिला मंडी में स्थित खेवट सं. 49, खतौनी सं. 85, खसरा सं. 699, 705, 711, 707, 715, 716, 724, 726, 730, 737, 743, 747, 782, 787, 790, 792, 794, 797, 800, 805, 809, 804, 814, 816, 819, 821, 823, 825, 827, 830, 836, 838, 840, 841, 843, 848, 852, 875, 884 कीटा 39 माप 15-1-18 बीघा में प्रविष्ट भूमि और खेवट सं. 49, खतौनी सं. 87, खसरा सं. 822, माप 0-8-19 में प्रविष्ट भूमि है । वादियों ने स्वयमेव को वाद भूमि का कब्जे सहित अनन्य स्वामियों के रूप में दावा किया है । अपने पक्षकथन के इस भाग को सिद्ध करने के लिए उन्होंने वर्ष 1991-92 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियों, प्रदर्श पी. ए. का अवलंब लिया है । वादियों का पक्षकथन यह है कि वे प्रतिवादियों और उनके हित-पूर्वाधिकारियों की जानकारी और नोटिस में अक्तूबर, 1982 से वाद भूमि के अनन्य खुला,

शान्तिपूर्ण, निरन्तर, प्रतिकूल, निर्बाध और सार्वभौमिक कब्जे में है । इसलिए, वाद भूमि से प्रतिवादियों की बेदखली के लिए पूर्ण अभिवचन करते हुए, यह दावा किया गया है कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से हक अर्जित कर लिया है । वर्ष 1995-96 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियां प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से डी. डब्ल्यू. 1/जी जो प्रतिवादियों को वाद भूमि के कब्जे सहित सह-स्वामियों के रूप में दर्शित करता है, गलत और अविधिमान्य होना कथित है, अतएव, यह अकृत और शून्य है । वादियों के अनुसार, प्रतिवादियों ने राजस्व अभिलेखों में इन प्रविष्टियों का असम्यक् लाभ उठाते हुए, वाद भूमि में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था । अतएव, इस प्रभाव की घोषणा के लिए कि वादियों ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि में हक अर्जित कर लिया है और इस प्रकार वे अब उसके पूर्ण स्वामी हो गए हैं । राजस्व अभिलेखों में इसके प्रतिकूल प्रविष्टियां गलत, अवैध, असत्य और आरम्भतः शून्य हैं । इसके अतिरिक्त, वाद भूमि के ऊपर वादियों के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री की भी ईप्सा की गई है । प्रतिवादियों ने आरम्भ में वाद का विचारण करने और ग्रहण करने और उसे बनाए रखने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के बारे में आक्षेप उद्भूत किया है और यह कि वादियों के पास वाद फाइल करने के लिए कोई प्रवर्तनीय वाद हेतुक और सुने जाने का अधिकार नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों का मूल्यांकन करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के पूर्ण स्वामी हो गए हैं । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सिविल न्यायालय को वाद ग्रहण करने और विचारण करने की अधिकारिता है और यह कि वादियों के पास वाद फाइल करने के लिए प्रवर्तनीय वाद हेतुक और सुने जाने का अधिकार नहीं है, इसलिए, न केवल वाद की घोषणा के अनुतोष, जैसी कि ईप्सा की गई है अपितु व्यादेश के लिए भी डिक्री की जाती है । तथापि, प्रतिवादियों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, विद्वान् जिला न्यायाधीश, मंडी के न्यायालय में एक अपील फाइल की । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अपील मंजूर कर ली थी और आरम्भ में ही, जैसा कि इंगित किया गया है, वाद खारिज कर दिया था । वर्तमान अपील में, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा इस प्रकार पारित निर्णय

और डिक्री को ही इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है, अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर कि वादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की त्रुटिपूर्ण तरीके से उपेक्षा की गई है और उसके प्रतिकूल अभिलिखित निष्कर्ष अनुमानों और कल्पनाओं पर आधारित है । साक्ष्य, जो जमाबंदी प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जी के माध्यम से अभिलेख पर लाए गए हैं उनका गलत परिशीलन और गलत निर्वचन किया जाना अभिकथित किया गया है । दूसरी ओर, जमाबंदी प्रदर्श पी. ए. और प्रदर्श पी. बी. में राजस्व प्रविष्टियों की त्रुटिपूर्ण तरीके से अवहेलना की गई है । वादियों के अनुसार, यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य था कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि में हक अर्जित कर लिया था, तथापि, उनकी त्रुटिपूर्ण तरीके से उपेक्षा की गई है, जैसा कि आरम्भ में ही इंगित किया गया है । इससे व्यथित होकर वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा यह द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – पूर्वोक्त विधि के सारवान् प्रश्नों के आमुख पर ही यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि वे वादियों द्वारा उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् के उसी संव्यवहार की सीमा के बारे में चुनौतीधीन निर्णय की वैधता और विधिमान्यता से ही संबंधित है क्योंकि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने इस प्रकार उद्भूत अभिवाक् पर अविश्वास किया, प्रथमतः, यह साबित करने के लिए तर्कपूर्ण विधिक और स्वीकार्य साक्ष्य की अपेक्षा करते हुए कि वाद भूमि के ऊपर उनका कब्जा पिछले 12 वर्षों की अवधि से वास्तविक, सार्वभौमिक, अनन्य और निरन्तर बना हुआ है और यह भी कि उस समय से प्रारम्भ होकर 12 वर्ष की अवधि हो गई है और द्वितीयतः यह कि वाद भूमि पर सह-अंशधारियों की हैसियत में कब्जा होने के नाते वादी वाद भूमि पर अपने अनन्य कब्जे का दावा नहीं कर सकते हैं क्योंकि वाद भूमि पर उनका कब्जा प्रत्येक और प्रत्येक सह-अंशधारी की ओर से था । गुणागुणों के संविवाद पर विचार करने के पूर्व, इस प्रक्रम पर सुस्थिर विधि के अनुसार, वादी इस प्रभाव की घोषणा की ईप्सा नहीं कर सकता है कि उसने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि में हक अर्जित कर लिया है । यदि वह वाद भूमि के कब्जे में है तो सही स्वामी द्वारा उसके विरुद्ध फाइल प्रश्नगत भूमि के कब्जे की डिक्री के लिए वाद की दशा में, प्रतिरक्षा में ऐसा अभिवाक् उद्भूत कर सकता है । अब, यदि वर्तमान मामले पर विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि वाद भूमि, दोनों ओर के पक्षकारों के संयुक्त स्वामित्व में अभिलिखित है । वर्ष 1983-84 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी. बी.

और वर्ष 1991-92 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी. ए. जिन्हें स्वयं वादियों द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है, को इस संबंध में, विचार में लिया जा सकता है । निस्संदेह, इन जमाबंदियों में वादी, वाद भूमि के कब्जे में दर्शित किए गए हैं । तथापि, 12 वर्षों की कानूनी अवधि पूरी नहीं होती है क्योंकि इन दस्तावेजों में प्रविष्टियों से मात्र यह सिद्ध होता है कि वे लगभग 8-9 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे में हैं । अभिवचनों में भी उन्होंने स्वयमेव ही वर्ष 1982 से वाद भूमि के अनन्य कब्जे में होने का दावा किया है । यदि इस अवधि पर भी सही तौर पर विश्वास कर लिया जाता है तो भी राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों के अनुसार, वे वर्ष 1991-92 तक लगभग 10 वर्षों से उसके कब्जे में हैं । उन प्रविष्टियों के पश्चात् चकबंदी के दौरान उनमें परिवर्तन हुए और वाद भूमि क्रमशः अंशधारियों के बीच आबंटित हुआ । उन्हें चकबंदी स्टाफ द्वारा कब्जे भी प्रदान किए गए थे और तद्नुसार, अधिकारों के अभिलेख अर्थात् वर्ष 1995-96 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियां भी अभिलिखित की गई थीं । मामले के इस पहलू को सिद्ध करने के लिए प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य में जमाबंदियों प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ई और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जी की प्रतिलिपियां प्रस्तुत की गई हैं । इसलिए, वादियों द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत राजस्व अभिलेखों से उनके प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् सिद्ध नहीं होता है । यह सत्य है कि श्री लालचंद, वादियों में से एक, ने अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित होते हुए यह कथन किया है कि वे अक्तूबर, 1982 से वाद भूमि के कब्जे में हैं और इसी प्रकार का बयान अभि. सा. 2 श्री खीमा राम ने भी दिया है, तथापि, यह विश्वास करना कठिन है कि वाद संस्थित किए जाने तक यह वादी ही हैं जो वाद भूमि के कब्जे में थे । साक्ष्यों के अनुसार, जो प्रतिवादियों में से एक, प्रतिवादी साक्षी 1 मोहर सिंह के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलिखित किया गया था, उस क्षेत्र में चकबंदी के दौरान वाद भूमि का विभाजन हुआ था जहां वह स्थित था और अपने अंश की सीमा तक प्रत्येक अंशधारियों को आबंटित हुआ था और वर्ष 1995 से वे चकबंदी के दौरान उन्हें आबंटित क्रमशः अपने अंशों के कब्जे में है । प्रतिवादी साक्षी 1 ने भी न्यायालय के समक्ष यह कथन किया है कि उसने भी चकबंदी करने वाले स्टाफ के समक्ष वाद भूमि में से अपने अंश का बंटवारा करने के लिए एक आवेदन किया था और उसके आवेदन पर वाद भूमि विभाजित हुई थी । निस्संदेह, एक प्रक्रम पर उसने यह कथन किया है कि वादियों को वाद भूमि से राजस्व स्टाफ द्वारा बेकब्जा किया

गया था और इसका कब्जा उसे प्रदान किया गया था, तथापि, उसी समय उसने यह भी कथन किया था कि सह-अंशधारियों के कब्जे में जो भी भूमि थी उसका कब्जा उन्हें राजस्व स्टाफ द्वारा प्रदान कर दिया गया था । तथापि, यह तथ्य शेष रह जाता है कि उसके परिसाक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि उस क्षेत्र में किए गए बन्दोबस्त के दौरान वाद भूमि का विभाजन हुआ था और इसके विभाजन पर वाद भूमि का कब्जा क्रमशः सह-अंशधारियों को प्रदान किया गया था । प्रतिवादी साक्षी 2 देवी राम ने भी प्रतिवादियों के इस अभिवाक् को सिद्ध किया है कि वाद भूमि का विभाजन चकबन्दी कार्यवाहियों के दौरान हुआ था और इसका कब्जा सह-अंशधारियों को दिया गया था । यह सत्य है कि इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में, 15-16 वर्षों से वाद भूमि पर वादियों के कब्जे को स्वीकार किया है, तथापि, वर्ष 1995 में वे चकबन्दी कार्यवाहियों और वाद भूमि के कब्जे में दोनों ओर के पक्षकारों को दर्शित करते हुए राजस्व अभिलेख में की गई प्रविष्टियों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकालना समुचित नहीं होगा कि वादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि वे 12 वर्षों से अधिक अवधि से वाद भूमि के अनन्य कब्जे में होने के नाते उसके स्वामी हो गए हैं । इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन करने पर, मात्र एक ही निष्कर्ष निकलता है कि वाद के पक्षकार, वाद भूमि के सह-अंशधारी हैं । निस्संदेह, वाद भूमि वर्ष 1995 में हुए चकबंदी कार्यवाहियों के ठीक पूर्व वादियों के कब्जे में थी, तथापि, कोई भी विधिक और स्वीकार्य साक्ष्य नहीं है कि उनका कब्जा प्रतिकूल हो गया था और वाद भूमि में उनका हक पुनः स्थापित हो गया था । इसलिए, वर्तमान मामला ऐसा मामला है जहां यह समुचित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वाद भूमि के ऊपर उनका कब्जा प्रत्येक और प्रत्येक अंशधारियों की ओर से था । अतएव, वे इस प्रभाव की घोषणा करने की ईप्सा नहीं कर सकते हैं कि वे प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के स्वामी हो गए हैं । परिणामतः, वादी इस प्रभाव की घोषणा करने की ईप्सा करने के हकदार नहीं हैं कि वे वाद भूमि के कब्जे में हैं और उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से, उनमें हक अर्जित कर लिया है । अतएव, वे व्यादेश की डिक्री पाने के भी हकदार नहीं हैं । इसलिए, विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालते हुए सही ही वाद खारिज किया है कि वादी वादपत्र में उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को साबित करने में असफल रहे हैं । (पैरा 14, 15, 17, 18, 19, 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	एच. एल. जे. 2016 (हिमाचल प्रदेश) : **श्री सोनम अंगरूप** बनाम **श्री खुब राम और अन्य** ;	16
[2014]	(2014) 1 एस. सी. सी. 669 : **गुरुद्वारा साहिब** बनाम **ग्राम पंचायत, ग्राम सिरथाला** ;	13,15
[2001]	ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 700 : **बालकृष्ण** बनाम **सत्य प्रकाश और अन्य** ;	20
[1971]	ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 376 : **महाराजधिराज, बर्दवान, उदय चन्द महताब चन्द** बनाम **सुबोध गोपाल बोस और अन्य** ।	20

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की नियमित द्वितीय अपील सं. 505.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	श्री सुनील मोहन गोयल, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 1 से 3, 5 और 7 से 14 की ओर से	श्री जी. आर. पाल्सारा, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 6(क) से 6(घ) की ओर से	एकपक्षीय

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी – वादी, इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील में वादी है, वे विद्वान् जिला न्यायाधीश, मंडी द्वारा 2000 की सिविल अपील सं. 21 में पारित तारीख 5 सितम्बर, 2002 के निर्णय और डिक्री से व्यथित हैं । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने विद्वान् उप-न्यायाधीश, प्रथम श्रेणी, न्यायालय सं. 1, मंडी द्वारा 1996 की सिविल वाद सं. 323 में पारित निर्णय और डिक्री को उलटते हुए अपील मंजूर कर ली थी और यह घोषणा करना मंजूर नहीं किया था कि वादी, वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी हैं और यह भी कि प्रत्यर्थियों, जिन्हें इसमें इसके पश्चात् प्रतिवादियों कहा गया है, को उसके कब्जे सहित सह-स्वामियों के रूप में दर्शित करते हुए, राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियां गलत और अवैध हैं, अतएव, यह उन

पर आबद्धकर नहीं हैं । इस प्रकार, वाद खारिज कर दिया गया था । वादियों को प्रतिवादियों के विरुद्ध व्यादेश की डिक्री पाने का हकदार भी अभिनिर्धारित नहीं किया गया था ।

2. वर्तमान लम्बित वाद में विवाद की विषयवस्तु, ग्राम टीकरी, हदबस्त संख्या 40, इलाकुआ मूवी सेरी, तहसील चचियोट, जिला मंडी में स्थित खेवट सं. 49, खतौनी सं. 85, खसरा सं. 699, 705, 711, 707, 715, 716, 724, 726, 730, 737, 743, 747, 782, 787, 790, 792, 794, 797, 800, 805, 809, 804, 814, 816, 819, 821, 823, 825, 827, 830, 836, 838, 840, 841, 843, 848, 852, 875, 884 कीटा 39 माप 15-1-18 बीघा में प्रविष्ट भूमि और खेवट सं. 49, खतौनी सं. 87, खसरा सं. 822, माप 0-8-19 में प्रविष्ट भूमि है ।

3. वादियों ने स्वयंमेव को वाद भूमि का कब्जे सहित अनन्य स्वामियों के रूप में दावा किया है । अपने पक्षकथन के इस भाग को सिद्ध करने के लिए उन्होंने वर्ष 1991-92 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियों, प्रदर्श पी. ए. का अवलंब लिया है । वादियों का पक्षकथन यह है कि वे प्रतिवादियों और उनके हित-पूर्वाधिकारियों की जानकारी और नोटिस में अक्तूबर, 1982 से वाद भूमि के अनन्य खुला, शान्तिपूर्ण, निरन्तर, प्रतिकूल, निर्बाध और सार्वभौमिक कब्जे में है । इसलिए, वाद भूमि से प्रतिवादियों की बेदखली के लिए पूर्ण अभिवचन करते हुए, यह दावा किया गया है कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से हक अर्जित कर लिया है । वर्ष 1995-96 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियां प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से डी. डब्ल्यू. 1/जी जो प्रतिवादियों को वाद भूमि के कब्जे सहित सह-स्वामियों के रूप में दर्शित करता है, गलत और अविधिमान्य होना कथित है, अतएव, यह अकृत और शून्य है । वादियों के अनुसार, प्रतिवादियों ने राजस्व अभिलेखों में इन प्रविष्टियों का असम्यक् लाभ उठाते हुए, वाद भूमि में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था । अतएव, इस प्रभाव की घोषणा के लिए वाद कि वादियों ने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि में हक अर्जित कर लिया है और इस प्रकार वे अब उसके पूर्ण स्वामी हो गए हैं । राजस्व अभिलेखों में इसके प्रतिकूल प्रविष्टियां गलत, अवैध, असत्य और आरम्भतः शून्य है । इसके अतिरिक्त, वाद भूमि के ऊपर वादियों के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करने के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री की भी ईप्सा की गई है ।

4. प्रतिवादियों ने आरम्भ में वाद का विचारण करने और ग्रहण करने और उसे बनाए रखने की सिविल न्यायालय की अधिकारिता के बारे में आक्षेप उद्भूत किया है और यह कि वादियों के पास वाद फाइल करने के लिए कोई प्रवर्तनीय वाद हेतुक और सुने जाने का अधिकार नहीं है । गुणागुणों पर, इस बात से इनकार किया गया है कि वादी अक्तूबर, 1982 से वाद भूमि के कब्जे सहित अनन्य स्वामी है । यह निवेदन किया गया कि चूंकि, वाद भूमि, सह-अंशधारियों की हैसियत में वादियों के कब्जे में थी, इसलिए, उसके ऊपर उनका कब्जा प्रत्येक सह-अंशधारी की ओर से था । अब, उस क्षेत्र में चकबन्दी कार्यवाहियों के दौरान विभाजन हो गया है जहां वाद भूमि स्थित है इसलिए, प्रत्येक अंशधारी को विभाजन में आबंटित भूमि का कब्जा दे दिया गया है । राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियां, वादियों और प्रतिवादियों को वाद भूमि के संयुक्त स्वामियों के रूप में दर्शित किया गया है जो सही है, अतएव इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है । इसलिए, वाद खारिज करने की ईप्सा की गई है ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर, निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

(1) क्या वादी प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के पूर्ण स्वामी हो गए हैं, जैसा कि अभिकथित है ?

(2) यदि विवाद्यक सं. 1 साबित हो जाता है तो क्या इस प्रभाव के प्रतिकूल राजस्व प्रविष्टियां सही होने के लिए दायी हैं ?

(3) क्या वादी व्यादेश का अनुतोष पाने के हकदार हैं, जैसी कि प्रार्थना की गई है ?

(4) क्या इस न्यायालय को वाद ग्रहण करने और विचारण करने की अधिकारिता नहीं है ?

(5) क्या वाद वैधतः सक्षम और कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(6) क्या वादियों को वर्तमान वाद फाइल करने के लिए सुने जाने का अधिकार नहीं है ?

(7) क्या वादियों को वर्तमान वाद फाइल करने के लिए कोई प्रवर्तनीय वाद हेतुक नहीं है ?

(8) अनुतोष ।

6. वादियों ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए अभि. सा. 2 खीमा राम की परीक्षा की है । वादियों में से एक श्री लाल चन्द, मृतक वादी सं. 1 अल्मू का विधिक प्रतिनिधि भी अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ । वादियों की ओर से वर्ष 1991-92 के लिए खतौनी इस्तेमाल की प्रतिलिपि प्रदर्श पी. ए. और वर्ष 1983-84 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि प्रदर्श पी. बी. का भी अवलंब लिया गया ।

7. दूसरी ओर, प्रतिवादियों ने श्री देवी राम, प्रतिवादी साक्षी 2 की भी परीक्षा की है । प्रतिवादी सं. 3 श्री मोहर सिंह भी प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ । इसके अतिरिक्त, उनकी ओर से वर्ष 1995-96 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जी का अवलंब लिया गया है ।

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों का मूल्यांकन करते हुए, विवाद्यक सं. 1 से 3 का उत्तर वादियों के पक्ष में देते हुए, यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी, प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के पूर्ण स्वामी हो गए हैं । यह अभिनिर्धारित करते हुए कि सिविल न्यायालय को वाद ग्रहण करने और विचारण करने की अधिकारिता है और यह कि वादियों के पास वाद फाइल करने के लिए प्रवर्तनीय वाद हेतुक और सुने जाने का अधिकार नहीं है, विवाद्यक सं. 4 से 7 के उत्तर प्रतिवादियों के विरुद्ध दिए जाते हैं इसलिए, विवाद्यक सं. 1 से 3 पर निकाले गए निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, वाद की न केवल घोषणा के अनुतोष, जैसी कि ईप्सा की गई है अपितु व्यादेश के लिए भी डिक्री की जाती है ।

9. तथापि, प्रतिवादियों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर, विद्वान् जिला न्यायाधीश, मंडी के न्यायालय में एक अपील फाइल की । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करते हुए और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, अपील मंजूर कर ली थी और आरम्भ में ही, जैसा कि इंगित किया गया है, वाद खारिज कर दिया था ।

10. वर्तमान अपील में, विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा इस प्रकार पारित निर्णय और डिक्री को ही इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई है, अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर कि वादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की

त्रुटिपूर्ण तरीके से उपेक्षा की गई है और उसके प्रतिकूल अभिलिखित निष्कर्ष अनुमानों और कल्पनाओं पर आधारित हैं । साक्ष्य, जो जमाबंदी प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जी के माध्यम से अभिलेख पर लाए गए हैं उनका गलत परिशीलन और गलत निर्वचन किया जाना अभिकथित किया गया है । दूसरी ओर, जमाबंदी प्रदर्श पी. ए. और प्रदर्श पी. बी. में राजस्व प्रविष्टियों की त्रुटिपूर्ण तरीके से अवहेलना की गई है । वादियों के अनुसार, यह सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य था कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि में हक अर्जित कर लिया था, तथापि, उनकी त्रुटिपूर्ण तरीके से उपेक्षा की गई है, जैसा कि आरम्भ में ही इंगित किया गया है ।

11. यह अपील निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्नों पर स्वीकार की गई है :–

> "1. क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को उलटते हुए, यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि अपीलार्थी प्रतिकूल कब्जे को साबित करने में असफल रहे हैं, विनिर्दिष्टतया तब जब प्रतिवादियों में से एक साक्षी अर्थात् प्रतिवादी साक्षी 2 ने पिछले 15-16 वर्षों से विवादित भूमि पर अपीलार्थियों का कब्जा स्वीकार कर लिया था ?
>
> 2. क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय, प्रतिकूल कब्जे के संबंध में अभिवचनों पर विचार नहीं करने में सही था और क्या यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि अपीलार्थी, प्रतिवादियों की पूर्ण बेदखली और वाद भूमि पर अपने प्रतिकूल कब्जे को साबित करने में असफल रहे हैं न ही उस प्रभाव का कोई अभिवचन किए हैं ?"

12. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री सुनील मोहन गोयल ने यह जोरदार दलील दी है कि वादियों ने सफलतापूर्वक अभिवचन किया है और यह साबित किया है कि वे प्रतिवादियों की पूर्ण बेदखली करते हुए, वर्ष 1982 से वाद भूमि के कब्जे में हैं । यह भी कि प्रतिवादियों के वाद भूमि के संयुक्त स्वामी होने के बावजूद उनमें उनके अधिकार, हक और हित वादियों के कारण समाप्त हो गए हैं क्योंकि वे सभी प्रकार से उसके निरन्तर, निर्बाध और शांतिपूर्ण कब्जे में बने हुए हैं । इसलिए, विद्वान्

विचारण न्यायालय ने सही ही वाद की डिक्री की है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित सकारण निर्णय को उलटते हुए, अभिकथित तौर पर विधिक और तथ्यतः त्रुटि कारित की है । इसलिए, श्री गोयल के अनुसार, इस अपील में चुनौतीधीन निर्णय और डिक्री विधितः और तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

13. दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल श्री जी. एल. पाल्सारा ने यह तर्क दिया कि **गुरुद्वारा साहिब** बनाम **ग्राम पंचायत, ग्राम सिरथाला**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, वादी प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् उद्भूत नहीं कर सकते हैं और यह प्रतिवादियों के अलावा हैं, जिन्होंने अपनी प्रतिरक्षा में ऐसे अभिवाक् उद्भूत कर सकते हैं । श्री पाल्सरा के अनुसार, अन्यथा भी वादियों को वाद भूमि के कब्जे सहित संयुक्त स्वामी होने के नाते यह दावा करना मंजूर नहीं किया जा सकता है कि वे प्रतिवादियों के अपवर्जन में वाद भूमि के कब्जे सहित स्वामी हैं क्योंकि श्री पाल्सरा के अनुसार, इस सुस्थिर विधिक प्रतिपादना को ध्यान में रखते हुए कि संयुक्त भूमि में सह-अंशधारी का कब्जा प्रत्येक और प्रत्येक सह-अंशधारी की ओर से होता है । जमाबंदियों में प्रविष्टियों प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ई और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जी का अवलंब लेते हुए, श्री पाल्सारा ने यह तर्क दिया कि वाद के पक्षकारों को उस क्षेत्र में जहां वाद भूमि स्थित है, में किए गए बंदाबस्त के दौरान हुए विभाजन में उन्हें आबंटित अपने अंश की सीमा तक वाद भूमि के कब्जे के बारे में वाद करने का अधिकार होता है । इस अपील को खारिज करने की ईप्सा की गई है ।

14. पूर्वोक्त विधि के सारवान् प्रश्नों के आमुख पर ही यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि वे वादियों द्वारा उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् के उसी संव्यवहार की सीमा के बारे में चुनौतीधीन निर्णय की वैधता और विधिमान्यता से ही संबंधित है क्योंकि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने इस प्रकार उद्भूत अभिवाक् पर अविश्वास किया, प्रथमतः, यह साबित करने के लिए तर्कपूर्ण विधिक और स्वीकार्य साक्ष्य की अपेक्षा करते हुए कि वाद भूमि के ऊपर उनका कब्जा पिछले 12 वर्षों की अवधि से वास्तविक, सार्वभौमिक, अनन्य और निरन्तर बना हुआ है और यह भी कि

---

[1] (2014) 1 एस. सी. सी. 669.

उस समय से प्रारम्भ होकर 12 वर्ष की अवधि हो गई है और द्वितीयतः यह कि वाद भूमि पर सह-अंशधारियों की हैसियत में कब्जा होने के नाते वादी वाद भूमि पर अपने अनन्य कब्जे का दावा नहीं कर सकते हैं क्योंकि वाद भूमि पर उनका कब्जा प्रत्येक और प्रत्येक सह-अंशधारी की ओर से था ।

15. गुणागुणों के संविवाद पर विचार करने के पूर्व, इस प्रक्रम पर सुस्थिर विधि के अनुसार, वादी इस प्रभाव की घोषणा की ईप्सा नहीं कर सकता है कि वह प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि में हक अर्जित कर लिया है । यदि वह वाद भूमि के कब्जे में है तो सही स्वामी द्वारा उसके विरुद्ध फाइल प्रश्नगत भूमि के कब्जे की डिक्री के लिए वाद की दशा में, प्रतिरक्षा में ऐसा अभिवाक् उद्भूत कर सकता है । इस न्यायालय ने इस संबंध में समर्थन के लिए **गुरुद्वारा साहिब** बनाम **ग्राम पंचायत, ग्राम सिरथाला** (उपर्युक्त) वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय की ओर ध्यान आकर्षित किया है । इस निर्णय में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् का प्रयोग, तलवार के रूप में नहीं अपितु ढाल के रूप में किया जा सकता है ।

16. इसलिए, वादी, प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् उद्भूत करने के हकदार नहीं है । यद्यपि, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, वे ऐसे अभिवाक् उद्भूत करने के हकदार हैं, तथापि, उन्होंने इसे किसी भी प्रकार से साबित नहीं किया है । **श्री सोनम अंगरूप** बनाम **श्री खुब राम और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने माननीय उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा उद्घोषित विभिन्न न्यायिक उद्घोषणाओं पर विचार करने के पश्चात्, यह अभिनिर्धारित किया है कि अवयव, जो प्रतिकूल कब्जे से शांतिपूर्ण कब्जे में परिवर्तित हो सकता है अर्थात् कब्जा वास्तविक, खुला, सार्वभौमिक, अनन्य और 12 वर्षों से अधिक अवधि से निरन्तर बना हुआ है, उसका सफलतापूर्वक अभिवचन किया जाना चाहिए और इसे तर्कपूर्ण और विश्वसनीय साक्षियों द्वारा अभिलेख पर साबित किया जाना चाहिए ।

17. अब, यदि वर्तमान मामले पर विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि वाद भूमि, दोनों ओर के पक्षकारों के संयुक्त स्वामित्व में अभिलिखित है । वर्ष 1983-84 के लिए जमाबंदी प्रदर्श पी. बी. और वर्ष 1991-92 के

---

[1] एच. एल. जे. 2016 (हिमाचल प्रदेश).

लिए जमाबंदी प्रदर्श पी. ए. जिन्हें स्वयं वादियों द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है, को इस संबंध में, विचार में लिया जा सकता है । निस्संदेह, इन जमाबंदियों में वादी, वाद भूमि के कब्जे में दर्शित किए गए हैं । तथापि, 12 वर्षों की कानूनी अवधि पूरी नहीं होती है क्योंकि इन दस्तावेजों में प्रविष्टियों से मात्र यह सिद्ध होता है कि वे लगभग 8-9 वर्षों से वाद भूमि के कब्जे में हैं । अभिवचनों में भी उन्होंने स्वयंमेव ही वर्ष 1982 से वाद भूमि के अनन्य कब्जे में होने का दावा किया है । यदि इस अवधि पर भी सही तौर पर विश्वास कर लिया जाता है तो भी राजस्व अभिलेखों में प्रविष्टियों के अनुसार, वे वर्ष 1991-92 तक लगभग 10 वर्षों से उसके कब्जे में हैं । उन प्रविष्टियों के पश्चात् चकबंदी के दौरान उनमें परिवर्तन हुए और वाद भूमि क्रमशः अंशधारियों के बीच आबंटित हुआ । उन्हें चकबंदी स्टाफ द्वारा कब्जे भी प्रदान किए गए थे और तद्नुसार, अधिकारों के अभिलेख अर्थात् वर्ष 1995-96 के लिए जमाबंदी में प्रविष्टियां भी अभिलिखित की गई थीं । मामले के इस पहलू को सिद्ध करने के लिए प्रतिवादियों द्वारा साक्ष्य में जमाबंदियों प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ए से प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/ई और प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1/जी की प्रतिलिपियां प्रस्तुत की गई हैं ।

18. इसलिए, वादियों द्वारा साक्ष्य में प्रस्तुत राजस्व अभिलेखों से उनके प्रतिकूल कब्जे का अभिवाक् सिद्ध नहीं होता है । यह सत्य है कि श्री लाल चंद, वादियों में से एक, ने अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में उपस्थित होते हुए यह कथन किया है कि वे अक्तूबर, 1982 से वाद भूमि के कब्जे में हैं और इसी प्रकार का बयान अभि. सा. 2 श्री खीमा राम ने भी दिया है, तथापि, यह विश्वास करना कठिन है कि वाद संस्थित किए जाने तक यह वादी ही हैं जो वाद भूमि के कब्जे में थे ।

19. साक्ष्यों के अनुसार, जो प्रतिवादियों में से एक, प्रतिवादी साक्षी 1 मोहर सिंह के परिसाक्ष्य के माध्यम से अभिलिखित किया गया था, उस क्षेत्र में चकबंदी के दौरान वाद भूमि का विभाजन हुआ था जहां वह स्थित था और अपने अंश की सीमा तक प्रत्येक अंशधारियों को आबंटित हुआ था और वर्ष 1995 से वे चकबंदी के दौरान उन्हें आबंटित क्रमशः अपने अंशों के कब्जे में है । प्रतिवादी साक्षी 1 ने भी मेरे समक्ष यह कथन किया है कि उसने भी चकबंदी करने वाले स्टाफ के समक्ष वाद भूमि में से अपने अंश का बंटवारा करने के लिए एक आवेदन किया था और उसके आवेदन पर

वाद भूमि विभाजित हुई थी । निस्संदेह, एक प्रक्रम पर उसने यह कथन किया है कि वादियों को वाद भूमि से राजस्व स्टाफ द्वारा बेकब्जा किया गया था और इसका कब्जा उसे प्रदान किया गया था, तथापि, उसी समय उसने यह भी कथन किया था कि सह-अंशधारियों के कब्जे में जो भी भूमि थी उसका कब्जा उन्हें राजस्व स्टाफ द्वारा प्रदान कर दिया गया था । तथापि, यह तथ्य शेष रह जाता है कि उसके परिसाक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि उस क्षेत्र में किए गए बन्दोबस्त के दौरान वाद भूमि का विभाजन हुआ था और इसके विभाजन पर वाद भूमि का कब्जा क्रमशः सह-अंशधारियों को प्रदान किया गया था ।

20. प्रतिवादी साक्षी 2 देवी राम ने भी प्रतिवादियों के इस अभिवाक् को सिद्ध किया है कि वाद भूमि का विभाजन चकबन्दी कार्यवाहियों के दौरान हुआ था और इसका कब्जा सह-अंशधारियों को दिया गया था । यह सत्य है कि इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में, 15-16 वर्षों से वाद भूमि पर वादियों के कब्जे को स्वीकार किया है, तथापि, वर्ष 1995 में वे चकबन्दी कार्यवाहियों और वाद भूमि के कब्जे में दोनों ओर के पक्षकारों को दर्शित करते हुए राजस्व अभिलेख में की गई प्रविष्टियों को ध्यान में रखते हुए यह निष्कर्ष निकालना समुचित नहीं होगा कि वादी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि वे 12 वर्षों से अधिक अवधि से वाद भूमि के अनन्य कब्जे में होने के नाते उसके स्वामी हो गए हैं । इसलिए, **महाराजधिराज, बर्दवान, उदय चन्द महताब चन्द** बनाम **सुबोध गोपाल बोस और अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयसार, वादियों के मामले में, कोई सहायता नहीं करता है । **बालकृष्ण** बनाम **सत्य प्रकाश और अन्य**[2] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय का भी अवलंब लिया गया है । तथापि, इस निर्णय का निर्णयसार भी इस मामले में लागू नहीं होता है ।

21. इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन करने पर, मात्र एक ही निष्कर्ष निकलता है कि वाद के पक्षकार, वाद भूमि के सह-अंशधारी हैं । निस्संदेह, वाद भूमि वर्ष 1995 में हुए चकबंदी कार्यवाहियों के ठीक पूर्व वादियों के कब्जे में थी, तथापि, कोई भी विधिक और स्वीकार्य साक्ष्य नहीं है कि उनका कब्जा प्रतिकूल हो गया था और

---

[1] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 376.

[2] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 700.

वाद भूमि में उनका हक पुनः स्थापित हो गया था । इसलिए, वर्तमान मामला ऐसा मामला है जहां यह समुचित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि वाद भूमि के ऊपर उनका कब्जा प्रत्येक और प्रत्येक अंशधारियों की ओर से था । अतएव, वे इस प्रभाव की घोषणा करने की ईप्सा नहीं कर सकते हैं कि वे प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से वाद भूमि के स्वामी हो गए हैं ।

22. परिणामतः, वादी इस प्रभाव की घोषणा करने की ईप्सा करने के हकदार नहीं हैं कि वे वाद भूमि के कब्जे में हैं और उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से, उनमें हक अर्जित कर लिया है । अतएव, वे व्यादेश की डिक्री पाने के भी हकदार नहीं हैं । इसलिए, विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालते हुए सही ही वाद खारिज किया है कि वादी वादपत्र में उद्भूत प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को साबित करने में असफल रहे हैं ।

23. तद्नुसार, दोनों विधि के सारवान् प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है ।

24. इसमें उपर्युक्त, चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं हैं और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है । परिणामतः, विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है । तथापि, पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

मुल्ला

बनाम

किस्सो और अन्य

तारीख 16 मई, 2016

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 163] – वसीयत – प्रतिपादक द्वारा यह साबित नहीं किया जाना कि वसीयतकर्ता ने व्ययन करने की स्वस्थचित्त दशा में, विल की अन्तर्वस्तुओं को समझते हुए विल निष्पादित किया है – दो अनुप्रमाणक साक्षियों द्वारा भी विल के निष्पादन को साबित नहीं कराया जाना – विल की असलियत और सत्यता के बारे में संदेह उद्‌भूत होना – संदेहों का निवारण नहीं करना – यदि अभिलेख पर यह साबित नहीं किया जाता है कि वसीयतकर्ता ने विल को व्ययन करने की स्वस्थचित्त दशा में रहते हुए, उसकी अन्तर्वस्तुओं को और उसके परिणाम को समझते हुए तथा दो अनुप्रमाणक साक्षियों की उपस्थिति में निष्पादित की है तो ऐसे विल को संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई होना कहा जा सकता है और जब तक ऐसे उद्‌भूत संदेहों का निवारण प्रतिपादक द्वारा नहीं कर दिया जाता है तब तक ऐसे विल को असली और विधिमान्य होना अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है ।

वर्तमान मामले में, यह तथ्य प्रलक्षित होते हैं कि वादी ने प्रतिवादियों-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध यह घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश जारी करने के लिए एक वाद फाइल किया यह अभिकथन करते हुए कि वसीयतकर्ता मृतक चेत राम उसका असली चाचा था जो उसके साथ रहता था और वह उसकी देखभाल करता था और उसने मृतक चेत राम के जीवनकाल तक देखभाल की है । यह अभिकथित है कि मृतक चेत राम, मोहल घुन्देरा, परगना मंजीर, तहसील सलोनी, जिला चम्बा में स्थित खाता खतौनी सं. 20/22, माप 6-6 बीघा, खसरा सं. 282, 290, 295, 297, 306 और 314, कीटा 6 में समाविष्ट भूमि में से 2/3 हिस्से का स्वामी था और वादी के पक्ष में अपनी सम्पूर्ण चल और अचल सम्पत्ति की वसीयत करते हुए तारीख 8 अप्रैल, 1984 को वादी के पक्ष में एक विधिमान्य विल

निष्पादित की थी किन्तु राजस्व अधिकारी ने आक्षेपित विल को विचार में नहीं लिया और मृतक चेत राम की मृत्यु के पश्चात् उस सम्पत्ति के उत्तराधिकार का नामांतरण सं. 145 का अनुप्रमाणन वादी के पक्ष में नहीं किया और बराबर हिस्सों में वर्तमान प्रतिवादियों का नामांतरण आदेश अवैध, अकृत और शून्य है । यह अभिकथित है कि उसने प्रतिवादियों से अपने पक्ष में राजस्व प्रविष्टियों को सही करने का निवेदन किया किन्तु उन्होंने उसके निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया । वादी द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि उसे राजस्व अधिकारी द्वारा मृतक चेत राम की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के नामांतरण का अनुप्रमाणन करते समय आक्षेपित विल को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त युक्तियुक्त अवसर भी नहीं दिया गया था । इस प्रकार, वादी मुल्ला द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए यह वाद फाइल किया गया है । वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया और लिखित कथन फाइल करते हुए, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन, विबंधन, वाद हेतुक और वर्तमान प्ररूप में वाद कायम रखने इत्यादि से संबंधित प्रारम्भिक आक्षेप किया गया । गुणागुणों पर प्रतिवादियों ने वादपत्र में अन्तर्विष्ट अभिकथनों का खंडन किया । लड़ने वाले प्रतिवादियों द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि मृतक चेत राम, वादी के साथ ही प्रतिवादियों, माली, माधो, किस्सो और पोरखी का भी असली चाचा था । उन्होंने इस बात से जोरदार तरीके से इनकार किया कि मृतक चेत राम द्वारा वादी के पक्ष में तारीख 8 अप्रैल, 1984 का विल निष्पादित किया गया था । यह अभिकथित किया गया है कि आक्षेपित विल एक कूटरचित और बनावटी दस्तावेज है और यह कि मृतक चेत राम की सम्पत्ति के बारे में नामांतरण सं. 145 विधिमान्य तौर से प्रविष्ट किया गया है और वादी को आक्षेपित विल प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर देने के पश्चात् राजस्व अधिकारी द्वारा इसे अनुप्रमाणित किया गया था और जब वह आक्षेपित विल को प्रस्तुत करने में असफल रहा तो मृतक चेत राम की सम्पत्ति के बारे में नामांतरण को अनुप्रमाणित किया गया था, जो विधिमान्य और वैध है । अतएव, प्रतिवादियों ने वादी के दावे से इनकार किया और वाद खारिज किए जाने की प्रार्थना की । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया । उपर्युक्त से व्यथित होकर विद्वान् अपील न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की गई थी, जिसे भी खारिज कर दिया गया था । उपर्युक्त से व्यथित होकर द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में, जहां प्रतिवादियों ने अभिकथित विल की असलियत और सत्यता के बारे में, विनिर्दिष्ट आक्षेप किया है और यह अभिकथित किया है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए, एक काल्पनिक और कूटरचित दस्तावेज है तो वहां वादी पर इस धारणा को दूर करने का भार होता है कि वह यह साबित करे कि अभिकथित विल को वसीयतकर्ता द्वारा व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में रहते हुए निष्पादित किया गया है और विल की अन्तर्वस्तुओं को समझने के पश्चात् वसीयतकर्ता द्वारा उस पर हस्ताक्षर किए गए थे । किन्तु, वर्तमान मामले में, न्यायालय ने वादी के प्रत्येक साक्षियों के कथनों का कई अवसरों पर परिशीलन किया किन्तु इस बारे में, तनिक भी प्रत्याखान नहीं मिला कि वसीयतकर्ता, व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में था और वह विल के निष्पादन के समय विल के निष्पादन के परिणाम को समझने में समर्थ था । वादी के साक्षियों द्वारा किए गए कथनों के साथ ही अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्यों को सूक्ष्म रूप से उल्लिखित करने के पश्चात् इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वादी अपने पक्ष में मृतक चेत राम द्वारा विधिमान्य विल के निष्पादन को साबित करने में बुरी तरह से असफल रहा है, इस प्रकार, दोनों निचले न्यायालयों ने यह सही ही अभिनिर्धारित किया है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए, एक असली विल नहीं है । अब न्यायालय प्रतिवादी साक्षी 1 किस्सो द्वारा किए गए कथन पर विचार करता है, जहां उसने यह सुस्पष्टतः कथन किया है कि आक्षेपित विल एक कूटरचित दस्तावेज है क्योंकि वसीयतकर्ता चेत राम ने कभी भी वादी के पक्ष में विल निष्पादित नहीं किया था । लिखित कथन के परिशीलन से यह स्पष्टतः सुझाव मिलता है कि विल की असलियत के बारे में एक विनिर्दिष्ट आक्षेप किया गया है और इसे कूटरचित होना कहा गया है । अपने लिखित कथन में उसने इस बात से सुस्पष्टतः इनकार किया है कि मृतक चेत राम ने कभी भी कोई विल निष्पादित की थी अपितु इसके अलावा, उसने यह कथन किया कि वादी ने अपने पक्ष में अभिकथित निष्पादित विल के आधार पर नामांतरण के लिए आवेदन किया था किन्तु 7-8 अवसरों को देने के पश्चात् भी वह इसे प्रस्तुत करने में असफल रहा, इसलिए, नामांतरण उनके पक्ष में प्रविष्ट किया गया । यद्यपि, वादी द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा के परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि उसके कथन में भी कोई विरोधाभास था जो उसने अपनी मुख्य परीक्षा में किया था । इसके अलावा, इसके परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि

वह उस कथन पर कायम रहा जिसे उसने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान किया था । जैसा कि, उपर्युक्त उल्लिखित किया जा चुका है कि यद्यपि, सामान्यतया विल के निष्पादन और विधिमान्यता को साबित करने का भार प्रतिपादक पर होता है किन्तु यदि विरोधी पक्षकार द्वारा यह अभिकथित किया जाता है कि विल असली दस्तावेज नहीं है तो सबूत का भार उस व्यक्ति पर स्थानांतरित हो जाता है जो विल के बारे में अभिकथन करता है क्योंकि कूटरचित होने के नाते इसे साबित करना होता है । (पैरा 25, 26 और 27)

वर्तमान मामले में, प्रतिवादियों ने अभिकथित विल की असलियत के बारे में लिखित कथन फाइल करते हुए, विनिर्दिष्ट आक्षेप उद्‌भूत किया है । प्रतिवादी साक्षी 1 ने अपने कथन में यह सुस्पष्टतः कथन किया है कि मृतक चेत राम ने कभी भी वादी के पक्ष में कोई विल निष्पादित नहीं की थी और विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए एक कूटरचित और बनावटी दस्तावेज है जिसे वादी द्वारा मृतक चेत राम की मृत्यु के पश्चात् निष्पादित कराया गया था । अपने पूर्वोक्त कथन को सिद्ध करने के लिए, उसने यह उपदर्शित किया कि वर्तमान मामले में विल के निष्पादन के बारे में मजबूत संदेहास्पद परिस्थिति यह है कि प्रतिपादक अर्थात् वादी, आक्षेपित विल को मृतक चेत राम की संपदा के बारे में नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष प्रस्तुत करने में असफल रहा है, जिसने भी साक्ष्य प्रदर्श डी-1 दिया है, जो अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित हुआ है और जिससे यह सुझाव मिलता है कि वादी को राजस्व प्राधिकारियों के समक्ष विल, यदि कोई हो, जो मृतक चेत राम द्वारा उसके पक्ष में किया जाना अभिलिखित है, को कई अवसर देने के पश्चात् भी प्रस्तुत करने में असफल रहा, इस प्रकार, तद्‌नुसार, नामांतरण किया गया । प्रदर्श डी-1 से यह प्रकट होता है कि राजस्व प्राधिकारियों ने उस विल के आधार पर वाद भूमि के बारे में प्रथमदृष्ट्या वादी के पक्ष में नामांतरण प्रविष्ट किया था, किन्तु तारीख 29 फरवरी, 1996 के पश्चात् जब ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष उक्त नामांतरण अनुप्रमाणित होने के लिए आया तो वादी उस विल को ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष प्रस्तुत करने में असफल रहा । इसके पश्चात्, उसे विल प्रस्तुत करने के लिए तारीख 4 जून, 1996 को एक अन्य अवसर दिया गया था किन्तु वह पुनः विल को प्रस्तुत करने में असफल रहा । अभिलेखों से यह सुझाव मिलता है कि कई अवसर देने के बावजूद वादी विल को प्रस्तुत करने में असफल रहा और अतंतः तारीख 25

जुलाई, 1997 को अर्थात् लगभग एक वर्ष पश्चात् भी उसे अवसर दिया गया तब भी वादी तारीख 6 अगस्त, 1997 को ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ । उसे ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष विल प्रस्तुत करने के लिए कई अवसर अर्थात् तारीख 4 जून, 1996, तारीख 31 अगस्त, 1996, तारीख 25 सितम्बर, 1996 तारीख 27 नवम्बर, 1996, तारीख 30 अप्रैल, 1997, तारीख 16 मई, 1997, तारीख 12 जून, 1997, तारीख 16 जुलाई, 1997, तारीख 25 जुलाई, 1997 और अन्ततः तारीख 6 अगस्त, 1997 को अवसर दिया गया । इसलिए, मूल विल प्रस्तुत नहीं करने के अभाव में, मृतक चेत राम की संपदा के बारे में नामांतरण का अनुप्रमाणन, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के उपबंधों के अनुसरण में किया गया । प्रदर्श डी-1 के परिशीलन से इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि वादी को विल प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर देने के बावजूद वह ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष तारीख 6 अगस्त, 1997 तक कोई विल अभिलेख पर प्रस्तुत करने में असफल रहा था । यद्यपि, अभि. सा. 1 ने अपने कथन में यह कथन किया है कि उसने ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष आक्षेपित विल प्रस्तुत की थी । किन्तु इस कथन को किसी दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, प्रदर्श डी-1, जैसा कि उपर्युक्त निर्दिष्ट किया गया है, के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि वादी के कहने पर राजस्व प्राधिकारियों ने नामांतरण प्रविष्ट किया था किन्तु इसके पश्चात्, कई अवसर देने के बावजूद वह विल को अभिलेख पर प्रस्तुत करने में असफल रहा, अतएव, तद्नुसार, नामांतरण अनुप्रमाणित नहीं हुआ । इस प्रकार, पूर्वोक्त परिस्थितियों में, जहां राजस्व प्राधिकारियों द्वारा बुलाए जाने के पश्चात् लगभग एक वर्ष तक वादी विल प्रस्तुत करने में असफल रहा, से विल के निष्पादन के बारे में मजबूत संदेहास्पद परिस्थितियां उद्भूत होती हैं, इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों का यह जोरदार अभिकथन है कि वस्तुतः इस विल को वसीयतकर्ता अर्थात् चेत राम की मृत्यु के पश्चात् वादी द्वारा निष्पादित कराया गया था । दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, चाहे मौखिक या दस्तावेजी हो, के सम्पूर्ण और संयुक्त रूप से परिशीलन करने पर यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए मजबूत संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई हैं, जैसी कि इसमें उपर्युक्त चर्चा की गई है । इसके अतिरिक्त, वादी प्रतिवादियों की इस धारणा को दूर करने के लिए अभिलेख पर कोई भी

तर्कपूर्ण, विश्वसनीय, समुचित साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका है कि प्रश्नगत विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं है । इसके विपरीत, यदि प्रतिवादी साक्षी 1 द्वारा किए गए प्रत्याख्यान को दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1 के साथ परिशीलन किया जाए तो न्यायालय के विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रतिवादियों ने अपने सबूत के भार का निर्वहन किया है, यह साबित करने में कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है । (पैरा 29 और 30)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2005]	(2005) 1 एस. सी. सी. 40 : **दौलत राम और अन्य** बनाम **सोधा और अन्य** ;	28
[1964]	ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 529 : **शशि कुमार बनर्जी और अन्य** बनाम **सुबोध कुमार बनर्जी (अब मृत) और उसके पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** ;	13
[1959]	ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 446 : **एच. वेंकटचाला आयंगर** बनाम **बी. एन. तिम्मजम्मा और अन्य** ।	12,13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2005 की नियमित द्वितीय अपील सं. 65.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री एन. के. ठाकुर, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ सुश्री जमुना, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री आनन्द शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा – यह अपील अपीलार्थी-वादी द्वारा विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट, चम्बा, जिला चम्बा, हिमाचल प्रदेश द्वारा पारित तारीख 22 नवम्बर, 2004 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उन्होंने विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, चम्बा, जिला चम्बा द्वारा पारित तारीख 6 जुलाई, 2002 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दी थी जिसमें अपीलार्थी-वादी द्वारा फाइल घोषणा करने के लिए वाद

को खारिज कर दिया गया था ।

2. संक्षेप में, इसमें इसके पश्चात् पक्षकारों से अभिप्राय, विचारण न्यायालय में निर्दिष्ट पक्षकार से है ।

3. अभिलेखों से संक्षेप में यह तथ्य प्रलक्षित होते हैं कि वादी ने प्रतिवादियों-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध यह घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश जारी करने के लिए एक वाद फाइल किया कि यह अभिकथन करते हुए कि वसीयतकर्ता मृतक चेत राम उसका असली चाचा था जो उसके साथ रहता था और वह उसकी देखभाल करता था और उसने मृतक चेत राम के जीवनकाल तक देखभाल की है । यह अभिकथित है कि मृतक चेत राम, मोहल घुन्देरा, परगना मंजीर, तहसील सलौनी, जिला चम्बा में स्थित खाता खतौनी सं. 20/22, माप 6-6 बीघा, खसरा सं. 282, 290, 295, 297, 306 और 314, कीटा 6 में समाविष्ट भूमि (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वाद भूमि" कहा गया है) में से 2/3 हिस्से का स्वामी था और वादी के पक्ष में अपनी सम्पूर्ण चल और अचल सम्पत्ति की वसीयत करते हुए तारीख 8 अप्रैल, 1984 को वादी के पक्ष में एक विधिमान्य विल निष्पादित की थी किन्तु राजस्व अधिकारी ने आक्षेपित विल को विचार में नहीं लिया और मृतक चेत राम की मृत्यु के पश्चात् उस सम्पत्ति के उत्तराधिकार का नामांतरण सं. 145 का अनुप्रमाणन वादी के पक्ष में नहीं किया और बराबर हिस्सों में वर्तमान प्रतिवादियों का नामांतरण आदेश अवैध, अकृत और शून्य है । यह अभिकथित है कि उसने प्रतिवादियों से अपने पक्ष में राजस्व प्रविष्टियों को सही करने का निवेदन किया किन्तु उन्होंने उसके निवेदन पर कोई ध्यान नहीं दिया । वादी द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि उसे राजस्व अधिकारी द्वारा मृतक चेत राम की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के नामांतरण का अनुप्रमाणन करते समय आक्षेपित विल को प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त युक्तियुक्त अवसर भी नहीं दिया गया था । इस प्रकार, वादी मुल्ला द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध घोषणा और स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए यह वाद फाइल किया गया है ।

4. वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया और लिखित कथन फाइल करते हुए, आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन, विबंधन, वाद हेतुक और वर्तमान प्ररूप में वाद कायम रखने इत्यादि से संबंधित प्रारम्भिक आक्षेप किया गया । गुणागुणों पर प्रतिवादियों ने वादपत्र में अन्तर्विष्ट अभिकथनों का खंडन किया । लड़ने वाले प्रतिवादियों द्वारा यह अभिकथित किया गया

है कि मृतक चेत राम, वादी के साथ ही प्रतिवादियों, माली, माधो, किरसो और पोरखी का भी असली चाचा था । उन्होंने इस बात से जोरदार तरीके से इनकार किया कि मृतक चेत राम द्वारा वादी के पक्ष में तारीख 8 अप्रैल, 1984 का विल निष्पादित किया गया था । यह अभिकथित किया गया है कि आक्षेपित विल एक कूटरचित और बनावटी दस्तावेज है और यह कि मृतक चेत राम की सम्पत्ति के बारे में नामांतरण सं. 145 विधिमान्य तौर से प्रविष्ट किया गया है और वादी को आक्षेपित विल प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर देने के पश्चात् राजस्व अधिकारी द्वारा इसे अनुप्रमाणित किया गया था और जब वह आक्षेपित विल को प्रस्तुत करने में असफल रहा तो मृतक चेत राम की सम्पत्ति के बारे में नामांतरण को अनुप्रमाणित किया गया था, जो विधिमान्य और वैध है । अतएव, प्रतिवादियों ने वादी के दावे से इनकार किया और वाद खारिज किए जाने की प्रार्थना की ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"(1) क्या मृतक चेत राम ने वादी के पक्ष में तारीख 8 अप्रैल, 1984 को एक विधिमान्य और वैध विल निष्पादित की थी, जैसा कि अभिकथित है ?

(2) क्या वादी, स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए डिक्री पाने का हकदार है ?

(3) क्या वादी, अपने कार्य और आचरण द्वारा वाद फाइल करने से विबंधित है, जैसा कि अभिकथित है ?

(4) क्या वादी के पास वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक नहीं है ?

(4क) क्या मृतक चेत राम की संपदा के बारे में, पक्षकारों के पक्ष में अनुप्रमाणित नामांतरण सं. 145 गलत, अवैध और असत्य है, जैसा कि अभिकथित है ?

(5) अनुतोष ।"

6. विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 4 के सिवाय उपर्युक्त सभी विवाद्यकों को वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया और तद्नुसार, वाद खारिज कर दिया । उपर्युक्त से व्यथित होकर विद्वान् अपील न्यायालय के

समक्ष एक अपील फाइल की गई थी, जिसे भी खारिज कर दिया गया था ।

7. उपर्युक्त से व्यथित होकर द्वितीय अपील फाइल की गई । इस द्वितीय अपील को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न पर स्वीकार कर लिया गया था :–

> "क्या आक्षेपित निर्णय, मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन और गलत अर्थान्वयन के कारण दूषित है ?"

8. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

9. वर्तमान मामले में, अन्तर्वलित संविवाद, वादी अर्थात् मुल्ला के पक्ष में मृतक चेत राम द्वारा निष्पादित अभिकथित विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए की असलियत के बारे में है ।

10. विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए, जो वसीयतकर्ता मृतक चेत राम द्वारा वादी के पक्ष में निष्पादित होना अभिकथित है, के आधार पर वादी ने एक वाद फाइल किया जिसका वर्णन पहले ही उपर्युक्त किया जा चुका है, जिसमें वादी ने इस प्रभाव की घोषणा करने की ईप्सा करते हुए, विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश, चम्बा, जिला चम्बा के समक्ष फाइल की थी कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को वाद भूमि से संबंधित उसके पक्ष में मृतक चेत राम द्वारा सम्यक् रूप से निष्पादित किया गया था और वाद भूमि के बारे में पक्षकारों के पक्ष में अनुप्रमाणन नामांतरण सं. 145 को गलत, असत्य, अवैध घोषित किया जाए क्योंकि वह वादी पर आबद्धकर नहीं हैं और प्रतिवादियों को वाद भूमि में हस्तक्षेप करने से स्थायी तौर पर अवरुद्ध कर दिया जाए । दोनों निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है और इस प्रकार, इसे मृतक चेत राम का विधिमान्य और असली विल अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । जैसा कि इसमें उपर्युक्त प्रस्तुत सारवान् प्रश्न से प्रकट होता है, जिसके आधार पर वर्तमान अपील स्वीकार की गई है, एकमात्र प्रश्न जिसपर इस न्यायालय द्वारा विचार करना अपेक्षित है वह यह है कि "क्या निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन और गलत अर्थान्वयन के कारण दूषित समझा जा सकता है", इसका अभिप्राय यह है कि इस न्यायालय को लम्बित मामले के पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत मौखिक या दस्तावेजी

साक्ष्यों की परीक्षा करते हुए, पूर्वोक्त विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर देना अपेक्षित है ।

11. जैसा कि इसमें उपर्युक्त चर्चा की जा चुकी है, वादी इस आधार पर न्यायालय में आया था कि मृतक चेत राम ने तारीख 8 अप्रैल, 1984 को अपनी संपत्ति का उसके पक्ष में वसीयत करते हुए, एक विधिमान्य विल निष्पादित की थी, स्वीकृततः, इस बात को साबित करने का भार उसके ऊपर था कि प्रश्नगत विल, वसीयतकर्ता मृतक चेत राम द्वारा विधि के अनुसरण में उसके पक्ष में निष्पादित की गई थी ।

12. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विल की प्रकृति और इसे साबित करने के लिए सबूत का भार प्रतिपादक पर होता है और उस संबंध में, जिस तरीके का साक्ष्य अपेक्षित होता है उसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **एच. वेंकटचाला आयंगर** बनाम **बी. एन. तिम्मजम्मा और अन्य**[1] वाले मामले में पारित निर्णय में सम्यक् रूप से विहित किया गया है ।

13. **एच. वेंकटचाला आयंगर** (उपर्युक्त) वाले मामले में निर्धारित मार्गदर्शक सिद्धांतों को माननीय उच्चतम न्यायालय के सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा **शशि कुमार बनर्जी और अन्य** बनाम **सुबोध कुमार बनर्जी (अब मृत) और उसके पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य**[2] वाले मामले में पुनः दोहराया गया है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि :–

> "4. सिद्धांत, जो एक विल को साबित करने के लिए शासित करते हैं, सुस्थिर हैं (देखें – एच. वेंकटचाला आयंगर **बनाम** बी. एन. तिम्मजम्मा, [1959] 1 एस. सी. आर. 426 = ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 443 और रानी पूर्णिमा देवी **बनाम** खजेन्द्र नारायण देव, [1962] 3 एस. सी. आर. 195 = ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 567 वाले मामलों में विल को साबित करने का तरीका किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से भिन्न नहीं होता है सिवाय जब तक कि यह भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 द्वारा विल के मामले में विहित अनुप्रमाणन की विशेष अपेक्षा न हो । विल को साबित करने का भार प्रतिपादक पर होता है और विल का निष्पादन

---

[1] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 446.
[2] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 529.

संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होने के अभाव में, वसीयतकर्ता की वसीयती क्षमता और हस्ताक्षर के सबूत, जैसी कि विधि में अपेक्षित है, सबूत ही भार के निर्वहन के लिए पर्याप्त होते हैं । तथापि, जहां विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी होती हैं वहां प्रतिपादक को न्यायालय के समक्ष यह समाधान करते हुए स्पष्टीकरण करना होता है कि विल असली है । जहां केवियटकर्ता के बारे में, असम्यक् प्रभाव कपट और प्रपीड़न अभिकथित है तो वहां उसे साबित करने का भार उस पर होता है । यद्यपि, जहां ऐसे अभिवाक् नहीं होते हैं किन्तु परिस्थितियों से संदेह उद्भूत होते हैं वहां यह प्रतिपादक पर भार होता है कि वह इसकी असलियत के बारे में न्यायालय का समाधान करे । संदेहास्पद परिस्थितियां, निम्नलिखित रूप में हो सकती हैं जैसे – वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर की असलियत, वसीयतकर्ता के मस्तिष्क की दशा, विल का व्ययन सुसंगत परिस्थितियों के प्रकाश में अप्राकृतिक, असंभाव्य या अऋजु होने या विल से अन्य ऐसी परिस्थितियां दर्शित होती हैं कि वसीयतकर्ता का मस्तिष्क स्वतंत्र नहीं था । ऐसी दशा में, न्यायालय से स्वाभाविक रूप से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह सभी विधि-सम्मत संदेहों का अपने समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों से पूर्णतया समाधान करते हुए यह स्वीकार करे कि यह वसीयतकर्ता का अंतिम विल है । यदि स्वयं प्रतिपादक ने विल के निष्पादन में भाग लिया है जो उसे सारवान् फायदे प्रदत्त करता है, वह भी एक परिस्थिति होती है जिस पर विचार किया जाना चाहिए और प्रतिपादक से स्पष्ट और समाधानप्रद साक्ष्यों द्वारा ऐसे संदेहों का समाधान करना अपेक्षित होता है । यदि प्रतिपादक संदेहास्पद परिस्थितियों का समाधान करने में सफल होता है तो न्यायालय प्रोबेट मंजूर करेगा, यद्यपि, विल अस्वभाविक हो सकता है और इससे निकट संबंध पूर्णतया या भागतः समाप्त हो सकते हैं । इन सुस्थिर सिद्धांतों के प्रकाश में, हमें यह विचार करना चाहिए कि क्या अपीलार्थी यह सिद्ध करने में सफल हो गए हैं कि विल सम्यक् रूप से निष्पादित और अनुप्रमाणित है ।"

14. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया ।

15. अपीलार्थियों के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री एन. के. ठाकुर ने यह जोरदार तर्क दिया कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य हैं क्योंकि यह अभिलेख पर के

साक्ष्यों के साथ ही विधि के सही मूल्यांकन पर आधारित नहीं हैं । उन्होंने यह दलील दी कि अभिलेख पर के उपलब्ध सामग्री, यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त थी कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए, वसीयतकर्ता मृतक चेत राम द्वारा वादी के पक्ष में अपनी संपत्ति की वसीयत करते हुए निष्पादित एक विधिमान्य और असली दस्तावेज है । उन्होंने यह जोरदार तर्क दिया कि वर्तमान मामले में, प्रतिवादी यह साबित करने में बुरी तरह से असफल रहे हैं कि प्रश्नगत विल असली नहीं है और यह संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है । अपने तर्कों को सिद्ध करने के लिए, उन्होंने इस न्यायालय का ध्यान, इस अपील में लिए गए विभिन्न आधारों के साथ ही विचारण के समय निचले विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित कथन, जो संक्षिप्तता के कारण प्रस्तुत नहीं हुए हैं, की ओर आकर्षित किया है ।

16. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री आनन्द शर्मा ने दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय का समर्थन किया है और यह निवेदन किया है कि आक्षेपित निर्णयों के मूल परिशीलन से यह इंगित होता है कि वे अभिलेख पर पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के सही मूल्यांकन पर आधारित हैं । उन्होंने यह अभिवाक् किया कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को कभी भी मृतक चेत राम द्वारा निष्पादित नहीं किया गया था और मृतक चेत राम की संपत्ति को हड़पने के लिए ही वादी द्वारा यह कूटरचित और तुच्छ दस्तावेज तैयार किया गया था ।

17. श्री शर्मा ने बलपूर्वक यह दलील दी है कि अभिलेख पर मौखिक या दस्तावेजी रूप में पर्याप्त साक्ष्य हैं जिनसे यह उपदर्शित होता है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए एक कूटरचित और तुच्छ दस्तावेज है जो संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है । उन्होंने यह विनिर्दिष्टतः तर्क दिया है कि सहायक कलक्टर-II श्रेणी द्वारा वादी को सुनवाई के लिए विभिन्न अवसर देने के पश्चात् भी वादी अपने दावे को सिद्ध करने के लिए विल प्रस्तुत करने में असफल रहा कि मृतक चेत राम ने व्ययन करने के स्वस्थचित्त दशा में रहते हुए, वस्तुतः उसके पक्ष में विल निष्पादित की थी । श्री शर्मा ने अपने तर्कों के दौरान वादी के साक्षियों द्वारा किए गए कथन के साथ ही अभिलेख पर प्रस्तुत दस्तावेज के बारे में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए, यह दलील दी है कि वादी कोई भी ऐसा मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य अभिलेख पर प्रस्तुत करने में बुरी तरह से असफल रहा है जिनसे यह सुझाव मिलता है कि वसीयतकर्ता मृतक चेत राम अभिकथित

विल के निष्पादन के समय पर व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में था । श्री शर्मा ने वादी के साक्षियों द्वारा किए गए कथनों को निर्दिष्ट करते हुए, यह कथन किया कि उनके कथनों में कोई संगतता नहीं है अपितु, बड़े पैमाने पर विरोधाभास है और इस प्रकार, दोनों निचले न्यायालयों ने यह सही निष्कर्ष निकाला है कि उनके बयानों पर, मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में विश्वास नहीं किया जा सकता है ।

18. वर्तमान मामले में, वादी ने विल के विधिमान्य निष्पादन को साबित करने के लिए स्वयं की अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा की और यह कथन किया कि मृतक चेत राम ने उसके पक्ष में एक विल निष्पादित की थी जो अभि. सा. 2 अर्थात् श्री चमरु राम द्वारा अपराह्न लगभग 2.00 से 2.30 बजे के बीच मृतक चेत राम के घर पर लिखी गई थी । उसने यह भी कथन किया कि वह भी विल के निष्पादन के समय पर उपस्थित था और उसने भी विल पर हस्ताक्षर किए थे । उसके कथन से यह भी तथ्य निकलते हैं कि उसने ऐसा कुछ भी नहीं कहा जिनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि मृतक चेत राम ने उन दो अनुप्रमाणन साक्षियों की उपस्थिति में अभिकथित विल निष्पादित की थी जिन्होंने वस्तुतः मृतक चेत राम को विल पर अंगूठे का निशान लगाते हुए देखा था । इसके अलावा, अभि. सा. 1 ने यह कथन किया कि मृतक चेत राम के घर पर विल लिखते समय वह उपस्थित था और उसने वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए पर हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 1 के कथन में ऐसा कुछ नहीं है जिनसे यह सुझाव मिलता हो कि मृतक चेत राम द्वारा अंगूठे का निशान, यदि कोई हो, लगाते समय अन्य दो अनुप्रमाणन साक्षी भी उपस्थित थे । अभि. सा. 1 ने यह भी कथन किया कि पार्श्व साक्षियों और श्री चमरु जो विल का लेखक है, को श्री चमरु के घर में उसके पुत्र द्वारा बुलाया गया था, जिनसे यह सुनिश्चित तौर पर इंगित होता है कि स्वयं वादी ने स्वयं सक्रिय तौर पर विल के निष्पादन में भाग लिया था ।

19. अभि. सा. 2 श्री चमरु राम, जिसने अभिकथित तौर पर विल लिखी थी, ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को मृतक चेत राम के निर्देशों पर, उसने दो साक्षियों अर्थात् भिल्लो और शेर सिंह की उपस्थिति में लिखा था । उसने यह भी कथन किया कि विल की अन्तर्वस्तुओं को चेत राम को पढ़कर सुनाया गया था, जिसने विल की अन्तर्वस्तुओं को सही होने को सुनिश्चित करने के पश्चात् विल पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था । तथापि, प्रतिपरीक्षा में उसने यह कथन

किया कि विल को चेत राम के घर में लिखा गया था और उसे चेत राम के घर में वादी के पुत्र द्वारा बुलाया गया था । उसने यह भी कथन किया कि साक्षियों को भी वादी के पुत्र द्वारा बुलाया गया था । अभि. सा. 2 ने भी यह कथन किया है कि आक्षेपित विल पर वादी के भी हस्ताक्षर हैं, इसका अभिप्राय यह है कि अभि. सा. 1 द्वारा यह अभिकथन कि उसने भी विल पर हस्ताक्षर किए थे, साथ ही पार्श्व साक्षियों को उसके पुत्र द्वारा चेत राम के घर में बुलाने और विल लिखने के बारे में किया गया उसका बयान सही है । यद्यपि, अभि. सा. 2 द्वारा किए गए कथन के परिशीलन से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि विल लिखने के पश्चात् अभि. सा. 2 ने उसकी अन्तर्वस्तुओं को मृतक चेत राम को पढ़कर सुनाया था जिसने इसकी सत्यता को स्वीकार करने के पश्चात् उस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था किन्तु, अभि. सा. 2 के कथन से ऐसा कोई सुझाव नहीं मिलता है कि वसीयतकर्ता मृतक चेत राम ने साक्षियों की उपस्थिति में आक्षेपित विल पर वस्तुतः अपने हस्ताक्षर किए थे और यह भी कि साक्षियों ने वसीयतकर्ता चेत राम की उपस्थिति में वस्तुतः विल पर हस्ताक्षर किए थे ।

20. अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 के कथनों का संयुक्त परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि अभि. सा. 1 और उसके कुटुम्ब सदस्य अर्थात् उसके पुत्र ने अभिकथित विल के निष्पादन में सक्रिय तौर पर भाग लिया था, क्योंकि इन दोनों साक्षियों के कथनों में यह आया है कि लेखक के साथ ही पार्श्व साक्षी, अभिकथित विल के प्रतिपादक अर्थात् अभि. सा. 1 के निवेदन पर ही वसीयतकर्ता चेत राम के घर पर आए थे । यद्यपि, पूर्वोक्त वादी साक्षियों को अनुप्रमाणन साक्षियों के रूप में उल्लिखित किया गया है जिन्होंने अभिकथित तौर पर आक्षेपित विल पर अपने हस्ताक्षर किए थे किन्तु चूंकि उनके कथनों में ऐसा कुछ नहीं है जिनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उस अभिकथित विल के निष्पादन के समय पर या वसीयतकर्ता मृतक चेत राम द्वारा अंगूठे का निशान लगाते समय ये अनुप्रमाणन साक्षी, मृतक चेत राम के घर पर वस्तुतः उपस्थित थे ।

21. अभि. सा. 3 शेर सिंह, विल के अनुप्रमाणक साक्षियों में से एक ने यह कथन किया है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को चेत राम के निर्देशों पर चमरु द्वारा लिखा गया था और इसे लेखक चमरु राम द्वारा चेत राम को पढ़कर सुनाया गया था और उसके बाद ही मृतक चेत राम ने विल पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था । उसने यह भी कथन किया कि

उसने भी भिल्लो के साथ विल पर हस्ताक्षर किए थे जो भी वहां मौजूद थे । अभि. सा. 3 के कथन से यह प्रकट होता है कि वसीयतकर्ता ने दो साक्षियों की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर किए थे जिन्होंने भी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर किए थे । अभि. सा. 3 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के साथ ही अभि. सा. 1 के कथन से यह प्रकट होता है कि अभि. सा. 3 वादी के संबंधी हैं । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 3 द्वारा दिए गए कथनों की अन्तर्वस्तुओं की अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 द्वारा किए गए अभिसाक्ष्यों द्वारा संपुष्टि नहीं होती हैं क्योंकि जैसा कि उपर्युक्त चर्चा की जा चुकी है अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 ने कभी भी मृतक चेत राम द्वारा विल के अभिकथित निष्पादन के समय पर साक्षियों की उपस्थिति के बारे में कोई बात नहीं कही है ।

22. चूंकि, अभिलेख पर यह साबित कर दिया गया है कि अभि. सा. 3 वादी का संबंधी है, इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, निचले न्यायालयों द्वारा उसे हितबद्ध साक्षी के रूप में सही ही अभिनिर्धारित किया गया है । इसके अतिरिक्त, वर्तमान मामले में, अभि. सा. 3 के कथन के अनुसार, उसने भिल्लो के साथ एक साक्षी के रूप में विल पर हस्ताक्षर किए थे, किन्तु स्वीकृततः, वर्तमान मामले में वादी ने भिल्लो राम की परीक्षा नहीं की है जो एक अन्य महत्वपूर्ण साक्षी हो सकता था जो वादी के इस दावे को सिद्ध करता कि विल को मृतक चेत राम द्वारा सम्यक् रूप से निष्पादित किया गया था और उसने पार्श्व साक्षियों की उपस्थिति में विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए पर वस्तुतः अपने हस्ताक्षर किए थे जैसा कि उपर्युक्त मत व्यक्त किया जा चुका है कि अभि. सा. 3 के कथन का अवलंब नहीं लिया जा सकता है क्योंकि अभि. सा. 1 और अभि. सा. 2 द्वारा किए गए अभिसाक्ष्यों से कहीं भी अभि. सा. 3 द्वारा किए गए अभिसाक्ष्य की पुष्टि नहीं होती है । भिल्लो राम, जो अभिकथित तौर पर एक अन्य साक्षी था, जिसने एक साक्षी के रूप में विल पर वस्तुतः हस्ताक्षर किए थे, की वादी द्वारा परीक्षा की गई थी, के कथन से भी अभि. सा. 3 के बयान पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । वादी के साक्षियों की सूची में भिल्लो राम का नाम नहीं होने से संदेहास्पद परिस्थितियां उपदर्शित होती हैं और अभिलेख पर भिल्लो की अनुपस्थिति के बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है चाहे साक्षियों के कथनों द्वारा या दस्तावेजी साक्षियों द्वारा, जिसने वादी के बयान के अनुसार मृतक चेत राम की विल के निष्पादन के समय पर विल पर हस्ताक्षर किए थे । इसके अतिरिक्त,

वर्तमान मामले में, वादी के साक्षियों में से किसी भी साक्षी ने इस तथ्य के बारे में कोई कथन नहीं किया है कि वसीयतकर्ता अर्थात् चेत राम, विल के निष्पादन के समय पर स्वस्थचित्त की दशा में था और उसने इसकी अन्तर्वस्तुओं को पूर्णतया समझने के पश्चात् ही विल को वस्तुतः निष्पादित किया था । वादी के साक्षियों में से कोई भी साक्षी, सिवाय अभि. सा. 1 अर्थात् स्वयं वादी ने इस तथ्य के बारे में यह कथन नहीं किया है कि अभिकथित विल को मृतक चेत राम द्वारा व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में उसके पक्ष में निष्पादित किया था और उसके ऊपर विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए को निष्पादित करने के लिए कोई दबाव नहीं था ।

23. मामले के विचारण के दौरान वादी के साक्षियों द्वारा दिए गए कथनों के सामूहिक परिशीलन से यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वादी, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के अनुसार, विल के सम्यक् निष्पादन को साबित करने में समर्थ नहीं रहा है, जो इस प्रकार है :–

> "धारा 63. **विशेषाधिकार रहित बिलों का निष्पादन** – प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक लड़ाई में लगा हुआ सैनिक या इस प्रकार नियोजित या लगा हुआ वायु सैनिक या समुद्र पर कोई जहाज नहीं है अपने विल निम्नलिखित नियमों के अनुसार निष्पादित करेगा –
>
> (क) वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपना चिह्न लगाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में या उसके निदेशानुसार हस्ताक्षर किया जाएगा ;
>
> (ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर ऐसे किए जाएंगे या लगाए जाएंगे कि उससे यह प्रकट हो कि उसके द्वारा लेख को विल के रूप में प्रभावी करने का आशय था ;
>
> (ग) विल को ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाएगा, जिसमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिह्न लगाते हुए देखा है या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को विल पर हस्ताक्षर करते हुए देखा या वसीयतकर्ता से उसके

> हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति प्राप्त की है ; और प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करेगा किन्तु यह आवश्यक नहीं होगा कि एक से अधिक साक्षी एक ही समय पर उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का कोई विशेष प्ररूप आवश्यक नहीं होगा ।"

24. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 के अनुसार, वादी को यह साबित करना अपेक्षित होता है कि विल के निष्पादन के समय, वसीयतकर्ता, वसीयती विल की अन्तर्वस्तुओं के साथ ही इसके परिणाम को समझते हुए, व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में था । अभिलेखों से यह दर्शित होता है कि वादी द्वारा इसे सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर इसके बारे में, कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है कि मृतक चेत राम अभिकथित विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए के निष्पादन के समय स्वस्थचित्त दशा में था ।

25. वर्तमान मामले में, जहां प्रतिवादियों ने अभिकथित विल की असलियत और सत्यता के बारे में, विनिर्दिष्ट आक्षेप किया है और यह अभिकथित किया है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए, एक काल्पनिक और कूटरचित दस्तावेज है तो वहां वादी पर इस धारणा को दूर करने का भार होता है कि वह यह साबित करे कि अभिकथित विल को वसीयतकर्ता द्वारा व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में रहते हुए निष्पादित किया गया है और विल की अन्तर्वस्तुओं को समझने के पश्चात् वसीयतकर्ता द्वारा उस पर हस्ताक्षर किए गए थे । किन्तु, वर्तमान मामले में, न्यायालय ने वादी के प्रत्येक साक्षियों के कथनों का कई अवसरों पर परिशीलन किया किन्तु इस बारे में, तनिक भी प्रत्याख्यान नहीं मिला कि वसीयतकर्ता, व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में था और वह विल के निष्पादन के समय विल के निष्पादन के परिणाम को समझने में समर्थ था । वादी के साक्षियों द्वारा किए गए कथनों के साथ ही अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्यों को सूक्ष्म रूप से उल्लिखित करने के पश्चात् इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वादी अपने पक्ष में मृतक चेत राम द्वारा विधिमान्य विल के निष्पादन को साबित करने में बुरी तरह से असफल रहा है, इस प्रकार, दोनों निचले न्यायालयों ने यह सही ही अभिनिर्धारित किया है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए, एक असली विल नहीं है ।

26. अब हम प्रतिवादी साक्षी 1 किस्सो द्वारा किए गए कथन पर विचार करते हैं, जहां उसने यह सुस्पष्टतः कथन किया है कि आक्षेपित विल एक कूटरचित दस्तावेज है क्योंकि वसीयतकर्ता चेत राम ने कभी भी वादी के पक्ष में विल निष्पादित नहीं किया था । लिखित कथन के परिशीलन से यह स्पष्टतः यह सुझाव मिलता है कि विल की असलियत के बारे में एक विनिर्दिष्ट आक्षेप किया गया है और इसे कूटरचित होना कहा गया है । अपने लिखित कथन में उसने इस बात से सुस्पष्टतः इनकार किया है कि मृतक चेत राम ने कभी भी कोई विल निष्पादित की थी अपितु इसके अलावा, उसने यह कथन किया कि वादी ने अपने पक्ष में अभिकथित निष्पादित विल के आधार पर नामांतरण के लिए आवेदन किया था किन्तु 7-8 अवसरों को देने के पश्चात् भी वह इसे प्रस्तुत करने में असफल रहा, इसलिए, नामांतरण उनके पक्ष में प्रविष्ट किया गया । यद्यपि, वादी द्वारा की गई प्रतिपरीक्षा के परिशीलन से कहीं भी यह सुझाव नहीं मिलता है कि उसके कथन में भी कोई विरोधाभास था जो उसने अपनी मुख्य परीक्षा में किया था । इसके अलावा, इसके परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि वह उस कथन पर कायम रहा जिसे उसने अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान किया था ।

27. जैसा कि, उपर्युक्त उल्लिखित किया जा चुका है कि यद्यपि, सामान्यतया विल के निष्पादन और विधिमान्यता को साबित करने का भार प्रतिपादक पर होता है किन्तु यदि विरोधी पक्षकार द्वारा यह अभिकथित किया जाता है कि विल असली दस्तावेज नहीं है तो सबूत का भार उस व्यक्ति पर स्थानांतरित हो जाता है जो विल के बारे में अभिकथन करता है क्योंकि कूटरचित होने के नाते इसे साबित करना होता है ।

28. **दौलत राम और अन्य** बनाम **सोधा और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"10. विल, एक दस्तावेज होने के नाते प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित करना होता है, सिवाय जहां न्यायालय ने द्वितीयतः साक्ष्य द्वारा दस्तावेज को साबित करने की अनुज्ञा देता है । चूंकि, इसे अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित होता है, जैसा कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 में उपबंधित है, इसका साक्ष्य के रूप में तब तक प्रयोग नहीं किया जा सकता है जब तक कि अनुप्रमाणक साक्षियों में से कम-से-कम एक साक्षी को इसके निष्पादन को साबित

[1] (2005) 1 एस. सी. सी. 40.

करने के प्रयोजन के लिए नहीं बुलाया जाता है यदि एक अनुप्रमाणक साक्षी भी जीवित है और न्यायालय की प्रक्रिया के अध्यधीन और साक्ष्य देने में समर्थ है । इसके अतिरिक्त, इसे भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63 की अपेक्षाओं को भी पूरा करना होता है । यह निर्धारित करने के अनुक्रम में कि क्या विल विधिमान्य तौर पर निष्पादित की गई है और यह एक असली दस्तावेज है, प्रतिपादक को यह दर्शित करना होता है कि विल पर वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं और यह कि उसने स्वयं अपनी स्वतंत्र इच्छा से वसीयत पर अपने हस्ताक्षर किए हैं और यह कि वह उस सुसंगत समय पर व्ययन करने के लिए स्वस्थचित्त दशा में था और व्ययन करने की प्रकृति और प्रभाव को समझता था और यह कि वसीयतकर्ता ने उन दो साक्षियों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए थे जिन्होंने भी उसकी उपस्थिति में और एक दूसरे की उपस्थिति में इसे अनुप्रमाणित किया था । जब एक बार ये अवयव सिद्ध कर दिए जाते हैं तो सबूत का भार, जो प्रतिपादक पर होता है, उससे वह उन्मुक्त हो जाता है किन्तु जहां संदेहास्पद परिस्थितियां उद्‌भूत होती हैं वहां सबूत का भार प्रतिपादक पर होता है कि वह समुचित साक्ष्य द्वारा ऐसे संदेहों को दूर करे । यह साबित करने का भार कि विल कूटरचित है या यह कि इसे असम्यक् प्रभाव के अधीन या प्रपीड़न या कपट द्वारा प्राप्त किया गया था, इसे साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो ऐसा अभिकथन करता है ।"

29. वर्तमान मामले में, प्रतिवादियों ने अभिकथित विल की असलियत के बारे में लिखित कथन फाइल करते हुए, विनिर्दिष्ट आक्षेप उद्‌भूत किया है । प्रतिवादी साक्षी 1 ने अपने कथन में यह सुस्पष्टतः कथन किया है कि मृतक चेत राम ने कभी भी वादी के पक्ष में कोई विल निष्पादित नहीं की थी और विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए एक कूटरचित और बनावटी दस्तावेज है जिसे वादी द्वारा मृतक चेत राम की मृत्यु के पश्चात् निष्पादित कराया गया था । अपने पूर्वोक्त कथन को सिद्ध करने के लिए, उसने यह उपदर्शित किया कि वर्तमान मामले में विल के निष्पादन के बारे में मजबूत संदेहास्पद परिस्थिति यह है कि प्रतिपादक अर्थात् वादी, आक्षेपित विल को मृतक चेत राम की संपदा के बारे में नामांतरण के अनुप्रमाणन के समय पर ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष प्रस्तुत करने में असफल रहा है, जिसने भी साक्ष्य प्रदर्श डी-1 दिया है, जो अभिलेख पर सम्यक् रूप से साबित हुआ है और जिससे यह सुझाव मिलता है कि वादी को राजस्व प्राधिकारियों के

समक्ष विल, यदि कोई हो, जो मृतक चेत राम द्वारा उसके पक्ष में किया जाना अभिलिखित है, को कई अवसर देने के पश्चात् भी प्रस्तुत करने में असफल रहा, इस प्रकार, तद्नुसार, नामांतरण किया गया । प्रदर्श डी-1 से यह प्रकट होता है कि राजस्व प्राधिकारियों ने उस विल के आधार पर वाद भूमि के बारे में प्रथमदृष्ट्या वादी के पक्ष में नामांतरण प्रविष्ट किया था, किन्तु तारीख 29 फरवरी, 1996 के पश्चात् जब ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष उक्त नामांतरण अनुप्रमाणित होने के लिए आया तो वादी उस विल को ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष प्रस्तुत करने में असफल रहा । इसके पश्चात्, उसे विल प्रस्तुत करने के लिए तारीख 4 जून, 1996 को एक अन्य अवसर दिया गया था किन्तु वह पुनः विल को प्रस्तुत करने में असफल रहा । अभिलेखों से यह सुझाव मिलता है कि कई अवसर देने के बावजूद वादी विल को प्रस्तुत करने में असफल रहा और अंततः तारीख 25 जुलाई, 1997 को अर्थात् लगभग एक वर्ष पश्चात् भी उसे अवसर दिया गया तब भी वादी तारीख 6 अगस्त, 1997 को ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ । उसे ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष विल प्रस्तुत करने के लिए कई अवसर अर्थात् तारीख 4 जून, 1996, तारीख 31 अगस्त, 1996, तारीख 25 सितम्बर, 1996, तारीख 27 नवम्बर, 1996, तारीख 30 अप्रैल, 1997, तारीख 16 मई, 1997, तारीख 12 जून, 1997, तारीख 16 जुलाई, 1997, तारीख 25 जुलाई, 1997 और अन्ततः तारीख 6 अगस्त, 1997 को अवसर दिया गया । इसलिए, मूल विल प्रस्तुत नहीं करने के अभाव में, मृतक चेत राम की संपदा के बारे में नामांतरण का अनुप्रमाणन, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के उपबंधों के अनुसरण में किया गया । प्रदर्श डी-1 के परिशीलन से इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि वादी को विल प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर देने के बावजूद वह ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष तारीख 6 अगस्त, 1997 तक कोई विल अभिलेख पर प्रस्तुत करने में असफल रहा था । यद्यपि, अभि. सा. 1 ने अपने कथन में यह कथन किया है कि उसने ए. सी. II श्रेणी, सलोनी के समक्ष आक्षेपित विल प्रस्तुत की थी । किन्तु इस कथन को किसी दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा सिद्ध नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त, प्रदर्श डी-1, जैसा कि उपर्युक्त निर्दिष्ट किया गया है, के परिशीलन से यह सुझाव मिलता है कि वादी के कहने पर राजस्व प्राधिकारियों ने नामांतरण प्रविष्ट किया था किन्तु इसके पश्चात्, कई अवसर देने के बावजूद वह विल को अभिलेख पर प्रस्तुत करने में असफल रहा, अतएव, तद्नुसार, नामांतरण अनुप्रमाणित नहीं हुआ । इस प्रकार,

पूर्वोक्त परिस्थितियों में, जहां राजस्व प्राधिकारियों द्वारा बुलाए जाने के पश्चात् लगभग एक वर्ष तक वादी विल प्रस्तुत करने में असफल रहा, से विल के निष्पादन के बारे में मजबूत संदेहास्पद परिस्थितियां उद्भूत होती हैं, इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों का यह जोरदार अभिकथन है कि वस्तुतः इस विल को वसीयतकर्ता अर्थात् चेत राम की मृत्यु के पश्चात् वादी द्वारा निष्पादित कराया गया था ।

30. दोनों पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों, चाहे मौखिक या दस्तावेजी हो, के सम्पूर्ण और संयुक्त रूप से परिशीलन करने पर यह सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए मजबूत संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है, जैसी कि इसमें उपर्युक्त चर्चा की गई है । इसके अतिरिक्त, वादी प्रतिवादियों की इस धारणा को दूर करने के लिए अभिलेख पर कोई भी तर्कपूर्ण, विश्वसनीय, समुचित साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका है कि प्रश्नगत विल संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई नहीं है । इसके विपरीत, यदि प्रतिवादी साक्षी 1 द्वारा किए गए प्रत्याख्यान को दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 1 के साथ परिशीलन किया जाए तो न्यायालय के विवेक में इस बारे में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रतिवादियों ने अपने सबूत के भार का निर्वहन किया है, यह साबित करने में कि विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए संदेहास्पद परिस्थितियों से घिरी हुई है ।

31. अतएव, पूर्वोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने के लिए आबद्ध है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय, अभिलेख पर के साक्ष्य, चाहे मौखिक या दस्तावेजी हो, के समुचित मूल्यांकन पर आधारित हैं और तद्नुसार, इस प्रकार, उपर्युक्त विरचित विधि के सारवान् प्रश्न का उत्तर दिया जाता है । अतएव, वर्तमान अपील असफल होती है और तद्नुसार, इसे खारिज किया जाता है ।

32. अन्तरिम निर्देश, यदि कोई हो, को बातिल किया जाता है । सभी प्रकीर्ण आवेदन भी निपटाए जाते हैं ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

क.

संसद् के अधिनियम

सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008

(2009 का अधिनियम संख्यांक 6)

[7 जनवरी, 2009]

सीमित दायित्व भागीदारी की विरचना और विनियमन का तथा उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सीमित दायित्व भागीदारी अधिनियम, 2008 है ।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे :

परंतु इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न उपबंधों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी और किसी ऐसे उपबंध में इस अधिनियम के प्रारंभ के प्रति किसी निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह उस उपबंध के प्रवृत्त होने के प्रतिनिर्देश है ।

2. परिभाषाएं – (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार के संबंध में "पते" से निम्नलिखित अभिप्रेत है –

(i) यदि व्यष्टि है तो उसके प्रायिक निवास स्थान का पता ; और

(ii) यदि निगम निकाय है तो उसके रजिस्ट्रीकृत कार्यालय का पता ;

(ख) "अधिवक्ता" से अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का 25) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (क) में यथापरिभाषित अधिवक्ता अभिप्रेत है ;

(ग) "अपील अधिकरण" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 10चद की उपधारा (1) के अधीन गठित राष्ट्रीय कंपनी विधि अपील अधिकरण अभिप्रेत है ;

(घ) "निगम निकाय" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 3 में यथापरिभाषित कंपनी अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं –

(i) इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत सीमित दायित्व भागीदारी ;

(ii) भारत के बाहर निगमित सीमित दायित्व भागीदारी ; और

(iii) भारत के बाहर निगमित कंपनी,

किंतु इसके अंतर्गत निम्नलिखित नहीं हैं –

(i) एकल निगम ;

(ii) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत सहकारी सोसाइटी ; और

(iii) कोई अन्य निगम निकाय [जो कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 3 में यथापरिभाषित कंपनी या इस अधिनियम में यथापरिभाषित सीमित दायित्व भागीदारी नहीं है], जो केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे ;

(ङ) "कारबार" में प्रत्येक व्यापार, वृत्ति, सेवा और उपजीविका सम्मिलित हैं ;

(च) "चार्टर्ड अकाउंटेंट" से चार्टर्ड अकाउंटेंट अधिनियम, 1949 (1949 का 38) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथापरिभाषित चार्टर्ड अकाउंटेंट अभिप्रेत है जिसने उस अधिनियम

की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त कर लिया है ;

(छ) "कंपनी सचिव" से कंपनी सचिव अधिनियम, 1980 (1980 का 56) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ग) में यथापरिभाषित कंपनी सचिव अभिप्रेत है जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त कर लिया है ;

(ज) "लागत लेखापाल" से लागत और संकर्म लेखापाल अधिनियम, 1959 (1959 का 23) की धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ख) में यथापरिभाषित कोई लागत लेखापाल अभिप्रेत है जिसने उस अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) के अधीन व्यवसाय प्रमाणपत्र अभिप्राप्त कर लिया है ;

(झ) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के संबंध में "न्यायालय" से धारा 77 के उपबंधों के अनुसार अधिकारिता रखने वाला न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ञ) "अभिहित भागीदार" से धारा 7 के अनुसरण में भागीदार के रूप में अभिहित कोई भागीदार अभिप्रेत है ;

(ट) "अस्तित्व" से कोई निगम निकाय अभिप्रेत है और धारा 18, धारा 46, धारा 47, धारा 48, धारा 49, धारा 50, धारा 52 और धारा 53 के प्रयोजनों के लिए इसके अंतर्गत भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) के अधीन स्थापित फर्म भी है ;

(ठ) सीमित दायित्व भागीदारी के संबंध में "वित्तीय वर्ष" से वर्ष की 1 अप्रैल से आगामी वर्ष की 31 मार्च तक की अवधि अभिप्रेत है :

परंतु वर्ष की 30 सितंबर के पश्चात् निगमित सीमित दायित्व भागीदारी की दशा में, वित्तीय वर्ष, उस वर्ष के अगले आगामी वर्ष की 31 मार्च को समाप्त हो सकेगा ;

(ड) "विदेशी सीमित दायित्व भागीदारी" से भारत के बाहर विरचित, निगमित या रजिस्ट्रीकृत सीमित दायित्व भागीदारी अभिप्रेत है और जो भारत के भीतर कारबार का कोई स्थान स्थापित करती है ;

(ढ) "सीमित दायित्व भागीदारी" से इस अधिनियम के अधीन

विरचित और रजिस्ट्रीकृत भागीदारी अभिप्रेत है ;

(ण) "सीमित दायित्व भागीदारी करार" से सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों के बीच या सीमित दायित्व भागीदारी और उसके भागीदारों के बीच कोई लिखित करार अभिप्रेत है, जो भागीदारों के पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों तथा उस सीमित दायित्व भागीदारी के संबंध में उनके अधिकारों और कर्तव्यों का अवधारण करता है ;

(त) सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार के संबंध में "नाम" से निम्नलिखित अभिप्रेत है –

(i) यदि व्यष्टि है तो उसका मुख्य नाम, मध्य नाम और उपनाम ; और

(ii) यदि निगम निकाय है तो उसका रजिस्ट्रीकृत नाम;

(थ) सीमित दायित्व भागीदारी के संबंध में "भागीदार" से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है, जो सीमित दायित्व भागीदारी करार के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी में भागीदार बनता है ;

(द) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ध) "रजिस्ट्रार" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के अधीन कंपनियों को रजिस्ट्रीकृत करने के कर्तव्य वाला रजिस्ट्रार, या अपर, संयुक्त, उप या सहायक रजिस्ट्रार अभिप्रेत है ;

(न) "अनुसूची" से इस अधिनियम की अनुसूची अभिप्रेत है ;

(प) "अधिकरण" से कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 10चख की उपधारा (1) के अधीन गठित राष्ट्रीय कंपनी विधि अधिकरण अभिप्रेत है ।

(2) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं, किंतु कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) में परिभाषित हैं, वही अर्थ हैं जो उस अधिनियम में हैं ।

अध्याय 2

सीमित दायित्व भागीदारी की प्रकृति

3. सीमित दायित्व भागीदारी का निगम निकाय होना – (1) सीमित

दायित्व भागीदारी ऐसा निगम निकाय है, जिसे इस अधिनियम के अधीन विरचित और निगमित किया गया है तथा जिसका इसके भागीदारों से पृथक् विधिक अस्तित्व है ।

(2) सीमित दायित्व भागीदारी का शाश्वत उत्तराधिकार होगा ।

(3) सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों में किसी परिवर्तन से सीमित दायित्व भागीदारी की विद्यमानता, अधिकार या दायित्व प्रभावित नहीं होंगे ।

4. भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 का लागू न होना – जैसा अन्यथा उपबंधित है, उसके सिवाय, भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 (1932 का 9) के उपबंध सीमित दायित्व भागीदारी को लागू नहीं होंगे ।

5. भागीदार – कोई व्यष्टि या निगम निकाय सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार हो सकेगा :

परंतु व्यष्टि सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार होने के लिए समर्थ नहीं होगा, यदि,–

(क) वह सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा विकृतचित्त पाया गया है और ऐसा निष्कर्ष प्रवर्तन में है ;

(ख) वह अनुन्मोचित दिवालिया है ; या

(ग) उसने दिवालिया न्यायनिर्णीत किए जाने के लिए आवेदन किया है और उसका आवेदन लंबित है ।

6. भागीदारों की न्यूनतम संख्या – (1) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी में कम से कम दो भागीदार होंगे ।

(2) यदि किसी समय सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों की संख्या दो से कम हो जाती है और सीमित दायित्व भागीदारी इस प्रकार संख्या के कम होने के दौरान छह मास से अधिक के लिए कारबार जारी रखती है, तो वह व्यक्ति, जो उस समय के दौरान सीमित दायित्व भागीदारी का एकमात्र भागीदार है जब वह उन छह मास के पश्चात् इस प्रकार कारबार करता रहा है और उसे उस तथ्य की जानकारी है कि वह अकेला ही उसका कारबार चला रहा है, तो वह उस अवधि के दौरान सीमित दायित्व भागीदारी को उपगत बाध्यताओं के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी होगा ।

7. अभिहित भागीदार – (1) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी के कम से कम दो अभिहित भागीदार होंगे, जो व्यष्टि हों और उनमें से कम से कम एक भारत में निवासी होगा :

परंतु ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी की दशा में, जिसमें सभी भागीदार निगम निकाय हैं या जिसमें एक या अधिक भागीदार व्यष्टि और निगम निकाय हैं, कम से कम दो व्यष्टि जो ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार हैं या ऐसे निगम निकायों के नामनिर्देशिती हैं, अभिहित भागीदारों के रूप में कार्य करेंगे ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजन के लिए "भारत में निवासी" पद से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो ठीक पूर्ववर्ती एक वर्ष के दौरान एक सौ बयासी दिन से अन्यून की अवधि के लिए भारत में ठहरा है ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए,–

(i) यदि निगमन दस्तावेज,–

(क) यह विनिर्दिष्ट करता है कि अभिहित भागीदार कौन होंगे तो ऐसे व्यक्ति निगमन पर अभिहित भागीदार होंगे ; या

(ख) यह कथन करता है कि सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक भागीदार समय-समय पर अभिहित भागीदार होगा तो प्रत्येक ऐसा भागीदार अभिहित भागीदार होगा ;

(ii) कोई भागीदार, सीमित दायित्व भागीदारी करार द्वारा और उसके अनुसार अभिहित भागीदार बन सकेगा और कोई भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी करार के अनुसार अभिहित भागीदार नहीं रहेगा ।

(3) कोई व्यष्टि किसी सीमित दायित्व भागीदारी में तभी अभिहित भागीदार होगा जब उसने सीमित दायित्व भागीदारी में उस रूप में कार्य करने के लिए ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में जो विहित की जाए, पूर्व सहमति दे दी हो ।

(4) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी ऐसे प्रत्येक व्यष्टि की, जिसने अभिहित भागीदार के रूप में कार्य करने के लिए अपनी पूर्व सहमति अपनी नियुक्ति के तीस दिन के भीतर ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, दे दी है, विशिष्टियां रजिस्ट्रार के पास फाइल करेगा ।

(5) अभिहित भागीदार होने के लिए पात्र व्यष्टि ऐसी शर्तों और अपेक्षाओं को जो विहित की जाएं, पूरा करेगा ।

(6) सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक अभिहित भागीदार केंद्रीय सरकार से अभिहित भागीदार पहचान संख्या अभिप्राप्त करेगा और उक्त प्रयोजन के लिए कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 266क से धारा 266छ (जिसमें दोनों धाराएं भी सम्मिलित हैं) के उपबंध यथा आवश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे ।

8. अभिहित भागीदारों के दायित्व – जब तक कि इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित न हो, कोई अभिहित भागीदार –

(क) ऐसे सभी कार्यों, विषयों और बातों को करने के लिए उत्तरदायी होगा जो सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा इस अधिनियम के उपबंधों के अनुपालन की बाबत की जानी अपेक्षित हैं, जिसके अंतर्गत इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसरण में ऐसे किसी दस्तावेज, विवरणी, विवरण और इसी प्रकार की रिपोर्ट को जो सीमित दायित्व भागीदारी करार में विनिर्दिष्ट किया जाए, फाइल करना भी है ; और

(ख) उन उपबंधों के किसी उल्लंघन के लिए सीमित दायित्व भागीदारी पर अधिरोपित सभी शास्तियों के लिए दायी होगा ।

9. अभिहित भागीदारों में परिवर्तन – सीमित दायित्व भागीदारी किसी कारण से हुई रिक्ति के तीस दिन के भीतर अभिहित भागीदार को नियुक्त कर सकेगी और धारा 7 की उपधारा (4) और उपधारा (5) के उपबंध ऐसे नए अभिहित भागीदार के संबंध में लागू होंगे :

परंतु यदि कोई अभिहित भागीदार नियुक्त नहीं किया जाता है या यदि किसी समय केवल एक अभिहित भागीदार है तो प्रत्येक भागीदार अभिहित भागीदार समझा जाएगा ।

10. धारा 7, धारा 8 और धारा 9 के उल्लंघन के लिए दंड – (1) यदि सीमित दायित्व भागीदारी धारा 7 की उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करती है तो सीमित दायित्व भागीदारी और उसका प्रत्येक भागीदार जुर्माने से, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(2) यदि सीमित दायित्व भागीदारी, धारा 7 की उपधारा (4) और उपधारा (5), धारा 8 या धारा 9 के उपबंधों का उल्लंघन करती है, तो

सीमित दायित्व भागीदारी और उसका प्रत्येक भागीदार जुर्माने से, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

अध्याय 3

सीमित दायित्व भागीदारी का निगमन और उसके आनुषंगिक विषय

11. निगमन दस्तावेज – (1) निगमित की जाने वाली सीमित दायित्व भागीदारी के लिए,–

(क) लाभ की दृष्टि से किसी विधि युक्त कारबार को चलाने के लिए सहयोजित दो या अधिक व्यक्ति निगमन दस्तावेज पर अपने नाम हस्ताक्षरित करेंगे ;

(ख) निगमन दस्तावेज ऐसी रीति में और ऐसी फीस के साथ, जो विहित की जाए, उस राज्य के रजिस्ट्रार के पास फाइल किया जाएगा, जिसमें सीमित दायित्व भागीदारी का रजिस्ट्रीकृत कार्यालय अवस्थित है ; और

(ग) निगमन दस्तावेज के साथ विहित प्ररूप में या तो किसी अधिवक्ता या कंपनी सचिव या चार्टर्ड अकाउंटेंट या लागत लेखापाल द्वारा, जो सीमित दायित्व भागीदारी की विरचना में लगा हुआ है और ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा, जिसने निगमन दस्तावेज पर अपना नाम हस्ताक्षरित किया है, किया गया यह कथन फाइल किया जाएगा कि नियमन और उससे पूर्व के और उसके आनुषंगिक विषयों के संबंध में इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों की सभी अपेक्षाओं का अनुपालन किया गया है ।

(2) निगमन दस्तावेज,–

(क) ऐसे प्ररूप में होगा, जो विहित किया जाए ;

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी के नाम का कथन होगा ;

(ग) सीमित दायित्व भागीदारी के प्रस्तावित कारबार का कथन होगा ;

(घ) सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्ट्रीकृत कार्यालय के पते का कथन होगा ;

(ङ) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति के, जो निगमन पर सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार होंगे, नाम और पते का कथन होगा ;

(च) ऐसे व्यक्तियों के, जो निगमन पर सीमित दायित्व भागीदारी के अभिहित भागीदार होंगे, नाम और पते का कथन होगा ;

(छ) प्रस्तावित सीमित दायित्व भागीदारी से संबंधित ऐसी अन्य सूचना अंतर्विष्ट होगी, जो विहित की जाए ।

(3) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन ऐसा कथन करता है जिसके बारे में वह –

(क) यह जानता है कि वह मिथ्या है ; या

(ख) यह विश्वास नहीं करता है कि वह सही है,

तो वह कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

12. रजिस्ट्रीकरण द्वारा निगमन – (1) जब धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ख) और खंड (ग) द्वारा अधिरोपित अपेक्षाओं का अनुपालन हो गया है तब रजिस्ट्रार निगमन दस्तावेज को रखेगा और जब तक उस उपधारा के खंड (क) द्वारा अधिरोपित अपेक्षा का अनुपालन नहीं किया जाता है तब तक वह चौदह दिन की अवधि के भीतर –

(क) निगमन दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत नहीं करेगा ; और

(ख) यह प्रमाणपत्र नहीं देगा कि सीमित दायित्व भागीदारी निगमन दस्तावेज में विनिर्दिष्ट नाम से निगमित की गई है ।

(2) रजिस्ट्रार, धारा 11 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन परिदत्त विवरण को पर्याप्त साक्ष्य के रूप में स्वीकार कर सकेगा कि उस उपधारा के खंड (क) द्वारा अधिरोपित अपेक्षा का अनुपालन कर दिया गया है ।

(3) उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन जारी प्रमाणपत्र रजिस्ट्रार द्वारा हस्ताक्षरित और उसकी कार्यालय मुद्रा द्वारा अधिप्रमाणित किया जाएगा ।

(4) प्रमाणपत्र इस बात का निर्णायक साक्ष्य होगा कि सीमित दायित्व भागीदारी उसमें विनिर्दिष्ट नाम से निगमित की गई है ।

13. सीमित दायित्व भागीदारी का रजिस्ट्रीकृत कार्यालय और उसमें परिवर्तन – (1) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी का एक रजिस्ट्रीकृत कार्यालय होगा जिसको सभी संसूचनाएं और सूचनाएं संबोधित की जा सकेंगी और जहां वे प्राप्त की जाएंगी ।

(2) किसी दस्तावेज की तामील सीमित दायित्व भागीदारी या उसके भागीदार या अभिहित भागीदार पर डाक में डाले जाने के प्रमाणपत्र के अधीन डाक द्वारा या रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा या ऐसी किसी अन्य रीति से, जो विहित की जाए, उसके रजिस्ट्रीकृत कार्यालय पर और ऐसे किसी अन्य पते पर, जो सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा इस प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट रूप से घोषित किया जाए, ऐसे प्ररूप और रीति में, जो विहित किए जाएं, भेजकर की जा सकेगी ।

(3) सीमित दायित्व भागीदारी अपने रजिस्ट्रीकृत कार्यालय के स्थान में परिवर्तन कर सकेगी, ऐसे परिवर्तन की सूचना रजिस्ट्रार के पास ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए जो विहित की जाए, फाइल कर सकेगी और ऐसा परिवर्तन इस प्रकार सूचना फाइल करने पर ही प्रभावी होगा ।

(4) यदि सीमित दायित्व भागीदारी इस धारा के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन करती है तो सीमित दायित्व भागीदारी और उसका प्रत्येक भागीदार जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

14. रजिस्ट्रीकरण का प्रभाव – रजिस्ट्रीकरण पर, सीमित दायित्व भागीदारी अपने नाम से –

(क) वाद लाने और उसके विरुद्ध वाद लाए जाने ;

(ख) संपत्ति का, चाहे स्थावर हो या जंगम, मूर्त हो या अमूर्त, अर्जन करने, स्वामित्व रखने, धारण करने, विकास या व्ययन करने ;

(ग) यदि उसने एक मुद्रा रखने का विनिश्चय किया है तो सामान्य मुद्रा रखने ; और

(घ) ऐसे अन्य कार्यों और बातों को करने और कराने, जिन्हें निगम निकाय विधिमान्य रूप से कर या करा सकता है,

के लिए समर्थ होगी ।

15. नाम – (1) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी के नाम में या तो "सीमित दायित्व भागीदारी" शब्द या "सी. दा. भा." संक्षेपाक्षर, उसके नाम के अंतिम अक्षरों के रूप में होंगे ।

(2) कोई सीमित दायित्व भागीदारी ऐसे नाम से रजिस्ट्रीकृत नहीं की जाएगी जो केंद्रीय सरकार की राय में –

(क) अवांछनीय है ; या

(ख) किसी अन्य भागीदारी फर्म या सीमित दायित्व भागीदारी या निगम निकाय या रजिस्ट्रीकृत व्यापार चिह्न या ऐसे किसी व्यापार चिह्न के समरूप है या उससे बहुत कुछ मिलता-जुलता है, जो व्यापार चिह्न अधिनियम, 1999 (1999 का 47) के अधीन किसी अन्य व्यक्ति के रजिस्ट्रीकरण के लिए किसी आवेदन की विषयवस्तु है ।

16. नाम का आरक्षण – (1) कोई व्यक्ति ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में और ऐसी फीस के साथ, जो विहित की जाएं,–

(क) प्रस्तावित सीमित दायित्व भागीदारी के नाम के रूप में ; या

(ख) उस नाम के रूप में जिसमें सीमित दायित्व भागीदारी अपने नाम का परिवर्तन करने का प्रस्ताव करती है,

आवेदन में उपवर्णित नाम के आरक्षण के लिए रजिस्ट्रार को आवेदन कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन आवेदन की प्राप्ति पर और विहित फीस के संदाय पर, रजिस्ट्रार, इस विषय में केंद्रीय सरकार द्वारा विहित नियमों के अधीन रहते हुए, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आरक्षित किया जाने वाला नाम वह नाम नहीं है जिसे धारा 15 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी आधार पर खारिज किया जाए, रजिस्ट्रार द्वारा सूचना की तारीख से तीन मास की अवधि के लिए नाम आरक्षित कर सकेगा ।

17. सीमित दायित्व भागीदारी के नाम का परिवर्तन – (1) धारा 15 और धारा 16 में किसी बात के होते हुए भी, जहां केंद्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि सीमित दायित्व भागीदारी किसी ऐसे नाम से रजिस्ट्रीकृत की गई है (चाहे अनवधानता से या अन्यथा और चाहे मूल रूप से या नाम में परिवर्तन द्वारा) जो–

(क) धारा 15 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट नाम है ; या

(ख) किसी अन्य सीमित दायित्व भागीदारी या निगम निकाय या अन्य नाम के समरूप है या उससे इतना मिलता-जुलता है, जिससे भूल होने की संभावना है,

वहां केंद्रीय सरकार, ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी को अपने नाम में परिवर्तन करने का निदेश दे सकेगी और सीमित दायित्व भागीदारी उक्त निदेश का, निदेश की तारीख के पश्चात् तीन मास के भीतर या ऐसी दीर्घतर अवधि के भीतर, जो केंद्रीय सरकार अनुज्ञात करे, पालन करेगी ।

(2) कोई ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी जो, उपधारा (1) के अधीन दिए गए किसी निदेश का पालन करने में असफल रहती है, जुर्माने से जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगी और ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी का अभिहित भागीदार जुर्माने से जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

18. कतिपय परिस्थितियों में नाम के परिवर्तन के निदेश के लिए आवेदन – (1) कोई अस्तित्व जिसका नाम पहले से ही किसी ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी के, जिसे बाद में निगमित किया गया है, नाम के समरूप है, ऐसी रीति में जो विहित की जाए, धारा 17 में निर्दिष्ट आधार पर किसी सीमित दायित्व भागीदारी को अपना नाम परिवर्तन करने के लिए निदेश देने के लिए रजिस्ट्रार को आवेदन कर सकेगा ।

(2) रजिस्ट्रार, धारा 17 की उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट आधार पर किसी सीमित दायित्व भागीदारी को कोई निदेश देने के लिए उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन पर तभी विचार करेगा जब रजिस्ट्रार को उस नाम से सीमित दायित्व भागीदारी के रजिस्ट्रीकरण की तारीख से चौबीस मास के भीतर आवेदन प्राप्त हुआ हो ।

19. रजिस्ट्रीकृत नाम का परिवर्तन – कोई सीमित दायित्व भागीदारी रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्रीकृत अपने नाम में ऐसे परिवर्तन की सूचना ऐसे प्ररूप और रीति में तथा ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, उसके पास फाइल करके परिवर्तन कर सकेगी ।

20. "सीमित दायित्व भागीदारी" या "सी. दा. भा." शब्दों के अनुचित प्रयोग के लिए शास्ति – यदि किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों द्वारा किसी ऐसे नाम या अभिनाम के अधीन कारबार चलाया जाता है

जिसके अंत में "सीमित दायित्व भागीदारी" या "सी. दा. भा." शब्द या उनका कोई संक्षिप्त रूप या नकल शब्द हैं तो वह व्यक्ति या उनमें से प्रत्येक व्यक्ति जब तक सीमित दायित्व भागीदारी के रूप में सम्यक् रूप से निगमित नहीं किया गया है, जुर्माने से, जो पचास हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

21. नाम और सीमित दायित्व का प्रकाशन – (1) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी यह सुनिश्चित करेगी कि उसके बीजकों, शासकीय पत्राचार और प्रकाशनों पर निम्नलिखित अंकित हो, अर्थात् :–

(क) सीमित दायित्व भागीदारी का नाम, उसके रजिस्ट्रीकृत कार्यालय का पता और रजिस्ट्रीकरण संख्या ; और

(ख) यह कथन कि यह सीमित दायित्व के साथ रजिस्ट्रीकृत है ।

(2) कोई सीमित दायित्व भागीदारी, जो उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करती है, जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगी ।

अध्याय 4

भागीदार और उनके संबंध

22. भागीदार बनने के लिए पात्रता – सीमित दायित्व भागीदारी के निगमन पर, वे व्यक्ति जिन्होंने निगमन दस्तावेज पर अपने नाम हस्ताक्षरित किए हैं, उसके भागीदार होंगे और कोई अन्य व्यक्ति सीमित दायित्व भागीदारी करार द्वारा और उसके अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार बन सकेगा ।

23. भागीदारों के संबंध – (1) इस अधिनियम में यथा उपबंधित के सिवाय सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य तथा सीमित दायित्व भागीदारी और उसके भागीदारों के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य भागीदारों के बीच या सीमित दायित्व भागीदारी और उसके भागीदारों के बीच सीमित दायित्व भागीदारी करार द्वारा शासित होंगे।

(2) सीमित दायित्व भागीदारी करार और उसमें किए गए किन्हीं परिवर्तनों को यदि कोई हों, ऐसे प्ररूप और रीति में तथा ऐसी फीस के साथ, जो विहित की जाएं, रजिस्ट्रार के पास फाइल किया जाएगा ।

(3) उन व्यक्तियों के बीच, जो निगमन दस्तावेज पर अपना नाम

हस्ताक्षरित करते हैं, सीमित दायित्व भागीदारी के निगमन से पूर्व लिखित में किया गया कोई करार सीमित दायित्व भागीदारी पर बाध्यताएं अधिरोपित कर सकेगा, परंतु यह तब जब ऐसे करार का सीमित दायित्व भागीदारी के निगमन के पश्चात् सभी भागीदारों द्वारा अनुसमर्थन कर दिया गया हो ।

(4) किसी विषय से संबंधित करार के अभाव में, भागीदारों के पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों तथा सीमित दायित्व भागीदारी और भागीदारों के पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों को उस विषय से संबंधित उपबंधों के द्वारा जो पहली अनुसूची में उपवर्णित हैं, अवधारित किया जाएगा ।

24. भागीदारी हित का समाप्त हो जाना – (1) कोई व्यक्ति, भागीदार न रहने के संबंध में अन्य भागीदारों के साथ किसी करार के अनुसार या अन्य भागीदारों के साथ करार के अभाव में, भागीदारी त्यागने के अपने आशय की अन्य भागीदारों को तीस दिन से अन्यून की लिखित में सूचना देकर सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार नहीं रह सकेगा ।

(2) कोई व्यक्ति,–

(क) अपनी मृत्यु या सीमित दायित्व भागीदारी के विघटन पर ; या

(ख) यदि उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विकृतचित्त घोषित कर दिया गया है ; या

(ग) यदि उसने दिवालिया के रूप में न्यायनिर्णीत होने के लिए आवेदन किया है या उसे दिवालिया के रूप में घोषित किए जाने पर,

किसी सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार नहीं रहेगा ।

(3) जहां, कोई व्यक्ति सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार नहीं रहा है (जिसे इसमें इसके पश्चात् "पूर्व भागीदार" कहा गया है) वहां पूर्व भागीदार को, (सीमित दायित्व भागीदारी के साथ संव्यवहार करने वाले किसी व्यक्ति के संबंध में) सीमित दायित्व भागीदार का तब तक भागीदार माना जाएगा, जब तक–

(क) उस व्यक्ति को यह सूचना नहीं दे दी गई हो कि पूर्व भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार नहीं रहा है ; या

(ख) रजिस्ट्रार को यह सूचना नहीं दे दी गई हो कि पूर्व

भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार नहीं रहा है ।

(4) सीमित दायित्व भागीदारी में किसी भागीदार के न रहने से ही भागीदार की, सीमित दायित्व भागीदारी या अन्य भागीदार के प्रति या किसी अन्य व्यक्ति के प्रति बाध्यता, जो उसके भागीदार रहने के दौरान उपगत हुई हो, निर्मोचित नहीं होती है ।

(5) जहां सीमित दायित्व भागीदारी का कोई भागीदार, भागीदार नहीं रहता है, वहां जब तक सीमित दायित्व भागीदारी करार में अन्यथा उपबंधित न हो, पूर्व भागीदार या पूर्व भागीदार की मृत्यु या दिवालिएपन के परिणामस्वरूप उसके हिस्से का हकदार कोई व्यक्ति सीमित दायित्व भागीदारी से, पूर्व भागीदार के भागीदार न रहने की तारीख को अवधारित सीमित दायित्व भागीदारी को संचित हानियों की कटौती करने के पश्चात् निम्नलिखित प्राप्त करने का हकदार होगा –

(क) सीमित दायित्व भागीदारी में पूर्व भागीदार के वास्तव में किए गए पूंजी अभिदाय के बराबर रकम ;

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी के संचित लाभों में हिस्सा लेने का उसका अधिकार ।

(6) पूर्व भागीदार या पूर्व भागीदार की मृत्यु या दिवालिएपन के परिणामस्वरूप उसके हिस्से के हकदार किसी व्यक्ति को सीमित दायित्व भागीदारी के प्रबंध में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होगा ।

25. भागीदारों के परिवर्तन का रजिस्ट्रीकरण – (1) प्रत्येक भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी को अपने नाम या पते में परिवर्तन की सूचना, ऐसे परिवर्तन के पंद्रह दिन की अवधि के भीतर देगा ।

(2) सीमित दायित्व भागीदारी,–

(क) जहां कोई व्यक्ति भागीदार बनता है या भागीदार नहीं रहता है, वहां उसके भागीदार बनने या न रहने की तारीख से तीस दिन के भीतर रजिस्ट्रार के पास सूचना फाइल करेगी ; और

(ख) जहां भागीदार के नाम या पते में कोई परिवर्तन है, वहां ऐसे परिवर्तन के तीस दिन के भीतर रजिस्ट्रार के पास सूचना फाइल करेगी ।

(3) उपधारा (2) के अधीन रजिस्ट्रार के पास फाइल की गई सूचना –

(क) ऐसे प्ररूप में और ऐसी फीस के साथ होगी, जो विहित की जाए ;

(ख) सीमित दायित्व भागीदारी के अभिहित भागीदार द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी और ऐसी रीति में अधिप्रमाणित की जाएगी जो विहित की जाए ; और

(ग) यदि वह आने वाले भागीदार के संबंध में है तो उसमें उस भागीदार द्वारा यह कथन होगा कि वह भागीदार बनने की सहमति देता है, जो उसके द्वारा हस्ताक्षरित और ऐसी रीति में जो विहित की जाए, अधिप्रमाणित होगा ।

(4) यदि सीमित दायित्व भागीदारी उपधारा (2) के उपबंधों का उल्लंघन करती है तो सीमित दायित्व भागीदारी और सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक अभिहित भागीदार जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(5) यदि कोई भागीदार उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करता है तो, ऐसा भागीदार जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(6) कोई व्यक्ति, जो सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार नहीं रहा है, उपधारा (3) में निर्दिष्ट सूचना रजिस्ट्रार के पास स्वयं फाइल कर सकेगा, यदि उसके पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त कारण है कि सीमित दायित्व भागीदारी रजिस्ट्रार के पास सूचना फाइल नहीं कर सकेगी और भागीदार द्वारा फाइल की गई किसी सूचना की दशा में रजिस्ट्रार, सीमित दायित्व भागीदारी से इस आशय की पुष्टि प्राप्त करेगा जब तक कि सीमित दायित्व भागीदारी ने भी ऐसी सूचना फाइल नहीं कर दी हो :

परंतु जहां सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा पंद्रह दिन के भीतर कोई पुष्टि नहीं की गई है वहां रजिस्ट्रार इस धारा के अधीन भागीदार न रहने वाले व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना को रजिस्टर करेगा ।

अध्याय 5

सीमित दायित्व भागीदारी और भागीदारों के दायित्वों का विस्तार और परिसीमा

26. अभिकर्ता के रूप में भागीदार – किसी सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक भागीदार, सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार के प्रयोजन के

लिए, सीमित दायित्व भागीदारी का अभिकर्ता है न कि अन्य भागीदारों का ।

27. सीमित दायित्व भागीदारी के दायित्व की सीमा – (1) सीमित दायित्व भागीदारी, किसी भागीदार द्वारा किसी व्यक्ति के साथ संव्यवहार करने में की गई किसी बात के लिए आबद्ध नहीं है यदि –

(क) भागीदार को वास्तव में सीमित दायित्व भागीदारी के लिए किसी विशिष्ट कार्य को करने का कोई प्राधिकार नहीं है ; और

(ख) वह व्यक्ति यह जानता है कि उसको कोई प्राधिकार नहीं है या वह यह नहीं जानता है या उसे यह विश्वास है कि वह सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार है ।

(2) सीमित दायित्व भागीदारी दायी है, यदि सीमित दायित्व भागीदारी का कोई भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी के कारबार के दौरान उसकी ओर से या उसके प्राधिकार से किसी सदोष कार्य या लोप के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति के प्रति दायी है ।

(3) सीमित दायित्व भागीदारी की कोई बाध्यता, चाहे वह संविदा से उद्भूत हुई हो या अन्यथा, मुख्य रूप से सीमित दायित्व भागीदारी की बाध्यता होगी ।

(4) सीमित दायित्व भागीदारी के दायित्वों की पूर्ति सीमित दायित्व भागीदारी की संपत्ति से की जाएगी ।

28. भागीदार के दायित्व की सीमा – (1) कोई भागीदार धारा 27 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी बाध्यता के लिए केवल सीमित दायित्व भागीदारी का भागीदार होने के कारण प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं है ।

(2) धारा 27 की उपधारा (3) और इस धारा की उपधारा (1) के उपबंध किसी भागीदार के सदोष कार्य या लोप के लिए उसके व्यक्तिगत दायित्व को प्रभावित नहीं करेंगे, किंतु कोई भागीदार सीमित दायित्व भागीदारी के किसी अन्य भागीदार के सदोष कार्य या लोप के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा ।

29. व्यपदेशन – (1) जो कोई मौखिक या लिखित शब्दों द्वारा या आचरण द्वारा यह व्यपदेशन करता है या जानकर यह व्यपदेशन किया जाने देता है कि वह सीमित दायित्व भागीदारी में भागीदार है, वह किसी ऐसे

व्यक्ति के प्रति दायी है जिसने किसी ऐसे व्यपदेशन के भरोसे उस सीमित दायित्व भागीदारी को उधार दिया है चाहे वह व्यक्ति जिसने अपने भागीदार होने का व्यपदेशन किया है या जिसके भागीदार होने का व्यपदेशन किया गया है यह ज्ञान रखता हो या नहीं कि वह व्यपदेशन ऐसे उधार देने वाले व्यक्ति तक पहुंचा है :

परंतु जहां कोई उधार किसी सीमित दायित्व भागीदारी ने ऐसे व्यपदेशन के परिणामस्वरूप प्राप्त किया है वहां सीमित दायित्व भागीदारी ऐसे व्यक्ति के दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जिसने इस प्रकार भागीदार होने के बारे में स्वयं व्यपदेशन किया है या जिसका व्यपदेशन किया था उसके द्वारा प्राप्त उधार की सीमा तक या उस पर व्युत्पन्न किसी वित्तीय फायदे की सीमा तक दायी होगा ।

(2) जहां भागीदार की मृत्यु के पश्चात् कारबार उसी सीमित दायित्व भागीदारी के नाम से चालू रखा जाता है वहां उस नाम का या मृतक भागीदार के नाम का भागरूप उपयोग किए जाते रहना स्वयं में उस भागीदार के विधिक प्रतिनिधि को या उसकी संपदा को सीमित दायित्व, भागीदारी के किसी कार्य के लिए जो उसकी मृत्यु के पश्चात् किया गया हो, दायी नहीं बनाएगा ।

30. कपट की दशा में असीमित दायित्व – (1) किसी सीमित दायित्व भागीदारी या उसके किसी भागीदार द्वारा सीमित दायित्व भागीदारी या किसी अन्य व्यक्ति के लेनदारों के साथ कपटपूर्ण आशय या किसी कपटपूर्ण प्रयोजन के लिए किए गए किसी कार्य की दशा में, सीमित दायित्व भागीदारी और उन भागीदारों का दायित्व, जिन्होंने लेनदारों के साथ कपटपूर्ण आशय से या किसी कपटपूर्ण प्रयोजन के लिए कार्य किया है, सीमित दायित्व भागीदारी के सभी या किन्हीं ऋणों या अन्य दायित्वों के लिए असीमित होंगे :

परंतु यदि ऐसा कोई कार्य किसी भागीदार द्वारा किया गया है तो सीमित दायित्व भागीदारी तब तक उसी सीमा तक दायी होगी जिस तक भागीदार दायी है जब तक सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा यह साबित नहीं कर दिया जाता है कि ऐसा कार्य सीमित दायित्व भागीदारी की जानकारी या प्राधिकार के बिना किया गया था ।

(2) जहां कोई कारबार ऐसे आशय से या ऐसे प्रयोजन के लिए किया जाता है जो उपधारा (1) में उल्लिखित है वहां प्रत्येक व्यक्ति जो पूर्वोक्त

रीति में कारबार करने के लिए जानबूझकर पक्षकार था, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो पचास हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(3) जहां किसी सीमित दायित्व भागीदारी या ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी के किसी भागीदार या अभिहित भागीदार या किसी कर्मचारी ने सीमित दायित्व भागीदारी के कार्य कपटपूर्ण रीति से किए हैं, वहां ऐसी किन्हीं दांडिक कार्यवाहियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन उद्भूत हों, सीमित दायित्व भागीदारी और ऐसा कोई भागीदार या अभिहित भागीदार या कर्मचारी किसी व्यक्ति को, जिसको ऐसे आचरण के कारण कोई हानि या नुकसानी हुई है, प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी होगा :

परंतु ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी तब दायी नहीं होगी, यदि ऐसे किसी भागीदार या अभिहित भागीदार या कर्मचारी ने सीमित दायित्व भागीदारी की जानकारी के बिना कपटपूर्वक कार्य किया है ।

31. निर्णायक कार्य – (1) न्यायालय या अधिकरण, किसी सीमित दायित्व भागीदारी के किसी भागीदार या कर्मचारी के विरुद्ध उद्ग्रहणीय किसी शास्ति को कम कर सकेगा या उसका अधित्यजन कर सकेगा, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि :–

(क) सीमित दायित्व भागीदारी के ऐसे भागीदार या कर्मचारी ने ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी के अन्वेषण के दौरान उपयोगी सूचना उपलब्ध कराई है ; या

(ख) जब किसी भागीदार या कर्मचारी द्वारा दी गई सूचना के आधार पर (चाहे अन्वेषण के दौरान हो या नहीं) सीमित दायित्व भागीदारी, या सीमित दायित्व भागीदारी के किसी भागीदार या कर्मचारी को इस अधिनियम या किसी अन्य अधिनियम के अधीन सिद्धदोष ठहराया जाता है ।

(2) किसी सीमित दायित्व भागीदारी के किसी भागीदार या किसी कर्मचारी को केवल इस कारण सेवोन्मुक्त, पदावनत, निलंबित, धमकाया, उत्पीड़ित न किया जाए या उसके साथ उसकी सीमित दायित्व भागीदारी या नियोजन के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध किसी अन्य रीति में विभेद न

किया जाए कि उसने उपधारा (1) के अनुसरण में सूचना प्रदान की है या सूचना उपलब्ध कराई है ।

अध्याय 6

अभिदाय

32. अभिदाय का स्वरूप – (1) किसी भागीदार के अभिदाय में मूर्त, जंगम या स्थावर या अमूर्त संपत्ति या सीमित दायित्व भागीदारी में अन्य फायदे सम्मिलित हो सकेंगे, जिसके अंतर्गत धनराशि, वचनपत्र, नकद या संपत्ति के अभिदाय के लिए अन्य करार और की गई या की जाने वाली सेवाओं के लिए संविदाएं भी हैं ।

(2) प्रत्येक भागीदार के अभिदाय के अधीन धनीय मूल्य का लेखा रखा जाएगा और सीमित दायित्व भागीदारी के लेखाओं में ऐसी रीति में जो विहित की जाए, प्रकट किया जाएगा ।

33. अभिदाय करने की बाध्यता – (1) किसी सीमित दायित्व भागीदारी में धन या अन्य संपत्ति या अन्य फायदे का अभिदाय करने या उसके लिए कोई सेवा करने की किसी भागीदार की बाध्यता सीमित दायित्व भागीदारी के करार के अनुसार होगी ।

(2) किसी सीमित दायित्व भागीदारी का कोई लेनदार, जो उस करार में वर्णित किसी बाध्यता के आधार पर भागीदारों के बीच किसी समझौते की सूचना के बिना ऋण देता है या अन्यथा कार्य करता है, ऐसे भागीदार के विरुद्ध मूल बाध्यता को प्रवृत्त कर सकेगा ।

अध्याय 7

वित्तीय प्रकटन

34. लेखा बहियों, अन्य अभिलेखों का रखा जाना और उनकी संपरीक्षा, आदि – (1) सीमित दायित्व भागीदारी, अपनी विद्यमानता के प्रत्येक वर्ष के कामकाज के संबंध में, नकदी आधार पर या प्रोद्भवन आधार पर ऐसी समुचित लेखा बहियां, जो विहित की जाएं, और लेखा की दोहरी प्रविष्टि प्रणाली के अनुसार रखेगी और उन्हें ऐसी अवधि के लिए, जो विहित की जाए, अपने रजिस्ट्रीकृत कार्यालय में रखेगी ।

(2) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंत से छह मास की अवधि के भीतर, उक्त वित्तीय वर्ष के अंतिम दिन तक का

उक्त वित्तीय वर्ष के लिए लेखा और शोधन क्षमता का विवरण ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए तैयार करेगी और ऐसा विवरण सीमित दायित्व भागीदारी के अभिहित भागीदारों द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा ।

(3) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी उपधारा (2) के अनुसरण में तैयार किए गए लेखा और शोधन क्षमता का विवरण प्रत्येक वर्ष विहित समय के भीतर ऐसे प्ररूप और रीति में और ऐसी फीस सहित, जो विहित की जाएं, रजिस्ट्रार को फाइल करेगी ।

(4) सीमित दायित्व भागीदारी के लेखाओं की संपरीक्षा ऐसे नियमों के अनुसार, जो विहित किए जाएं, की जाएगी :

परंतु केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, सीमित दायित्व भागीदारी के किसी वर्ग या वर्गों को इस उपधारा की अपेक्षाओं से छूट प्रदान कर सकेगी ।

(5) ऐसी कोई सीमित दायित्व भागीदारी, जो इस धारा के उपबंधों का अनुपालन करने में असफल रहती है, जुर्माने से, जो पच्चीस हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगी और ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी का प्रत्येक अभिहित भागीदार जुर्माने से, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

35. वार्षिक विवरणी – (1) प्रत्येक सीमित दायित्व भागीदारी, अपने वित्तीय वर्ष के समाप्त होने के साठ दिन के भीतर रजिस्ट्रार के पास ऐसे प्ररूप और रीति में, और ऐसी फीस सहित, जो विहित की जाए, सम्यक् रूप से अधिप्रमाणित एक वार्षिक विवरणी फाइल करेगी ।

(2) ऐसी कोई सीमित दायित्व भागीदारी, जो इस धारा के उपबंधों के अनुपालन में असफल रहती है, जुर्माने से, जो पच्चीस हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगी ।

(3) यदि सीमित दायित्व भागीदारी इस धारा के उपबंधों का उल्लंघन करती है, तो ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी का अभिहित भागीदार, जुर्माने से, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

36. रजिस्ट्रार द्वारा रखे गए दस्तावेजों का निरीक्षण – प्रत्येक

सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा रजिस्ट्रार को फाइल किए गए निगमन दस्तावेज, भागीदारों के नाम और उसमें किए गए परिवर्तन, यदि कोई हों, लेखा और शोधन क्षमता विवरण तथा वार्षिक विवरणी किसी व्यक्ति द्वारा ऐसी रीति में और ऐसी फीस के संदाय पर जो विहित की जाए, निरीक्षण के लिए उपलब्ध होंगी ।

37. मिथ्या कथन के लिए शास्ति – यदि इस अधिनियम के किसी उपबंध द्वारा अपेक्षित या उसके प्रयोजनों के लिए किसी विवरणी, विवरण या अन्य दस्तावेज में कोई व्यक्ति ऐसा कथन करता है,–

(क) जो किसी सारवान् विशिष्टि में मिथ्या है और उसे उसके मिथ्या होने का ज्ञान है ; या

(ख) जो किसी सारवान् तथ्य का सारवान् होने की जानकारी होते हुए लोप करता है,

तो वह, इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी, जो पांच लाख रुपए तक का हो सकेगा किंतु जो एक लाख रुपए से कम का नहीं होगा, दायी होगा ।

38. सूचना प्राप्त करने की रजिस्ट्रार की शक्ति – (1) ऐसी सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से, जो इस अधिनियम के उपबंधों को क्रियान्वित करने के प्रयोजनों के लिए रजिस्ट्रार आवश्यक समझे, रजिस्ट्रार सीमित दायित्व भागीदारी के वर्तमान या पूर्व भागीदार या अभिहित भागीदार या कर्मचारी सहित किसी व्यक्ति से युक्तियुक्त अवधि के भीतर किसी प्रश्न का उत्तर देने या कोई घोषणा करने या कोई ब्यौरे या विशिष्टियां प्रदाय करने की लिखित में अपेक्षा कर सकेगा ।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति रजिस्ट्रार द्वारा मांगे गए ऐसे प्रश्न का उत्तर नहीं देता है या ऐसी घोषणा नहीं करता है या ऐसे ब्यौरों या विशिष्टियों का युक्तियुक्त समय या रजिस्ट्रार द्वारा दिए गए समय के भीतर प्रदाय नहीं करता है, या जब रजिस्ट्रार का ऐसे व्यक्ति द्वारा दिए गए उत्तर या घोषणा या उपलब्ध कराए गए ब्यौरे या विशिष्टियों से समाधान नहीं होता है तो रजिस्ट्रार को उस व्यक्ति को उसके समक्ष या किसी निरीक्षक या किसी अन्य लोक अधिकारी के समक्ष, जिसे रजिस्ट्रार अभिहित करे, यथा स्थिति, ऐसे प्रश्न का उत्तर देने या घोषणा करने या ऐसे ब्यौरों का प्रदाय

करने के लिए उपस्थित होने के लिए समन करने की शक्ति होगी ।

(3) कोई व्यक्ति, जो किसी विधिमान्य कारण के बिना, इस धारा के अधीन किसी समन या रजिस्ट्रार की अध्यपेक्षा का अनुपालन करने में असफल रहता है, जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा, किंतु जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

39. अपराधों का शमन – केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के अधीन ऐसे किसी अपराध का, जो केवल जुर्माने से दंडनीय है, ऐसे व्यक्ति से, जिसके बारे में युक्तियुक्त रूप से संदेह है कि उसने अपराध किया है, ऐसी राशि का, जो अपराध के लिए विहित अधिकतम जुर्माने की रकम तक की हो सकेगी, संग्रहण करके, शमन कर सकेगी ।

40. पुराने अभिलेखों का नष्ट किया जाना – रजिस्ट्रार, भौतिक रूप में इलेक्ट्रानिक रूप में उसके पास फाइल किए गए या रजिस्ट्रीकृत किसी दस्तावेज को ऐसे नियमों के, जो विहित किए जाएं, अनुसार नष्ट कर सकेगा ।

41. विवरणी आदि देने के कर्तव्य का प्रवर्तन – (1) यदि कोई सीमित दायित्व भागीदारी,–

(क) इस अधिनियम या किसी अन्य विधि के किसी उपबंध का, जो किसी रीति में रजिस्ट्रार के पास कोई विवरणी, लेखा या अन्य दस्तावेज फाइल करने या किसी विषय की उसको सूचना देने की अपेक्षा करता है, अनुपालन करने में व्यतिक्रम करती है ; या

(ख) किसी दस्तावेज को संशोधित करने या पूरा करने और पुनः प्रस्तुत करने या नए सिरे से कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने के रजिस्ट्रार के किसी अनुरोध का अनुपालन करने में व्यतिक्रम करती है,

और सीमित दायित्व भागीदारी पर उससे ऐसा करने की अपेक्षा करने वाली सूचना की तामील के पश्चात् चौदह दिन के भीतर व्यतिक्रम को दूर करने में असफल रहती है, तो अधिकरण, रजिस्ट्रार द्वारा आवेदन पर, उस सीमित दायित्व भागीदारी या उसके अभिहित भागीदारों या उसके भागीदारों को यह निदेश करते हुए आदेश कर सकेगा कि वे ऐसे समय के भीतर, जो आदेश में विनिर्दिष्ट है, व्यतिक्रम को दूर करें ।

(2) ऐसे किसी आदेश में यह उपबंध हो सकेगा कि आवेदन के सभी खर्चे और उसके आनुषंगिक व्यय उस सीमित दायित्व भागीदारी द्वारा वहन किए जाएंगे ।

(3) इस धारा की कोई बात, इस धारा में निर्दिष्ट किसी व्यतिक्रम के संबंध में उस सीमित दायित्व भागीदार पर शास्ति अधिरोपित करने वाले इस अधिनियम या किसी अन्य विधि के किसी अन्य उपबंध के प्रवर्तन को सीमित नहीं करेगी ।

अध्याय 8

भागीदारी अधिकारों का समनुदेशन और अंतरण

42. भागीदार का अंतरणीय हित – (1) सीमित दायित्व भागीदारी करार के अनुसार सीमित दायित्व भागीदारी के लाभ और हानियों में हिस्सा बटाने और वितरण प्राप्त करने के भागीदार के अधिकार पूर्णतः या भागतः अंतरणीय हैं ।

(2) उपधारा (1) के अनुसरण में किसी भागीदार द्वारा किसी अधिकार के अंतरण से ही सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार का असहयोजन या विघटन और परिसमापन नहीं हो जाता है ।

(3) इस धारा के अनुसरण में अधिकारों के अंतरण से ही अंतरिती या समनुदेशिती को सीमित दायित्व भागीदारी के प्रबंध में भाग लेने या उसके क्रियाकलापों को संचालित करने का या सीमित दायित्व भागीदारी के संव्यवहारों से संबंधित सूचना तक पहुंच प्राप्त करने का हकदार नहीं बन जाता है ।

अध्याय 9

अन्वेषण

43. सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण – (1) केंद्रीय सरकार, सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण करने और उस पर ऐसी रीति में, जो वह निदेश दे, रिपोर्ट देने के लिए निरीक्षक के रूप में एक या अधिक सक्षम व्यक्तियों को नियुक्त करेगी, यदि –

(क) अधिकरण, या तो स्वःप्रेरणा से या सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों की कुल संख्या के एक बटा पांच से अन्यून भागीदारों से प्राप्त किसी आवेदन पर, आदेश द्वारा यह घोषणा करता है कि सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण किया जाना चाहिए ; या

(ख) कोई न्यायालय, आदेश द्वारा यह घोषणा करता है कि

किसी सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण किया जाना चाहिए ।

(2) केंद्रीय सरकार किसी सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण करने और उस पर ऐसी रीति में जो वह निदेश दे, रिपोर्ट देने के लिए, निरीक्षक के रूप में एक या अधिक सक्षम व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगी ।

(3) उपधारा (2) के अनुसरण में निरीक्षक की नियुक्ति निम्नलिखित दशा में की जा सकेगी,–

(क) यदि सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों की कुल संख्या के एक बटा पांच से अन्यून भागीदार समर्थक साक्ष्य और ऐसी प्रतिभूति रकम के साथ, जो विहित की जाएं, आवेदन करते हैं ; या

(ख) यदि सीमित दायित्व भागीदारी ऐसा आवेदन करती है कि सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण किया जाना चाहिए ; या

(ग) यदि केंद्रीय सरकार की राय में, यह सुझाव देने वाली परिस्थितियां हैं कि –

(i) सीमित दायित्व भागीदारी का कारबार उसके लेनदारों, भागीदारों या किसी अन्य व्यक्ति को कपट वंचित करने के आशय से या अन्यथा किसी कपटपूर्ण या विधिविरुद्ध प्रयोजन के लिए या उसके किन्हीं या किसी भागीदार के प्रतिकूल किसी अन्यायपूर्ण या अनुचित रीति में किया जा रहा है या किया गया है या सीमित दायित्व भागीदारी किसी कपटपूर्ण या विधिविरुद्ध प्रयोजन के लिए बनाई गई थी ; या

(ii) सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार नहीं किए जा रहे हैं ; या

(iii) रजिस्ट्रार या किसी अन्य अन्वेषण या विनियामक अभिकरण की रिपोर्ट प्राप्त होने पर, पर्याप्त कारण हैं कि सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण किया जाना चाहिए ।

44. अन्वेषण के लिए भागीदारों द्वारा आवेदन – धारा 43 की

उपधारा (1) के खंड (क) के अधीन सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदारों द्वारा आवेदन के समर्थन में ऐसा साक्ष्य दिया जाएगा जो अधिकरण यह दर्शित करने के प्रयोजन के लिए अपेक्षा करे कि आवेदकों के पास अन्वेषण की अपेक्षा करने के लिए ठोस कारण है, और केंद्रीय सरकार, निरीक्षक को नियुक्त करने से पूर्व, आवेदकों से अन्वेषण के खर्चों के संदाय के लिए ऐसी राशि की, जो विहित की जाए, प्रतिभूति देने की अपेक्षा कर सकेगी ।

45. फर्म, निगम निकाय या संगम को निरीक्षक के रूप में नियुक्त न किया जाना – किसी फर्म, निगम निकाय या अन्य संगम को निरीक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जाएगा ।

46. संबंधित अस्तित्वों आदि के कामकाज का अन्वेषण करने की निरीक्षकों की शक्ति – (1) यदि सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज का अन्वेषण करने के लिए केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक अपने अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए किसी ऐसे अस्तित्व के कामकाज का अन्वेषण करना भी आवश्यक समझता है, जो सीमित दायित्व भागीदारी या सीमित दायित्व भागीदारी के किसी वर्तमान या पूर्व भागीदार या अभिहित भागीदार से पूर्व में सहयोजित रहा है या वर्तमान में सहयोजित है तो निरीक्षक को ऐसा करने की शक्ति होगी और अन्य अस्तित्व या भागीदार या अभिहित भागीदार के कामकाज की, जहां तक वह यह समझता है कि उसके अन्वेषण के परिणाम सीमित दायित्व भागीदारी के कामकाज के अन्वेषण से सुसंगत हैं, रिपोर्ट करेगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी अस्तित्व या भागीदार या अभिहित भागीदार की दशा में, निरीक्षक, केंद्रीय सरकार का पूर्व अनुमोदन प्राप्त किए बिना उसके कामकाज का अन्वेषण करने और उस पर रिपोर्ट देने की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा :

परंतु इस उपधारा के अधीन अनुमोदन प्रदान करने से पूर्व, केंद्रीय सरकार, अस्तित्व या भागीदार या अभिहित भागीदार को यह हेतुक दर्शित करने के लिए कि ऐसा अनुमोदन क्यों नहीं प्रदान किया जाना चाहिए, युक्तियुक्त अवसर देगी ।

47. दस्तावेजों और साक्ष्य का प्रस्तुत किया जाना – (1) सीमित दायित्व भागीदारी के अभिहित भागीदार और भागीदारों का यह कर्तव्य होगा कि –

(क) वे, यथास्थिति, सीमित दायित्व भागीदारी या अन्य अस्तित्व के या उससे संबंधित सभी बहियों और कागजपत्रों को, जो उनकी अभिरक्षा में या शक्ति के अधीन हैं, केंद्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से निरीक्षक या इस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत करें ; और

(ख) अन्वेषण के संबंध में ऐसी सभी सहायता निरीक्षक को दें, जिसे देने में वे युक्तियुक्त रूप से समर्थ हैं ।

(2) निरीक्षक, केंद्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अस्तित्व से भिन्न किसी अस्तित्व से, उस सरकार के पूर्व अनुमोदन से उसके या इस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति को ऐसी सूचना देने या उसके समक्ष ऐसी बहियों और कागजपत्रों को प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकेगा, जो वह आवश्यक समझे, यदि ऐसी सूचना देना या ऐसी बहियों या कागजपत्रों को प्रस्तुत करना उसके अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए सुसंगत या आवश्यक है ।

(3) निरीक्षक, उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन प्रस्तुत किन्हीं बहियों और कागजपत्रों को तीस दिन के लिए अपनी अभिरक्षा में रख सकेगा और तत्पश्चात् उन्हें सीमित दायित्व भागीदारी, अन्य अस्तित्व या व्यष्टि को, जिसके द्वारा या जिसकी ओर से बहियां और कागजपत्र प्रस्तुत किए गए हैं, लौटा देगा :

परंतु निरीक्षक बहियों और कागजपत्रों को, यदि उनकी पुनः आवश्यकता पड़े, मंगा सकेगा :

परंतु यह और कि यदि उपधारा (2) के अधीन प्रस्तुत बहियों और कागजपत्रों की अधिप्रमाणित प्रतियां निरीक्षक को प्रस्तुत की जाती हैं, तो वह संबंधित अस्तित्व या व्यक्ति को बहियां और कागजपत्र लौटा देगा ।

(4) कोई निरीक्षक शपथ पर निम्नलिखित की जांच कर सकेगा –

(क) उपधारा (1) में निर्दिष्ट व्यक्तियों में से कोई व्यक्ति ;

(ख) केंद्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, यथास्थिति, सीमित दायित्व भागीदारी या किसी अन्य अस्तित्व के कामकाज से संबंधित कोई अन्य व्यक्ति ; और

(ग) तद्नुसार शपथ दिला सकेगा और उस प्रयोजन के लिए

उन व्यक्तियों में से किसी व्यक्ति से, अपने समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने की अपेक्षा कर सकेगा ।

(5) यदि कोई व्यक्ति युक्तियुक्त कारण के बिना –

(क) केंद्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से निरीक्षक या इस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति के समक्ष कोई ऐसी बही या कागजपत्र प्रस्तुत करने में, जिसे प्रस्तुत करना उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन उसका कर्तव्य है ; या

(ख) ऐसी कोई जानकारी देने में, जिसका दिया जाना उपधारा (2) के अधीन उसका कर्तव्य है ;

(ग) निरीक्षक के समक्ष तब व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने में, जब उपधारा (4) के अधीन ऐसा करने की अपेक्षा की जाए या किसी प्रश्न का उत्तर देने में, जो उस उपधारा के अनुसरण में निरीक्षक द्वारा पूछा जाए ; या

(घ) किसी जांच के टिप्पणों पर हस्ताक्षर करने में,

असफल रहता है या उससे इंकार करता है, तो वह जुर्माने से, जो दो हजार रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पच्चीस हजार रुपए तक का हो सकेगा और अतिरिक्त जुर्माने से, जो पहले दिन के पश्चात्, जिसके पश्चात् व्यतिक्रम जारी रहता है, प्रत्येक दिन के लिए पचास रुपए से कम का नहीं होगा किंतु जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(6) उपधारा (4) के अधीन किसी जांच के टिप्पण लेखबद्ध किए जाएंगे और उस व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किए जाएंगे, जिसकी शपथ पर परीक्षा की गई थी और ऐसे टिप्पणों की एक प्रति उस व्यक्ति को दी जाएगी, जिसकी इस प्रकार शपथ पर परीक्षा की गई है तथा उसके पश्चात् उसे निरीक्षक द्वारा साक्ष्य के रूप में प्रयोग किया जाएगा ।

48. निरीक्षक द्वारा दस्तावेजों का अभिग्रहण – (1) जहां, अन्वेषण के दौरान, निरीक्षक के पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार है कि सीमित दायित्व भागीदारी या अन्य अस्तित्व या ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी के भागीदार या अभिहित भागीदार की या उससे संबंधित बहियों और कागजपत्रों को नष्ट, विरूपित, उनमें फेरफार, मिथ्याकृत किया जा सकता है या उन्हें छिपाया जा सकता है, तो निरीक्षक, यथास्थिति, उस प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट को, जिसकी

अधिकारिता है, ऐसी बहियों और कागजपत्रों को अभिग्रहण करने के आदेश के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(2) मजिस्ट्रेट, आवेदन पर विचार करने और निरीक्षक की सुनवाई करने के पश्चात्, यदि आवश्यक हो, आदेश द्वारा निरीक्षक को –

(क) उस स्थान या स्थानों में, जहां ऐसी बहियां और कागजपत्र रखे गए हैं, ऐसी सहायता सहित, जो अपेक्षित हो, प्रवेश करने ;

(ख) आदेश में विनिर्दिष्ट रीति में उस स्थान या उन स्थानों की तलाशी लेने ;

(ग) उन बहियों और कागजपत्रों का, जिन्हें निरीक्षक अपने अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे, अभिग्रहण करने,

के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

(3) निरीक्षक, इस धारा के अधीन अभिगृहीत बहियों और कागजपत्रों को अन्वेषण के निष्कर्ष के अपश्चात् की ऐसी अवधि के लिए, जो वह आवश्यक समझे, अपनी अभिरक्षा में रखेगा और तत्पश्चात् उन्हें संबंधित अस्तित्व या व्यक्ति को, जिसकी अभिरक्षा या शक्ति से वे अभिगृहीत किए गए थे, लौटा देगा और ऐसे लौटाए जाने की सूचना मजिस्ट्रेट को देगा :

परंतु बहियां और कागजपत्र छह मास से अधिक की लगातार अवधि के लिए अभिगृहीत नहीं रखे जाएंगे :

परंतु यह और कि निरीक्षक, यथापूर्वोक्त ऐसी बहियों और कागजपत्रों को लौटाने से पूर्व, उन पर या उनके किसी भाग पर पहचान चिह्न लगा सकेगा ।

(4) इस धारा में यथा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस धारा के अधीन की गई प्रत्येक तलाशी या अभिग्रहण, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन की गई तलाशियों या अभिग्रहणों से संबंधित उस संहिता के उपबंधों के अनुसार किया जाएगा ।

49. निरीक्षक की रिपोर्ट – (1) निरीक्षक, और यदि केंद्रीय सरकार द्वारा ऐसा निदेश दिया जाए, उस सरकार को अंतरिम रिपोर्ट देंगे और अन्वेषण के निष्कर्ष पर केंद्रीय सरकार को अंतिम रिपोर्ट देंगे और ऐसी रिपोर्ट लिखित में या मुद्रित रूप में होगी, जैसा केंद्रीय सरकार निदेश दे ।

(2) केंद्रीय सरकार,–

(क) निरीक्षकों द्वारा दी गई किसी रिपोर्ट (अंतरिम रिपोर्ट से भिन्न) की एक प्रति सीमित दायित्व भागीदारी को, उसके रजिस्ट्रीकृत कार्यालय पर और रिपोर्ट में कार्रवाई किए गए या उससे संबंधित किसी अन्य अस्तित्व या व्यक्ति को भी भेजेगी ;

(ख) यदि, वह ठीक समझे, तो उसकी एक प्रति रिपोर्ट से संबंधित या उससे प्रभावित किसी व्यक्ति या अस्तित्व को, अनुरोध पर और विहित फीस के संदाय पर दे सकेगी ।

50. अभियोजन – यदि, धारा 49 के अधीन रिपोर्ट से, केंद्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व भागीदारी के संबंध में या किसी अन्य अस्तित्व के संबंध में, जिसके कामकाज का अन्वेषण किया गया है, कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध के लिए दोषी रहा है, जिसके लिए वह दायी है, तो केंद्रीय सरकार, उस अपराध के लिए ऐसे व्यक्ति का अभियोजन कर सकेगी ; और, यथास्थिति, सीमित दायित्व भागीदारी या अन्य अस्तित्व के सभी भागीदारों, अभिहित भागीदारों और अन्य कर्मचारियों तथा अभिकर्ताओं के अभियोजन के संबंध में, केंद्रीय सरकार को ऐसी सभी सहायता देने का कर्तव्य होगा, जिसे देने के लिए वे युक्तियुक्त रूप से समर्थ हैं ।

51. सीमित दायित्व भागीदारी के परिसमापन के लिए आवेदन – यदि ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन परिसमापन किए जाने के लिए दायी है और धारा 49 के अधीन किसी ऐसी रिपोर्ट से केंद्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि किन्हीं ऐसी अन्य परिस्थितियों के कारण जो धारा 43 की उपधारा (3) के खंड (ग) के उपखंड (i) या उपखंड (ii) में निर्दिष्ट हैं, ऐसा करना समीचीन है, तो केंद्रीय सरकार जब तक कि सीमित दायित्व भागीदारी का अधिकरण द्वारा पहले से परिसमापन नहीं कर दिया जाता है, केंद्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा, इस आधार पर कि इसका परिसमापन किया जाना न्यायसंगत तथा साम्यापूर्ण है, सीमित दायित्व भागीदारी के परिसमापन के लिए अधिकरण के समक्ष एक याचिका प्रस्तुत कराएगी ।

52. नुकसानी या संपत्ति की वसूली के लिए कार्यवाहियां – यदि धारा 49 के अधीन किसी रिपोर्ट से केंद्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि लोकहित में सीमित दायित्व भागीदारी या किसी अन्य अस्तित्व द्वारा,

जिसके कार्यों का अन्वेषण किया गया है,–

(क) ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी या ऐसे अन्य अस्तित्व के संवर्धन या विरचना या प्रबंधन के संबंध में कोई कपट, अपकरण या अन्य कदाचार की बाबत नुकसानियों की वसूली के लिए ; या

(ख) ऐसी सीमित दायित्व भागीदारी या ऐसे अन्य अस्तित्व की किसी संपत्ति की, जिसका दुरुपयोजन किया गया है या जिसे सदोष प्रतिधारित किया गया है, वसूली के लिए, कार्यवाहियां की जानी चाहिएं, तो केंद्रीय सरकार, उस प्रयोजन के लिए स्वयं कार्यवाही कर सकेगी ।

53. अन्वेषण के खर्चे – (1) इस अधिनियम के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षक द्वारा अन्वेषण के और उसके आनुषंगिक खर्चों को प्रथम बार केंद्रीय सरकार द्वारा चुकाया जाएगा ; किंतु निम्नलिखित व्यक्ति नीचे वर्णित सीमा तक केंद्रीय सरकार को ऐसे खर्चों की बाबत प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी होंगे, अर्थात् :–

(क) ऐसे किसी व्यक्ति को, जो अभियोजन पर सिद्धदोष ठहराया गया है या जिसे धारा 52 के आधार पर की गई कार्यवाहियों में किसी संपत्ति की नुकसानी के लिए संदाय करने या बहाली का आदेश दिया गया है उन्हीं कार्यवाहियों में, उस सीमा तक उक्त खर्चों का संदाय करने के लिए आदेश दिया जा सकेगा, जो, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति को सिद्धदोष ठहराने वाले या ऐसी नुकसानियों का संदाय करने का आदेश करने वाले या ऐसी संपत्ति की बहाली करने वाले न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए ;

(ख) कोई अस्तित्व जिसके नाम में यथापूर्वोक्त कार्यवाहियां की जाती हैं, कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप उसके द्वारा वसूल की गई किसी धनराशि या संपत्ति की रकम या मूल्य की सीमा तक दायी होगा ;

(ग) जब तक अन्वेषण के परिणामस्वरूप धारा 50 के अनुसरण में कोई अभियोजन संस्थित नहीं किया जाता तब तक,–

(i) निरीक्षक की रिपोर्ट से संबंधित कोई अस्तित्व, भागीदार या अभिहित भागीदार या कोई अन्य व्यक्ति केंद्रीय सरकार को संपूर्ण व्ययों की बाबत प्रतिपूर्ति करने का तब तक

और उस सीमा तक दायी होगा जब तक केंद्रीय सरकार अन्यथा निदेश न दे ; और

(ii) जहां धारा 43 की उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंधों के अनुसरण में निरीक्षक की नियुक्ति की गई थी, वहां अन्वेषण के लिए आवेदक, उस सीमा तक, यदि कोई हो, जो केंद्रीय सरकार निर्दिष्ट करे, दायी होंगे ।

(2) ऐसी कोई रकम, जिसके लिए सीमित दायित्व भागीदारी या अन्य अस्तित्व उपधारा (1) के खंड (ख) के आधार पर दायी है, उस खंड में वर्णित धनराशियों या संपत्ति पर पहला प्रभार होगी ।

(3) उन व्ययों की रकम, जिनकी बाबत कोई सीमित दायित्व भागीदारी, अन्य अस्तित्व, कोई भागीदार या अभिहित भागीदार या कोई अन्य व्यक्ति उपधारा (1) के खंड (ग) के उपखंड (i) के अधीन केंद्रीय सरकार को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है, भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूलनीय होगी ।

(4) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, केंद्रीय सरकार द्वारा उपगत या धारा 52 के आधार पर की गई कार्यवाहियों के संबंध में उपगत कोई लागत या व्यय, कार्यवाहियों को चलाने के लिए अन्वेषण के व्यय समझे जाएंगे ।

54. निरीक्षक की रिपोर्ट का साक्ष्य होना – इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन नियुक्त किसी निरीक्षक या किन्हीं निरीक्षकों की रिपोर्ट, यदि कोई हो, की ऐसी रीति में जो विहित की जाए, अधिप्रमाणित प्रति, रिपोर्ट में अंतर्विष्ट किसी विषय के संबंध में साक्ष्य के रूप में किसी विधिक कार्यवाही में ग्राह्य होगी ।

क्रमशः .... (आगामी अंक देखें)

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105